संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१०

कालिदास-कृत

मालविकाग्निमित्र

●

श्री सूर्यकुमार जोशी

द्वारा

कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

●

१९५४

सस्ता-साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५४
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें इसी विचार को इस माला द्वारा मूर्त रूप दिया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इस-लिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। कई आगे निकलेंगी। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'मालविकाग्निमित्र' ऐतिहासिक नाटक है और इसके रचयिता 'शकुंतला' की सृष्टि करने वाले कालिदास ही हैं। यह उनकी पहली रचना जान पड़ती है। इस नाटक को प्रस्तुत करते समय उनके मन में इसकी सफलता के बारे में शंका थी, लेकिन साथ ही यह विश्वास भी था कि प्राचीन कवियों के नाटकों में जो बातें नहीं पाई जातीं, वे इसमें मिल सकती हैं।

इस नाटक में शुंग-वंशी राजा अग्निमित्र और विदर्भ देश की राजकुमारी मालविका की प्रेम-कहानी है। यह उस काल के राज-समाज का जीता जागता चित्र पाठकों के सामने उपस्थित कर देता है। राजा की कामुकता, रानियों की डाह, राजमहल के षड्यंत्र, सभी उसमें मूर्त्तरूप में उतरे हैं। इसके अतिरिक्त बड़ी रानी की धीरता, राजा की न्याय-बुद्धि, सेनापति की स्वामिभक्ति इन सबका भी सुन्दर वर्णन हुआ है। चरित्र-चित्रण बड़ा स्वाभाविक है और इसमें माधुर्य, ओज तथा प्रसाद तीनों गुण विद्यमान हैं। इस नाटक से तत्कालीन समाज के कला-प्रेम का भी पता लगता है। नृत्य और नाट्य-कला का तो बड़ा ही हृदयग्राही रूप देखने को मिलता है।

इस नाटक की काफी आलोचना हुई है, परन्तु कवि ने जिस समाज का चित्र खींचा है उसी दृष्टि से इसे परखना चाहिए। इसमें सत--रज-तम तीनों गुणों के अनुरूप अनेक प्रकार के रसों का परिपाक जिस कुशलता से कवि ने किया है, वह कालिदास ही कर सकते थे। वैसे यह शृंगार-रस प्रधान है।

कालिदास के समय और जन्मस्थान के बारे में बहुत मतभेद है, लेकिन यह ग्रंथ उन्हीं का रचा माना जाता है। संस्कृत में ऐतिहासिक नाटक बहुत कम हैं। इस कारण इसका बड़ा महत्त्व है।

—सम्पादक

मालविकाग्निमित्र

परिचय

बहुत पुरानी बात है। शुंग-वंश में पुष्यमित्र नाम के एक महाराज थे। वह सेनापति पुष्यमित्र के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके पुत्र का नाम था अग्निमित्र। पुष्यमित्र ने उन्हें विदिशा का शासक बना दिया था। इनकी दो रानियां थीं—धारिणी और इरावती। धारिणी पटरानी थी, और उनके वसुमित्र नाम का एक पुत्र तथा वसुलक्ष्मी नाम की एक कन्या थी। उनके दूर के रिश्ते के एक भाई भी थे। उनका नाम वीरसेन था और वह महाराज की ओर से नर्मदा के किनारे अन्तपाल-दुर्ग की देख-भाल करते थे। उन्होंने अपनी बहन के पास एक कन्या को नृत्य-गान सीखने के लिए भेजा था। उस कन्या का नाम मालविका था और वह बहुत ही सुन्दर थी।

: १ :

एक बार महारानी धारिणी चित्रशाला में एक कुशल चित्रकार के बनाये हुए चित्र देख रही थीं कि महाराज अग्निमित्र भी वहां आ गए। उन्होंने एक चित्र में दासियों के बीच खड़ी हुई एक अनजान कन्या को

देखा। उसे देखकर उन्होंने पूछा, "यह सुन्दर लड़की कौन है?"

महाराज के बार-बार पूछने पर भी रानी ने जान-बूझकर कोई उत्तर न दिया। लेकिन इसी बीच कुमारी वसुलक्ष्मी ने अपने बाल्पन में उस अनजान कन्या का नाम बता दिया। वही सुन्दरी मालविका थी।

इसपर महारानी ने मालविका पर कड़ा पहरा लगा दिया, जिससे वह महाराज के सामने न आ सके। उन दिनों वह महारानी की आज्ञा से नाट्यकला सीख रही थी। उस कला में वह स्वभाव से ही निपुण थी। उसके अभिनय को देखकर गुरु गणदास को ऐसा लगता था कि मानो [illegible] उनकी शिष्या नहीं है, गुरु है। वे उससे बहुत प्रसन्न थे। उन्हें इस बात में विश्वास नहीं था कि मालविका दासी है और उसे वीरसेन ने नाच-गान सीखने के लिए भेजा है। रूप-रंग और शील-स्वभाव से वह उन्हें किसी बड़े कुल की जान पड़ती थी, क्योंकि सिखाने वाले की कला अच्छे शिष्य के ही पास पहुँच कर उसी प्रकार खिल उठती है, जिस प्रकार बादल का जल सीपी में जा कर मोती बन जाता है। मालविका बड़े कुल की न होती तो कैसे नाच-गान में इतनी निपुण होती!

: २ :

विदर्भ के राजा यज्ञसेन और माधवसेन दोनों चचेरे भाई थे और राजगद्दी के लिए आपस में लड़ते रहते थे। माधवसेन ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए अग्निमित्र की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया। इसी सम्बन्ध में अग्निमित्र से अपनी बहन का विवाह करने के लिए वह विदिशा जा रहे थे कि मार्ग में यज्ञसेन की सेना ने उनपर आक्रमण कर उन्हें बन्दी बना लिया।

यह समाचार जब अग्निमित्र के पास पहुँचा तो उन्होंने विदर्भराज यज्ञसेन को एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने अनुरोध किया कि वह माधवसेन और उनकी पत्नी तथा बहन को छोड़ दें।

इसके उत्तर में यज्ञसेन ने लिख भेजा, "आप बड़े हैं और यह भी जानते हैं कि समान वंश के राजाओं का बर्ताव कैसा होता है। आप चाहें तो हम लोगों का बीच-बचाव कर सकते हैं। माधवसेन और उसके साथियों की धरपकड़ में उसकी बहन कहीं खो गई है। उसे ढूंढ़ने का मैं पूरा यत्न करूँगा। लेकिन यदि आप चाहते हैं कि मैं माधवसेन को छोड़ दूं तो आप भी मेरे साले मौर्य सचिव को, जो आपके कारागार में बन्द है, छोड़ दें।"

यह पढ़कर अग्निमित्र को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपने मन्त्री से कहा, "वीरसेन को आज्ञा दो

कि वह विदर्भ राज को जड़ से उखाड़ फेंके। वह मुझसे बदले का व्यवहार करना चाहता है। वह स्वभाव से ही मेरा शत्रु है। ऐसे खोटे शत्रु का नाश करने का मैं पहले ही संकल्प कर चुका हूँ।"

मंत्री भी यही चाहता था। इसलिए उचित प्रबन्ध करने के लिए वह वहां से चला गया। उसके जाने के बाद गौतम ने वहां प्रवेश किया। वह महाराज का मित्र विदूषक था। जिस मालविका को उन्होंने चित्र में देखा था, उसे वह आंखों से देखना चाहते थे। इसका उपाय ढूंढ़ने के लिए उन्होंने गौतम को ही तैनात किया था। इस बारे में उसने क्या किया, यह वह महाराज को बता ही रहा था कि नाट्यकला के आचार्य गणदास और हरदत्त आपस में लड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। वे इस बात का निर्णय करवाना चाहते थे कि उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है। हरदत्त गणदास को अपने पैरों की धूल के बराबर भी नहीं समझते थे और गणदास अपने तथा हरदत्त में उतना ही अन्तर मानते थे, जितना समुद्र और गड्ढे में होता है। उन्होंने महाराज से परीक्षा लेने को कहा, लेकिन महाराज ने स्वयं इस झगड़े का निर्णय करना उचित नहीं समझा। उन्हें डर था कि रानी धारिणी यही समझेगी कि उन्होंने पक्षपात किया है। इसलिए उन्होंने कहा कि इस बात का निर्णय महारानी और

उनकी सखी संन्यासिनी कौशिकी के सामने होना चाहिए। इस बात पर किसी ने भी आपत्ति नहीं की। इसलिए महाराज ने उन दोनों को बुला भेजा।

राजा की आज्ञा पाकर साधुनी के वेशवाली कौशिकी के साथ मंगल-अलंकारों से सजी हुई महारानी धारिणी राजसभा में पधारीं। कौशिकी विदुषी थी और पक्षपात से दूर रहनेवाली थी। उनमें गुण-दोष का विचार करने की बुद्धि भी थी। इसलिए गणदास और हरदत्त दोनों ने उन्हें अपना निर्णायक स्वीकार कर लिया।

अब राजा ने शास्त्रार्थ शुरू करने का आदेश दिया, किन्तु कौशिकी ने कहा, "नाट्यशास्त्र की जाँच तो करके दिखाने से होती है। कोरी बातचीत से क्या लाभ होगा?"

उन्होंने यह भी कहा कि कई व्यक्ति स्वयं गुणी होते हैं और कई में केवल दूसरों को सिखाने का ही गुण होता है, किन्तु जिस व्यक्ति में दोनों गुण हों, वही सच्चा और सबसे अच्छा गुणी है।

और सब लोगों ने तो इस बात को पसन्द किया, लेकिन रानी को यह सब पसन्द नहीं आया। वह नहीं चाहती थी कि गणदास की शिष्या राजा के सामने आये। इसलिए उन्होंने इस परीक्षा को टालने की पूरी कोशिश की, लेकिन आचार्य गणदास अपनी शिष्या की चातुरी दिखाने को बहुत उत्सुक थे। सो उनकी एक न चली

और अन्त में उन्हें अपनी अनुमति देनी ही पड़ी।

इसके बाद दोनों आचार्य तैयारी करने के लिए नाटक-घर में चले गये। यह निश्चय हुआ कि मृदंग की आवाज सुनने पर वे सब लोग भी वहाँ पहुँच जायंगे।

× × ×

मृदंग बज उठा और तब विदूषक के साथ राजा, रानी, पण्डिता कौशिकी तथा राज-परिवार के दूसरे लोगों ने संगीतशाला में प्रवेश किया। आचार्य गणदास हरदत्त से आयु में बड़े थे। इसलिए पहले उन्हीं को अपनी कला दिखाने का अवसर दिया गया।

कुछ क्षण बाद गुरु के साथ मालविका ने मंच पर प्रवेश किया। राजा उसके रूप को देखते रह गए। वह चित्र से कहीं अधिक सुन्दर लग रही थी। उसका मुख शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान चमक रहा था, उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं, उसके शरीर को देखकर ऐसा लगता था जैसे विधाता ने उसे नृत्य और नाट्य के लिए ही बनाया हो। उसने चार पदों वाला एक गीत गाया और उसके भाव के अनुसार अभिनय भी किया। उसे देखकर राजा और भी मुग्ध हो उठे। जब वह जाने लगी तो सहसा विदूषक गौतम ने उन्हें रुकने के लिए कहा। गुरु की आज्ञा पाकर वह रुक गई। तब गौतम ने कहा,

"पहले देवी कौशिकी अपना मत प्रकट करेंगी। मैं पीछे बतलाऊँगा कि भूल कहाँ हुई है।"

देवी कौशिकी ने उस अभिनय को बिल्कुल निर्दोष बताया और कहा, "वह इतना आकर्षक था कि मन किसी दूसरी ओर जाने ही नहीं पाता था।"

महाराज ने भी उस अभिनय की प्रशंसा की। इस बात से गणदास बहुत प्रसन्न हुए। रानी ने भी उन्हें बधाई दी। गौतम को क्या कहना था। उसने तो मालविका को रोकने के लिए चाल चली थी। इसलिए गणदास मालविका को लेकर चले गए और तब हरदत्त ने अपना सिखाया हुआ अभिनय दिखाने की आज्ञा मांगी।

राजा के मन में जो भी कुछ रहा हो, ऊपर से उन्होंने यही कहा, "हां-हां, हम लोग तो देखने को उतावले बैठे हैं।"

लेकिन ठीक इसी समय वैतालिक ने दोपहर हो जाने की सूचना दी। इस पर गौतम बोला, "अरे-रे, अब तो भोजन का समय हो गया। वैद्य लोग कहते हैं कि समय पर भोजन न करने से बड़ी हानि होती है।"

बेचारा हरदत्त अब क्या करता। राजा ने उससे कहा, "आपका प्रयोग हम कल देखेंगे। अब आप आराम करें।"

इसके बाद सभा समाप्त हो गई।

: ३ :

उसके कुछ दिन बाद भगवती कौशिकी की दासी एक नीबू लेने के लिए महाराज की वाटिका में गई तो मालिन ने उससे पूछा, "क्यों सखि, उन दोनों आचार्यों में जो झगड़ा चल रहा था, उसमें कौन जीता ?"

दासी ने उत्तर दिया, "यों तो दोनों ही पण्डित चतुर हैं, पर गणदास ने मालविका को जैसा अच्छा सिखाया है, उसे देख लेने पर यश गणदास को ही मिला है।"

मालिन ने फिर पूछा, "इधर मालविका के बारे में कुछ ऐसी-वैसी बातें सुनी जा रही हैं।"

दासी ने कहा, "सो तो ठीक है। महाराज उसे चाहते हैं, पर महारानी के डर के कारण कुछ कह नहीं सकते। इधर इन दिनों मालविका भी मुरझा रही है। और तो मैं कुछ नहीं जानती। अच्छा, चलूं।"

मालिन ने कहा, "चलो, मैं भी चलती हूँ। मुझे भी महारानी से कहना है कि सुनहरा अशोक अभी तक फूल ही नहीं रहा। इसका कोई उपाय होना चाहिए।"

दासी ने ठीक कहा था। महाराज ऊपर से भले ही कुछ न कहते हों, पर भीतर से वह बहुत बेचैन थे। किसी काम में उनका मन नहीं लगता था। इसी समय एक दिन गौतम ने उन्हें याद दिलाया कि छोटी रानी इरावती ने

नये खिले हुए लाल कुरबक के फूलों को उनके पास भेजा था और वसन्त उत्सव के बहाने उनके साथ झूला झूलने की इच्छा प्रकट की थी। इसलिए अब प्रमदवन चलना चाहिए। महाराज रानी की बात सुन चुके थे और फिर रानी के प्रेम का इस प्रकार एकाएक अनादर करना भी ठीक नहीं था, इसलिए वे दोनों उधर ही चल पड़े।

× × ×

उन दिनों सचमुच वसन्त आ चुका था। पेड़ों पर कोयलें कूक रही थीं,आम के पेड़ों में बौर निकल आया था। दक्षिणी वायु उसकी सुगन्ध चारों ओर फैला रही थी। जिधर देखो उधर फूल खिले हुए दिखाई देते थे। कहीं लाल अशोक फूले थे तो कहीं काले, धौले और लाल कुरबक। कहीं भौरों से लिपटे तिलक की बहार थी। यह वह समय था जब अशोक-वृक्षों की इच्छा पूरी करने के लिए कुमारी और सौभाग्यवती नारियाँ सज-धज कर जातीं और जिन वृक्षों पर फूल न खिलते थे, उनपर अपने पैरों के प्रहार से फूल खिलाकर उनका मनोरथ पूरा करतीं।

प्रमदवन में एक सुनहरी अशोक था, जिसका मनोरथ पूरा करने के लिए महारानी धारिणी प्रतिदिन जाया करती थीं। किन्तु एक दिन विदूषक गौतम की कोई हँसी की बात सुनकर वह ऐसे खिलखिलाई कि झूले से

गिर पड़ीं और उनके पैर में मोच आ गई। इसलिए अब इस काम को करने के लिए उन्होंने अपनी दासियों में से मालविका को चुना और उससे कहा कि यदि उसके पैर के प्रहार से पाँच दिन में उस अशोक में फूल खिल आयंगे तो वह उसे मुंह-मांगा इनाम देंगी।

इसलिए मालविका भी उस दिन अशोक का मनोरथ पूरा करने के लिए प्रमदवन में आई हुई थी। उसे वहाँ अकेला देखकर राजा चकित तो हुए, लेकिन प्रसन्न भी बहुत हुए और छिपकर उसकी, मन के भावों को प्रकट करने वाली, बातों को सुनने लगे। देखने में अब वह पहले से बदल चुकी थी। उसका रंग सरकण्डे की तरह पीला पड़ गया था।

वह नहीं जानती थी कि लताओं की ओट में छिपे हुए महाराज और गौतम उसकी बेचैनी को देख रहे हैं। वह अपने आपसे अपने मन की बात कहती रही। उसकी बातें सुनकर राजा को विश्वास हो गया कि वह भी उससे प्रेम करती है।

इतने में उसकी सखी वकुलावलिका चरणों को सजाने की सामग्री ले आई और बड़े प्यार से उसके पैरों में महावर रचाने लगी। यह देखकर महाराज को मालविका के वहां आने का सही कारण मालूम हो गया। लेकिन वह यह न जान सके कि इसी समय रानी इरावती

भी वहां आ गई हैं और सबकुछ देख-सुन रही हैं। रानी इरावती ने वकुलावलिका की बातें सुनीं तो उन्हें सन्देह होने लगा कि महाराज मालविका से प्रेम करते हैं। इतने में मालविका के दोनों चरण सजाकर वकुलावलिका ने उनमें नूपुर डाल दिए। वह भी पत्तों का गुच्छा कानों में पहनकर अशोक पर चरण प्रहार करने लगी। राजा मालविका के सामने आकर अपना प्रेम प्रकट करने का अवसर ढूंढ़ ही रहे थे कि गौतम ने तुरन्त एक चाल चली। एकदम आगे बढ़ कर उसने मालविका से कहा, "देवी, महाराज के अशोक को वाएँ पैर से ठुकरा कर क्या आपने अच्छा काम किया है?"

उसने वकुलावलिका को भी डांटा। इसपर मालविका डर गई। वकुलावलिका ने कहा, "आर्य! यह महारानी की आज्ञा का पालन हो रहा है। इसीलिए यह ऐसी ढिठाई करने में परवश थी। महाराज क्षमा करें।"

और वे दोनों राजा के चरणों पर गिर पड़ीं। राजा ने मालविका को हाथ से पकड़ कर उठाया और पूछने लगे कि कहीं पत्तों के समान कोमल उसका बायां पैर उस कठोर अशोक पर ठोकर मारने से दुखने तो नहीं लगा है? मालविका यह बात सुनकर लजा गई और वहां से जाने लगी। तब यह कहकर राजा ने अपना प्रेम

व्यक्त करने में देर न की, "जाती हो, लेकिन अशोक की तरह मेरा मनोरथ भी पूरा करना।"

रानी इरावती सबकुछ देख-सुन रही थी। वह अब अधिक न सह सकी और शीघ्रता से बाहर आकर उनको डांटने लगी। उसे देखकर सब घबरा गए। मालविका तो सखी सहित क्षमा मांग कर तुरन्त वहां से खिसक गई। लेकिन महाराज की अच्छी गत बनी। उन्होंने बहुतेरा कहा, "तुम्हारे आने में देर हो रही थी, इसलिए थोड़ा-बहुत जी बहला रहे थे।" लेकिन रानी को विश्वास क्यों आने लगा था! उसने महाराज को बहुत डांटा और बार-बार मनाने पर भी उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। महाराज ने उसके पैर तक छुए, पर वह नहीं रुकी। वहाँ से चली ही गई।

: ४ :

रानी इरावती का क्रोध इतना तेज था कि उसने वह सब बातें बड़ी रानी धारिणी से कह दीं। इसपर महारानी धारिणी की आज्ञा से मालविका और वकुलावलिका के पांवों में बेड़ियां डाल दी गईं और उन्हें एक अंधेरी काल-कोठरी में बन्द कर दिया गया। उनको छुड़ाने का कोई उपाय नहीं था, क्योंकि द्वार की रखवाली करने-वाली को महारानी की आज्ञा थी कि जबतक उनको

नागमुद्रा न दिखाई जाय तबतक उन दोनों में से किसी को भी न छोड़ा जाय ।

ये सब बातें महाराज को तब मालूम हुईं जब वह गौतम के साथ महारानी धारिणी का कुशल समाचार पूछने आ रहे थे । रास्ते में यह बुरा समाचार सुनकर उनको बड़ा दुख हुआ । लेकिन वह चुप बैठने वाले नहीं थे । उन्होंने गौतम से मालविका को छुड़ाने का कोई उपाय ढूंढ़ने को कहा । गौतम ने तुरन्त एक उपाय बताया । उसे जानकर महाराज बड़े प्रसन्न हुए और वह महारानी से मिलने चले गए । गौतम भी अपने काम में जुट गया ।

उस समय महारानी अपने सोने के हवादार कमरे में सेज पर बैठी हुई थी । लाल चन्दन लगा हुआ उनका पाँव दासियों के हाथ में था और संन्यासिनी कौशिकी कहानी सुनाकर उनका मन बहला रही थी । महाराज को देखकर उन्होंने उठना चाहा, परन्तु महाराज ने उन्हें रोक दिया । वह वहीं बैठ गए और हालचाल पूछने लगे । वह उनके कष्ट के प्रति समवेदना प्रकट कर ही रहे थे कि गौतम जनेऊ से अपने पाँव का अँगूठा बाँधे चीखता-चिल्लाता वहां आ पहुंचा । उसने रोते हुए बताया कि महारानी के दर्शन के लिए आते समय उनके लिए कुछ फल-फूल लेने वह प्रमदवन चला गया था । जैसे ही उसने

अशोक के फूल तोड़ने के लिए अपना दाहिना हाथ बढ़ाया वैसे ही नीचे से एक साँप ने उसे डस लिया। उसके अंगूठे पर सांप के काटने के चिह्न भी बने हुए थे। बार-बार वह यही कहता कि उसे कराल-काल ने डस लिया है, उसकी नस-नस खिच रही है और उसके प्राण निकला चाहते हैं। वह कभी महाराज से कहता कि उसने बचपन से महाराज का साथ दिया है, इसलिए उसके मरने के बाद उसकी निपूती माता की देखभाल की जाय। कभी वह भूल से किये हुए अपने अपराधों के लिए महारानी से क्षमा मांगता।

महारानी धारिणी और कौशिकी ब्राह्मण गौतम को मरता देख घबरा उठीं। लेकिन महाराज ने उसे धीरज बंधाया और तुरन्त ध्रुवसिद्धि नामक वैद्य के पास ले जाने की आज्ञा दी। कुछ देर बाद ही प्रतिहारी ने लौट कर महाराज को बताया, "ध्रुवसिद्धि ने कहा है कि पानी के घड़े के सहारे किसी ऐसी वस्तु से विष उतारा जायगा, जिसमें नागमुद्रा जड़ी हो। इसलिए कोई ऐसी वस्तु ढूंढ़ कर ले आओ।"

यह सुनकर रानी धारिणी ने तुरन्त अपनी अंगुली से नागमुद्रा उतार कर उसे दे दी। और कहा, "काम हो जाने पर इसे मुझे ही लौटा देना।" महाराज ने भी कहा, 'काम हो जाने पर शीघ्र ही समाचार देना।"

थोड़ी देर बाद समाचार मिला कि गौतम का विष उतर गया है और वह भला-चंगा हो गया है। रानी धारिणी यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और महाराज अग्निमित्र भी मन्त्री का सन्देश पाकर किसी आवश्यक राज्य-कार्य में परामर्श देने वहाँ से चले गए। प्रतिहारी जयसेना उनके साथ थी। वहाँ से वे दोनों प्रमदवन गये। गौतम उन्हें मार्ग में ही मिल गया। उसने बताया कि काम पूरा हो चुका है। महाराज ने तब जयसेना को बिदा कर दिया और गौतम से पूछा, "क्योंजी, क्या माधविका ने बिना कुछ पूछे-ताछे ही मालविका और वकुलावलिका को छोड़ दिया ?"

गौतम ने बताया कि माधविका ने पूछताछ की थी, लेकिन वह भी कम चतुर न था। उसने माधविका से कहा, "महाराज के ग्रह विगड़ गए हैं, जिनकी शान्ति के लिए ज्योतिषियों ने सब बंदियों को मुक्त कर देने की राय दी है। यदि महारानी अपने किसी सेवक को भेजतीं तो रानी इरावती बुरा मान जाती। सो उनका मन रखने के लिए उन्होंने मुझे बुलाकर यह काम सौंप दिया है।"

माधविका ने इस बात को सच समझा और मालविका तथा वकुलावलिका को छोड़ दिया।

महाराज अपने मित्र की बुद्धि, और विशेषकर उसके स्नेह के कारण बड़ी सुगमता से अपना काम सिद्ध

होते देखकर फूले न समाए। उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की।

× × ×

उधर समुद्रगृह में मालविका अपनी सखी के साथ उनकी बाट जोह रही थी। वह चुपचाप वहाँ पहुंचकर एक झरोखे से उनको देखने लगे कि वे क्या कर रही हैं। बकुलावलिका मालविका को महाराज अग्निमित्र का एक चित्र दिखा रही थी। उन दोनों ने चित्रवाले महाराज को प्रणाम किया। मालविका उस दिन नाट्यशाला में लज्जा के कारण महाराज को पूरी तरह न देख पाई थी। इसलिए अब वह उन्हें चित्र में देखकर अघाती नहीं थी। किन्तु उस चित्र में महाराज सब ओर से दृष्टि हटा कर रानी इरावती की ओर देख रहे थे। यह देखकर मालविका को बड़ी जलन हुई और उसने क्रोध के मारे मुँह फेर लिया। राजा और गौतम तब तुरन्त उनके पास चले आये। उन्हें देखकर दोनों ने उनका स्वागत किया। कुछ क्षण बाद गौतम और बकुलावलिका बहाना बनाकर वहाँ से चले गए, लेकिन महाराज और मालविका वहीं रह गए। बाहर आकर गौतम ठंडी और चिकनी शिला पर लेट गया और कुछ देर बाद सो गया।

उसी समय छोटी रानी इरावती गौतम का हाल सुनकर प्रमदवन में उसे देखने आई। इसके साथ ही

वह चित्र में बने हुए महाराज को मनाना भी चाहती थी। उसे महाराज से रूठने का दुख था। इसी समय उन्हें महारानी धारिणी की एक दासी से यह समाचार भी मिला कि उसका सम्मान बढ़ाने के लिए महारानी ने मालविका और उसकी सखी को बंदी-गृह में डाल दिया है।

समुद्रगृह के द्वार पर पहुँचकर उन्होंने विदूषक गौतम को आराम से सोते हुए पाया। वह नींद में मालविका से बातें कर रहा था। यह सुनकर इरावती की दासी ने कहा, "यह बड़ा कृतघ्न ब्राह्मण है। पेट तो आपके दिये लड्डुओं से भरता है और सपने में बातें करता है मालविका से। इसे अभी साँप जैसी टेढ़ी लकड़ी से डराती हूँ।"

यह कहकर उसने सांप की तरह टेढ़ी एक लकड़ी उस पर डाल दी। गौतम एकदम डरकर उठा और चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाहट सुनकर महाराज अग्निमित्र तुरन्त समुद्रगृह से बाहर निकल आए और गौतम की सहायता के लिए आगे बढ़े, पर पीछे आती हुई मालविका ने साँप के डर से उन्हें रोक दिया। इतनी देर में गौतम को पता लग गया कि वह साँप नहीं, लकड़ी है। वह हँसकर बोला, "केतकी के कांटे से अपना अंगूठा

छेद कर सांप पर जो मैंने झूठा कलंक लगाया था उसीका यह फल मिला है ।"

खम्भे के पीछे छिपी हुई रानी इरावती यह सब देख रही थी। अब वह सामने आ गई और सबको लताड़ने लगी। उस समय मालविका की दशा बंधन से छूटे हुए उस पालतू कबूतर की तरह थी, जिसपर बिल्ली की दृष्टि पड़ गई हो। वकुलावलिका अपने को निरपराध प्रमाणित करने का असफल प्रयत्न कर रही थी। उस बेचारी का दोष भी क्या था ? क्या मेंढक की बोली सुनकर ही इन्द्र को पानी बरसाने की याद आती है ? विदूषक गौतम भी इरावती के कोप से बचने के लिए अपनी सब युक्तियाँ काम में ला रहा था। महाराज ने भी रानी को मनाते हुए कहा, "मुझे तो इसमें रूठने की कोई बात नहीं दिखाई देती। मैंने तो इन दोनों को इसलिए छोड़ दिया है कि उत्सव के दिन अपने सेवकों को अपराध करने पर भी बांध कर नहीं रखना चाहिए। वहां से छूटने पर ये दोनों मुझे प्रणाम करने यहाँ चली आई थीं।"

लेकिन इरावती का क्रोध शान्त नहीं हुआ। यही नहीं, वह बड़ी रानी पर भी क्रुद्ध हो उठी, लेकिन इसी समय उसकी दासी ने आकर कान में बताया कि यह सब काम गौतम का है। बस वह गौतम पर बरस पड़ीं।

राजा बड़ी मुसीबत में थे कि इस संकट से कैसे पीछा छूटे कि उसी समय प्रतिहारी जयसेना ने आकर निवेदन किया, "कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद के पीछे दौड़ रही थी कि एक पीला बन्दर वहाँ आ पहुँचा। उसे देख कर कुमारी बहुत डर गई है और देवी की गोदी में पड़ी हुई थरथर काँप रही है। अभी तक उन्हें चेत नहीं हुआ।" उसे सुध में लाने के लिए राजा को एक अच्छा बहाना मिल गया, जिसका लाभ उठाकर वह तुरन्त वहाँ से चल दिए। रानी इरावती भी घबराकर उनके साथ चली गईं।

उनके जाने के बाद भी मालविका का डर कम नहीं हुआ। कहने लगी, "अब न जाने क्या-क्या दंड भोगना पड़ेगा।" लेकिन ठीक इसी समय उन्हें सुनहरे अशोक के फूलने का समाचार मिला। वे दोनों बड़ी प्रसन्न हुईं और मालिन के पीछे-पीछे बड़ी रानी के पास चल दीं।

: ५ :

उसी समय राजभवन में चारों ओर से सुखद समाचार आने लगे। महारानी धारिणी के भाई वीरसेन ने विदर्भ देश से अपनी विजय का समाचार भेजा था। उन्होंने विदर्भराज को हराकर उनके भाई माधवसेन को छुड़ा लिया था और अनेक बहुमूल्य रत्न, हाथी,

घोड़े तथा अच्छे-अच्छे कलाकार-सेवक महाराज को भेंटस्वरूप भेजे थे।

मालविका पर भी भाग्य ने दया की थी। सुनहरा अशोक उसके चरण-प्रहार से फूल उठा था। महारानी धारिणी बहुत प्रसन्न थीं और अशोक के फूलों की शोभा देखने के लिए उन्होंने महाराज अग्निमित्र को आमन्त्रित किया था।

उस दिन संन्यासिनी कौशिकी को भी क्या सूझी! उसने महारानी से कहा कि यदि उन्हें अपने-आपको शृंगार-कला में निपुण समझने का गर्व है तो वह मालविका का विवाह के योग्य शृंगार कर अपनी कला का परिचय दें। महारानी प्रसन्न तो थीं ही, उन्होंने नव-वधू के विशेष अलंकारों से मालविका को बड़े सुहावने ढंग से सजा दिया।

महारानी का सन्देश पाकर महाराज अग्निमित्र विदूषक के साथ प्रमदवन में पधारे। वसन्त का यौवन जैसे लौट आया था। अशोक ने लाल फूलों की चादर ओढ़ रखी थी। जब महारानी ने महाराज का स्वागत किया तो मालविका रानी के पास ही खड़ी थी। उसे नववधू के वेष में देखकर राजा के हृदय में आशा की एक लहर उठी। मालविका अपने विवाह-वेष का

कारण जानती थी, परन्तु फिर भी उसकी बायीं आँख बार-बार फड़क रही थी और उसका मन कमल-पत्र पर पड़े जल की बूंदों की तरह काँप रहा था। वह बड़ी सुन्दर लग रही थी।

उसी समय विदर्भ देश से आए हुए उपहारों में से संगीत-कला-निपुण दो युवतियाँ महाराज और महारानी के सामने पेश की गईं। महारानी ने प्रसन्न होकर मालविका को उनमें से एक युवती को अपनी साथिन के रूप में चुन लेने के लिए कहा।

लेकिन जैसे ही दोनों युवतियों ने मालविका को देखा तो वे आश्चर्य से चकित रह गईं। उन्होंने अपनी राजकुमारी को पहचान लिया था। उन्होंने उसे झुककर प्रणाम किया और फिर गले मिलकर रोने लगीं। सब हैरान रह गए। पूछने पर पता चला कि यही वह मालविका है, जिसका विवाह महाराज अग्निमित्र से करने के लिए माधवसेन उसे विदिशा ला रहे थे। यही उस माधवसेन की छोटी बहन है, जिसे महाराज अग्निमित्र की विजयी-सेना के कारागार से मुक्त किया गया है।

राजकुमारी मालविका का वास्तविक परिचय पा कर महारानी बोल उठी, "मैंने चन्दन से खड़ाऊँ का काम लेकर बड़ा पाप किया है।"

युवतियों ने आगे बताया कि माधवसेन मालविका के साथ विदिशा आते समय जब अपने ही भाई द्वारा पकड़ लिये गए तो उनके मन्त्री सुमति मालविका को अपने साथ लेकर गुप्त रूप से कहीं चले गए।

उसके बाद क्या हुआ, यह वे कुमारियां नहीं जानती थीं, लेकिन उसी समय पंडिता कौशिकी बोल उठीं, "उसके बाद की कथा मैं बताती हूँ।"

उनकी आवाज सुनकर वे युवतियां उन्हें भी पहचान गईं। वह मंत्री सुमति की बहन थीं। उन्होंने आगे की कथा बताते हुए कहा, "मेरे भाई सुमति माधवसेन के पकड़े जाने पर मालविका को आपके पास पहुंचाने स्वयं चल पड़े। रास्ते में विदिशा जाते हुए वैश्यों का एक दल मिला और वह उनके साथ हो लिये। थोड़ी दूर जाने के बाद उन्होंने एक जंगल में प्रवेश किया। तभी सहसा डाकुओं का एक दल उनपर टूट पड़ा। उन डाकुओं की छातियों पर तरकशों के पट्टे कसे थे, एड़ियों तक मोर-पंख लटक रहे थे और उन सबके हाथों में धनुष थे। वे ऐसे भयंकर थे कि उनसे लड़कर जीतना कठिन था। वणिक दल के सैनिकों ने कुछ समय तक तो उनका सामना किया, पर डाकुओं ने उन्हें शीघ्र ही मार भगाया।

"तब मेरे भाई ने उन डाकुओं से मालविका को बचाने

के लिए अपने प्राण दे दिये। उन्होंने स्वामी का ऋण चुका दिया। यह देखकर मैं मूर्छित हो गई और जब मुझे होश आया तो देखती क्या हूँ कि मालविका का कहीं पता नहीं है। तब अपने भाई का दाह-संस्कार करके मैं आपके देश चली आई और संन्यासिनी का वेष धारण कर लिया। फिर वीरसेन ने मालविका को डाकुओं से छुड़ाकर यहाँ महारानी के पास पहुँचा दिया। यहाँ पहुँचकर मैंने इसे देखा। यही मेरी कथा है।"

यह कथा सुनकर महाराज को बड़ा पछतावा हुआ। महारानी ने देवि कौशिकी से कहा, "भगवती, यह बात छिपाकर कि मालविका इतने ऊँचे घराने की है, आपने अच्छा नहीं किया।"

कौशिकी ने क्षमा-याचना करते हुए अपने मौन का कारण बताया, "मालविका के पिता के जीवन-काल में ही एक सिद्ध महापुरुष यात्रा करता हुआ उनके यहाँ आया था। उसने मेरे सामने ही भविष्यवाणी की थी कि मालविका एक वर्ष तक दासी बनकर रहेगी। उसके बाद योग्य पति से इसका विवाह होगा। जब मैंने देखा कि आपके चरणों में इसका कर्मभोग कट रहा है तो मैं चुप हो गई। मैं समझती हूं कि मैंने अच्छा ही किया।"

इसी समय कंचुकी ने आकर निवेदन किया,"मंत्रीजी ने कहलाया है कि विदर्भ के लिए जो प्रबन्ध करना था, वह सब कर दिया है, पर मैं महाराज की इच्छा भी जान लेना चाहता हूं।"

महाराज ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि यज्ञसेन और माधवसेन दोनों वरदा नदी के उत्तर और दक्षिण तटों पर अपने-अपने अलग-अलग राज्य स्थापित कर उसी तरह सुख से राज करें जिस तरह दिन और रात को बाँट कर सूर्य और चन्द्रमा अलग-अलग चमकते हैं।"

मंत्रिमंडल ने इस विचार का प्रसन्नता के साथ अनुमोदन किया। तब महाराज अग्निमित्र सेनापति वीरसेन को इस आशय का पत्र भेजे जाने की आज्ञा दे ही रहे थे कि उन्हें सेनापति पुष्यमित्र का पत्र भेंट किया गया।

अब तो महारानी उत्सुक हो उठीं। उनका पुत्र वसुमित्र सेनापति पुष्यमित्र के साथ ही था। पुष्यमित्र ने अपने पत्र द्वारा अपने पुत्र अग्निमित्र को सूचित किया था, "अश्वमेध की दीक्षा लेकर मैंने एक वर्ष की अवधि बांधकर जो घोड़ा छोड़ा था और सौ राजपुत्रों के साथ कुमार वसुमित्र को जिसकी रक्षा के लिए नियुक्त कर रखा था उसे सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर यवनों की

घुड़सवार सेना ने पकड़ लिया। इस पर बड़ा युद्ध हुआ। उस युद्ध में धनुर्धारी वसुमित्र ने बड़ी वीरता से शत्रुओं को मार भगाया और अपना छिना हुआ घोड़ा लौटा लिया। मैं अब अश्वमेध यज्ञ कर रहा हूँ। इसलिए आप तुरन्त बहुओं को लेकर चले आओ।"

महाराज और महारानी इस सुखद समाचार को सुनकर प्रसन्न हो उठे। महारानी धारिणी अब केवल वीर-पति की पत्नी ही नहीं थी, बल्कि वीर-पुत्र की माता भी थीं। उन्हें हर्ष होना स्वाभाविक ही था। और सबको भी इस समाचार से बड़ा हर्ष हुआ। महाराज ने उस अवसर पर यज्ञसेन के साले और अन्य सब बंदियों को मुक्त कर दिया।

उस हर्ष और उल्लास में महारानी धारिणी मालविका को नहीं भूलीं। अपनी प्र[illegible]र उन्होंने उस शुभ-अवसर पर उसे महाराज को सौंपने की इच्छा प्रकट की। रानी इरावती अब सबकुछ जान चुकी थीं। इसलिए उसने भी महारानी के इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

अन्त में महारानी धारिणी ने वधु-वे[illegible] वाली मालवि[illegible] को सचमुच दुलहिन बना कर राजा को सौंप दिया, और पूछा, "आर्य-पुत्र, क्या मैं आपकी कुछ और मनचाही

बात कर सकती हूँ ?"

महाराज ने कहा, "देवि, मैं तो बस इतना ही चाहता हूँ कि तुम सदा मुझ पर प्रसन्न रहो। फिर भी इतना और हो जाय कि जबतक अग्निमित्र राज्य करे तबतक उनकी प्रजा में किसी प्रकार के उपद्रव आदि न हों।"

●

६३ कलवार की करतूत (टा०) ।)
६४ हमारे जमानेकी गुलामी ,, ।॥)
६५ बुराई कैसे मिटे ? ,, १)
६६ बालकों का विवेक ,, ।॥)
६७ हम करें क्या ? ,, ३॥)
६८ धर्म और सदाचार ,, १।)
६९ अंधेरे में उजाला १॥)
७० कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल) २)
७१ लोक-जीवन (कालेलकर) ३॥)
७२ जीवन-साहित्य ,, २)
७३ साहित्य और जीवन २)
७४ कब्ज (म० प्र० पोद्दार) १॥)
७५ राजनीति प्रवेशिका १)
७६ जीवन-संदेश (ख.जिब्रान) १।)
७७ अशोक के फूल ३)
७८ पृथिवीपुत्र (वा० अग्रवाल) ३)
७९ कां० का इतिहास ३ भाग १०)
८० पंचदशी (सं० य० जैन) १॥)
८१ सप्तदशी २)
८२ रीढ़ की हड्डी १॥)
८३ अमिट रेखायें ३)
८४ एक आदर्श महिला १)
८५ चारा दाना ।)
८६ राष्ट्रीय गीत ।)
८७ तामिल-वेद (तिरुकुरल) १॥)
८८ आत्म-रहस्य ३)
८९ थेरी-गाथाएं १॥)
९० बुद्ध और बौद्ध साधक १॥)
९१ जातक-कथा (आनंद कौ.) २॥)
९२ हमारे गांव की कहानी १॥)
९३ साग-भाजी की खेती ३॥)
९४ पशुओं का इलाज (प.प्र.) ॥)
९५ रामतीर्थ-संदेश (३ भाग) १=)
९६ रोटी का सवाल (क्रोपा०) ३)
९७ नवयुवकों से दो बातें ,, ।=)
९८ पुरुषार्थ (डा० भगवानदास) ६)
९९ काश्मीर पर हमला २)
१०० शिष्टाचार ॥=)
१०१ मानवीय क्रांति ।)
१०२ भारतीय संस्कृति ३॥)
१०३ आधुनिक भारत ५)
१०४ बद्रीनाथ ।=)
१०५ जंगल की सैर ।=)
१०६ भीष्मपितामह ।=)
१०७ शिवि और दधीचि ।=)
१०८ विनोबा और भूदान ।=)
१०९ कबीर के बोल ।=)
११० गांधीजी का विद्यार्थी जीवन ।=)
१११ गंगाजी ।=)
११२ गौतम बुद्ध ।=)
११३ निषाद और शबरी ।=)
११४ गांव सुखी, हम सुखी ।=)
११५ कितनी जमीन ।=)
११६ ऐसे थे सरदार ।=)
११७ चैतन्य महाप्रभु ।=)
११८ कहावतों की कहानियां ।=)
११९ जमाने की मांग =)

स्वप्नवासवदत्ता

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

११

भास-कृत

स्वप्नवासवदत्ता

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

●

१९५४

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५४
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। इस विचार को इस माला द्वारा मूर्त्त रूप दिया जा रहा है।

इस पुस्तकमाला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। कई आगे निकलेंगी। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'[illegible]ता' महाकवि भास की रचना है। भास बड़े प्रसिद्ध कवि हुए हैं। कालिदास, बाणभट्ट और राजशेखर आदि स्वनामधन्य कवियों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की है। अभिनव गुप्त, वामन और भामह आदि आचार्यों ने भी उनके रूपकों का उल्लेख किया है, लेकिन खेद है कि इतनी प्रसिद्धि होने पर भी इनके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि यह कब और कहां हुए। अधिकांश विद्वान मानते हैं कि यह तीसरी सदी में हुए थे।

इनके लिखे तेरह रूपकों का पता चला है। पर बहुत से विद्वानों को इस बारे में शंका है कि वे सब भास के लिखे हुए हैं। हां, जहां तक 'स्वप्न-वासवदत्ता' का सम्बन्ध है, उसके बारे में ये लोग भी कहते हैं कि वह भास-कृत है। इस नाटक में कवि की कला का अपूर्व रूप उभरा है। इसमें वत्सराज उदयन और मगध की राजकुमारी पद्मावती के विवाह की कहानी है, लेकिन वस्तुतः इस नाटक में उदयन की पहली रानी वासवदत्ता के अनन्य प्रेम और मंत्री यौगन्धरायण की अनुपम स्वामिभक्ति का अपूर्व चित्रण हुआ है। दूसरे नाटकों की तरह इसमें अस्वाभाविकता का लेश भी नहीं है, न इसमें राजवर्ग की कामुकता है, न रनवास के षड्यंत्रों का चक्रव्यूह। यह तो निर्दोष परन्तु विशद प्रेम का मुग्ध करने वाला चित्र है। सब चरित्र एक-से-एक बढ़कर उदार हैं।

नाटकीय तंत्र की दृष्टि से भी यह एक सफल नाटक है। भास छोटे-छोटे वाक्य लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु भाव इनमें भरे रहते हैं। इनकी भाषा सरल, स्वाभाविक और भावपूर्ण है। यह मानव-हृदय के सच्चे पारखी हैं। प्रकृति-चित्रण में भी यह किसी से पीछे नहीं हैं। जयदेव ने इन्हें कविता-कामिनी का हास माना है।

इनके नाटकों का पता अभी सन् १९०९ और १९१२ में ही लगा है।

—सम्पादक

स्वप्नवासवदत्ता

परिचय

प्राचीन काल में वत्स नाम का एक प्रसिद्ध राज्य था। कौशाम्बी उसकी राजधानी थी। महाराज उदयन वहां के राजा थे। वासवदत्ता उनकी रानी का नाम था। वह उज्जैन के प्रसिद्ध राजा प्रद्योत की बेटी थी। अपनी वीरता के कारण प्रद्योत चंडमहासेन के नाम से प्रसिद्ध थे। एक बार उदयन के एक शत्रु आरुणि ने कौशाम्बी पर हमला करके वत्स पर अधिकार कर लिया। उदयन एक वीर योद्धा थे। यौगन्धरायण और रुमण्वान जैसे नीतिनिपुण उनके मंत्री थे। फिर भी वह हार गए और वहां से भाग कर लावाणक में रहने लगे। वह वत्सराज के भीतर मगध की सीमा पर एक छोटा-सा जनपद था।

महाराज उदयन तो महारानी वासवदत्ता के प्रेम के सहारे और शिकार खेल कर दिन बिता देते थे, लेकिन उनके मंत्रियों को यह सब अच्छा नहीं लगता था। वे अपना राज्य फिर से जीतने का उपाय सोचा करते थे। आखिर यौगन्धरायण ने खूब सोच-विचार कर एक योजना बनाई। उसके अनुसार काम भी शुरू कर दिया

गया। उन्होंने वह काम कैसे किया और वह क्या था, उसी का इस नाटक में वर्णन किया गया है।

: १ :

मगध की राजधानी राजगृह के निकट एक तपोवन था। उसमें मगध की राजमाता महादेवी रहती थीं। वहीं उनकी बेटी पद्मावती उनसे मिलने आया करती थी। एकबार जब वह उनसे मिलकर वापस राजगृह लौट रही थी तो रास्ते में एक आश्रम में ठहरीं। इसी समय वत्सराज की रानी वासवदत्ता और मंत्री यौगन्धरायण भी वहाँ आये। यौगन्धरायण संन्यासी के वेष में थे और वासवदत्ता मालवा की स्त्रियों की पोशाक पहने हुए थी। आवन्तिका उनका नया नाम था। उस समय मगध के राजपुरुष 'हटो' 'हटो' कह कर लोगों को हटा रहे थे। वासवदत्ता को इस तिरस्कार से बड़ा दुख हुआ, परन्तु यौगन्धरायण ने उनसे कहा, "अनजान में तो देवताओं का भी तिरस्कार हो जाता है। सुख-दुख पहिए के समान घूमते रहते हैं। फिर आपने तो पति के कल्याण के लिए सुख का त्याग किया है, इसलिए आपको मान-अपमान का विचार नहीं करना चाहिए।"

इसी समय कंचुकी ने आकर राजपुरुषों को लोगों के साथ ऐसा बर्ताव करने से रोक दिया। इसी कंचुकी से यौगन्धरायण को पद्मावती के बारे में सब बातें मालम

हुई। उसने मन-ही-मन सोचा—ओह, ठीक है ! यह मगध की राजकुमारी पद्मावती है। इसके बारे में हमारे ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की है कि यह हमारी रानी होगी। हमारे महाराज की यह भावी महारानी है—यह जानकर मेरे मन में भी इसके प्रति भक्ति उत्पन्न हो गई है। इतने में ही दासियों के साथ राजकुमारी वहां आ पहुँची। मुनि-पत्नियों ने उसका स्वागत किया। उसकी बातें सुनकर वासवदत्ता मन-ही-मन सोचने लगी—यह राजकुमारी रूपवती ही नहीं, मीठा बोलने वाली भी है।

और उसके मन में भी बहन का-सा स्नेह पैदा होने लगा। तभी तापसी ने दासी से पूछा, "भद्रे, पद्मावती का अभी किसी राजा से संबंध हुआ या नहीं ?"

दासी ने उत्तर दिया, "हाँ, पद्मावती के विवाह की बातचीत उज्जैन के राजा प्रद्योत के पुत्र के साथ चल रही है। पर अभी तक सम्बन्ध पक्का नहीं हुआ है।"

इस समाचार से वासवदत्ता को बड़ा हर्ष हुआ, क्योंकि इस नाते से पद्मावती उनकी भाभी होने जा रही थी।

लेकिन पद्मावती ने इस ओर ध्यान न देकर कंचुकी से कहा, "मैंने अपनी आत्मा के कल्याण के लिए मुनिजनों का दर्शन कर लिया। अब आप यहां के तपस्वियों से निवेदन कर दें कि उन्हें जो कुछ चाहिए वह हमारी ओर से मिलेगा।"

ऐसा ही किया गया, लेकिन कोई आगे नहीं आया। वहां के सब लोग सदा सन्तुष्ट रहते थे, पर इस अवसर से लाभ उठाकर योगन्धरायण ने राजकुमारी से निवेदन किया, "यह आवन्तिका मेरी छोटी बहन है। इसका पति परदेस गया हुआ है। कुछ दिन के लिए मैं इसे आपके पास छोड़ना चाहता हूँ।"

कंचुकी ने यह सुन कर पद्मावती से कहा, "श्रीमती-जी, इस तपस्वी की यह प्रार्थना तो बहुत बड़ी है। इसे कैसे स्वीकार किया जा सकता है? तप, धन और प्राण सबकुछ दिया जा सकता है, पर धरोहर की रक्षा करना बड़ा ही कठिन है।"

राजकुमारी ने उत्तर दिया, "जो चाहे मांगने की घोषणा करने के बाद अब नहीं कैसे किया जा सकता है। इसकी प्रार्थना स्वीकार करनी ही पड़ेगी।"

राजकुमारी के इस विचार से यौगन्धरायण को बड़ी खुशी हुई और उसने वासवदत्ता से राजकुमारी के पास जाने को कहा। उसे जाना पड़ा। वह दुखी तो बहुत हुई, पर और कोई रास्ता ही नहीं था। राजकुमारी ने उसका बड़ा स्वागत किया। उसके रूप-गुण आदि से सबने उसे बड़े घर की बेटी समझा।

इसी समय राह चलता एक ब्रह्मचारी वहाँ आया।

दोपहर का समय था। विश्राम करने के लिए वह

वहां रुक गया। वह लावाणक में रहकर पढ़ा करता था। अब वहां एक दुर्घटना हो गई थी, जिसके कारण उसे बीच ही में लौटना पड़ा।

यौगन्धरायण ने पूछा, "वह क्या घटना हुई ?"

ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "वहां राजा उदयन रहते थे। एक दिन वह शिकार खेलने गये हुए थे कि पीछे गांव में आग लग गई और उनकी रानी वासवदत्ता उसमें जल कर मर गई। रानी को बचाने की चेष्टा में मंत्री यौगन्धरायण भी जल मरे। लौटने पर जब राजा ने यह सब सुना तो उनका बुरा हाल हुआ। किसी तरह मंत्रियों ने रोका, नहीं तो वह भी उसी आग में जल मरते। उन्होंने बहुत विलाप किया। जलने से बचे हुए रानी के गहनों को छाती से लगाकर वे इतना रोये कि बेहोश हो गए।"

यह कहानी सुनकर वासवदत्ता को बड़ा दुख हुआ। वह रोने लगी। पद्मावती ने समझा कि एक दुखिया का दुख सुनकर इसकी करुणा जाग उठी है। इधर यौगन्धरायण ने ब्रह्मचारी से फिर पूछा, "क्या किसी मंत्री ने राजा को ढाढ़स नहीं बंधाया ?"

ब्रह्मचारी ने कहा, "क्यों नहीं बंधाया ! मंत्री रुमण्वान ने राजा को शांत करने में कुछ भी उठा न रखा। राजा के न खाने पर वह भी नहीं खाता। रोता रहता। उनके दुख को अपना दुख मानता। बड़ी [illegible]।

से वह राजा को उस गांव से ले गया। उनके जाते ही वह गांव उजड़ गया। इसलिए मैं भी वहां से चला आया। इसके आगे क्या हुआ यह मुझे नहीं मालूम।"

यह कथा सुनाकर ब्रह्मचारी वहां से चला गया। कुछ देर बाद यौगन्धरायण ने भी राजकुमारी और वासवदत्ता से बिदा ली। सांझ हो गई थी, इसलिए राजकुमारी भी तापसी को प्रणाम कर के सबके साथ घर चली गई।

: २ :

वासवदत्ता पद्मावती के पास रहने लगी और धीरे-धीरे उनमें प्रीति बढ़ने लगी। वे एक साथ खाती-पीतीं, बैठतीं और खेलतीं। एक दिन गेंद खेलते-खेलते वासवदत्ता पद्मावती के रूप की प्रशंसा करने लगी। इसी प्रसंग में विवाह की बात चल पड़ी। दासी ने बताया कि पद्मावती उज्जैन के राजा प्रद्योत के बेटे से विवाह नहीं करना चाहती। वासवदत्ता ने पूछा, "तो किससे करना चाहती है।" दासी ने उत्तर दिया, "वत्सराज उदयन से।"

वासवदत्ता चौंक पड़ी। उसने पूछा, "क्यों? उसमें ऐसा क्या गुण है?"

दासी बोली, "वे बड़े ही स्नेही, दयालु और अनुरागशील हैं।" यह सुनकर वासवदत्ता मन-ही-मन गद्गद्

हो उठी। इसी समय दासी ने पद्मावती से कहा, "राज-कुमारीजी, यदि वह राजा कुरूप हुआ तो क्या करोगी?"

वासवदत्ता बोल उठी, "नहीं–नहीं, सखी, वह राजा बड़ा ही सुन्दर है।"

पद्मावती ने पूछा, "आर्ये, आप उस राजा को कैसे जानती हैं?"

इस प्रश्न से एक बार तो वासवदत्ता घबरा गई, पर तुरन्त ही एक उपाय उसके ध्यान में आ गया। उसने कहा, "वह राजा बड़ा सुन्दर है—इस तरह उज्जैन के लोग कहा करते हैं।"

पद्मावती बोली, "आपका कहना ठीक हो सकता है। उज्जैन में राजा उदयन को सभी जानते हैं। जिसकी सभी प्रशंसा करें वही तो सच्चा सौन्दर्य है।"

इसी समय राजकुमारी की धाय ने आकर सूचना दी कि पद्मावती की सगाई वत्सराज उदयन से हो गई है। वासवदत्ता सहसा बोल उठी, "हाय, यह तो बड़ा अन्याय है।"

धाय ने पूछा, "इसमें अन्याय क्या हुआ?"

वासवदत्ता फिर पकड़ी गई, लेकिन किसी तरह संभल कर वह बोली, "और तो कुछ नहीं, लेकिन राजा दूसरे विवाह के लिए इतनी जल्दी तैयार हो गया, यही अन्याय है।"

धाय ने उत्तर दिया, "आर्ये, बड़े लोगों के हृदय विचार-प्रधान होते हैं। समझाने-बुझाने से वे शीघ्र मार्ग पर लाये जा सकते हैं।"

वासवदत्ता ने फिर पूछा, "आर्ये, क्या उदयन ने स्वयं आकर पद्मावती से विवाह करने की इच्छा प्रकट की थी ?" धाय ने बताया, "नहीं, राजा उदयन ने खुद विवाह करने की इच्छा प्रकट नहीं की। वह तो किसी दूसरे काम से यहाँ आये हैं। उनके कुल, रूप और गुण को देखकर मगध के महाराज ने अपने-आप ही अपनी बहन उनको दी है।"

इस उत्तर से वासवदत्ता को सन्तोष हो गया। वह समझ गई कि इसमें राजा उदयन का कोई अपराध नहीं है। इसी समय दासी ने आकर सूचना दी कि पद्मावती का विवाह आज ही होगा। यह समाचार पाकर वे सब जल्दी-जल्दी अंदर महल में चले गए।

देखते-देखते विवाह की तैयारियाँ शुरू हो गई। चारों तरफ हर्ष छा गया। सब उसमें डूब गए। लेकिन इस समय भी एक व्यक्ति ऐसा था, जो सुखी नहीं था। महाराज उदयन का विवाह पद्मावती के साथ हो रहा है— यह देखकर वासवदत्ता को बहुत दुख हुआ, पर वह कर कुछ भी नहीं सकती थी। मंत्री यौगंधरायण का यही आदेश था। जब वह बहुत दुखी हुई तो विवाह की

भीड़भाड़ से दूर प्रमदवन में चली गई और वहां बैठ कर अपने भाग्य पर विचार करने लगी।

लेकिन उसके भाग्य में शांति से बैठना नहीं बदा था। एक दासी उसे ढूंढ़ती हुई वहां भी आ पहुँची। वह जय-माला बनाने के लिए फूल लाई थी। बोली, "महारानीजी कहती हैं कि आप बड़े घर की बेटी हैं, पद्मावती पर आपका स्नेह है और शिल्पकला में चतुर भी हैं। इस कारण आप यह वरमाला गूंथ दें।"

वासवदत्ता को इस बात से और भी दुख हुआ, पर छाती पर पत्थर रखकर वह माला गूंथने लगी। सबने उस माला की बड़ी प्रशंसा की, लेकिन उसके मुंह से यही निकला, "हाय, अब क्या करूं? मेरे ऊपर यह कैसी विपत्ति आ पड़ी है? मेरे पति भी दूसरे के हो गए!"

: ३ :

विवाह के बाद एक दिन पद्मावती सब सखी-सहेलियों के साथ प्रमदवन गई। वह यह देखने आई थी कि शेफालिका के पौधे फूले हैं या नहीं। उसका विचार था कि इन फूलों को देखकर महाराज उसकी प्रशंसा करेंगे। बातों-ही-बातों में उसने कहा, "मुझे एक बात का संदेह है कि क्या देवी वासवदत्ता भी महाराज को उतना ही चाहती थी जितना मैं चाहती हूँ?"

इस पर वासवदत्ता बोली, "वह तो तुमसे भी अधिक

चाहती थी।" पद्मावती चौंक पड़ी। पूछा, "यह बात तुम कैसे जानती हो ?"

वासवदत्ता घबराई तो, पर फिर शीघ्र ही संभल कर उसने कहा, "यदि वह कम चाहती तो अपने बंधु-बांधवों को छोड़कर उनके साथ कैसे चली जाती ?"

इसी तरह वीणा सीखने की बात चली तो पद्मावती ने बताया, "एक दिन मैंने उनसे कहा था कि मैं आपसे वीणा बजाना सीखूंगी तो वह बोले ही नहीं। बस एक लंबी सांस खींच कर चुप रह गए। जान पड़ता है तब उनको अपनी रानी वासवदत्ता की याद आ गई थी।"

वे इसी तरह बातें कर रही थीं कि विदूषक वसंतक के साथ महाराज उदयन भी वहां आ गए। उन्हें देखकर पद्मावती सब सखियों के साथ चमेली के कुंज में चली गई, क्योंकि वासवदत्ता का यह नियम था कि वह किसी पुरुष के सामने नहीं आवेगी। महाराज बाहर ही एक शिला पर बैठ कर पद्मावती की राह देखने लगे। लेकिन धूप बड़ी तेज थी। वसंतक ने कहा, "आओ, हम चमेली के कुंज में चल कर बैठें।"

उन्हें उधर आते देख कर पद्मावती सहसा घबरा गई, परन्तु दासी ने तुरन्त चमेली की एक डाल हिला दी। उस पर भौंरे बैठे हुए थे। वे उड़ कर वसंतक को काटने लगे। इसलिए वे अंदर न आ सके। बाहर ही बैठ गए

और बातें करने लगे। वसंतक ने पूछा, "महाराज, यह बताइए कि आप वासवदत्ता को अधिक चाहते थे या पद्मावती को अधिक चाहते हैं ?"

महाराज ने पहले तो इस प्रश्न को टालना चाहा। उन्हें डर था कि वसंतक किसी से कह देगा, परन्तु जब उसने बहुत आग्रह किया और विश्वास दिलाया तो वह बोले, "पद्मावती सुन्दर है, शीलवती है, भोली है और मीठा बोलने वाली है, लेकिन मेरा मन अब भी वासवदत्ता की ओर लगा हुआ है। उस मन को वह नहीं जीत सकी।"

यह उत्तर सुनकर वासवदत्ता को बहुत खुशी हुई। लेकिन पद्मावती की दासी ने कहा, "राजकुमारी, आपके पति को वासवदत्ता का बड़ा पक्षपात है।" पद्मावती ने तुरन्त उत्तर दिया, "नहीं-नहीं, ऐसा न कहो। महाराज दोनों को एक समान चाहते हैं तभी तो वह वासवदत्ता के गुणों को अभी तक नहीं भूले।"

इधर राजा ने वसंतक से पूछा, "अब तुम बताओ कि तुमको वासवदत्ता अच्छी लगती थी या पद्मावती अच्छी लगती है !"

काफी टालमटोल के बाद वसंतक ने जवाब दिया, "देवी पद्मावती में सब गुण हैं, पर वासवदत्ता में सबसे बड़ा गुण यह था कि वह बढ़िया स्वादिष्ट भोजन लेकर 'आर्य वसन्तक, कहाँ गए' इस तरह मुझे खोज-खोज कर

खिलाती थीं। इसलिए वह मुझे ज्यादा प्रिय थीं।"

इन बातों की याद आ जाने से महाराज को बड़ा दुख हुआ। आँखों में आँसू भर आये। यह देख कर वसन्तक उन्हें धीरज बँधाने लगा। महाराज ने उत्तर दिया, "तुम मेरी दशा नहीं जानते। दृढ़ स्नेह कभी नहीं छूटता। छोड़ने की कोशिश करने पर वह और भी दृढ़ तथा नया-सा हो जाता है। हाँ, थोड़ा रो लेने से मन अवश्य हल्का हो जाता है।" वसन्तक अब क्या कहता। महाराज का मुख आँसुओं से तर हो गया था, इसलिए मुंह धोने के लिए वह पानी लेने चला गया।

आँसू आ जाने के कारण महाराज ने आँखों पर कपड़ा रख लिया था, अतः वह इधर-उधर नहीं देख सकते थे। यह देख कर वासवदत्ता ने अनुभव किया कि वहाँ से जाने का यही ठीक अवसर है। वह पद्मावती को महाराज के पास ठहरने के लिए कहकर चुपचाप वहाँ से चली गई। कुछ देर बाद लता के पत्ते में पानी लेकर वसन्तक लौट आया। उसने पद्मावती को वहां देखा तो चौंक पड़ा। पद्मावती ने पूछा, "यह सब क्या है ?"

वह झिझकते-झिझकते बोला, "देवी, कास के फूलों का पराग उड़ कर महाराज की आँखों में पड़ गया था। उसी के कारण इनकी आंखों से आँसू निकल रहे हैं। यह जल है। कृपा कर इन्हें दे दीजिए।"

पद्मावती जल लेकर महाराज के पास गई, बोली, "महाराज की जय हो। यह जल है, मुंह धो लीजिये।"

उसे देखकर महाराज भी चौंक पड़े, पर वसंतक ने चुपके से सब बातें उनके कान में कह दीं। इसलिए उन्होंने रानी को आदरपूर्वक पास बैठाकर वही बात कही जो वसंतक ने बताई थी। फिर वसंतक ने उन्हें याद दिलाया कि दोपहर-बाद मगध के महाराज उनको आगे करके मित्रों से मिलेंगे। इसलिए अब यहाँ से चलना चाहिए।

इस पर वे वहाँ से चले गए।

: ४ :

महाराज उदयन को राजमहलों में सब सुख प्राप्त थे, लेकिन उन्हें अपनी पहली रानी वासवदत्ता की बड़ी याद आती थी। इस नये विवाह से वह याद और भी बढ़ गई थी। वह एक दिन इसी चिन्ता में थे कि उन्हें देवी पद्मावती के बीमार हो जाने की सूचना मिली। दासी ने बताया कि पद्मावती के सिर में पीड़ा है। इस समाचार से उनकी चिन्ता और भी बढ़ गई। वह तुरन्त वसंतक के साथ समुद्रगृह की ओर चले। पद्मावती की शैया वहीं बिछी थी। समुद्रगृह में पहले वसंतक ने प्रवेश किया, परन्तु जैसे ही उसने अन्दर पैर रखा वह चिल्ला उठा। दीपक के मन्द प्रकाश में उसने देखा कि वहाँ एक साँप है। उसने महाराज को भी अंदर जाने से रोका,

लेकिन वह नहीं माने । आगे बढ़कर उन्होंने ध्यान से उस साँप को देखा और हँस पड़े। बोले, "मूर्ख, यह तो बड़े फाटक पर लटकने वाली बंदनवार की माला है। मन्द-मन्द हवा के झोंकों से हिलते हुए दीपक के मन्द-प्रकाश में यही साँप की तरह मालूम होती है।"

वसंतक की जान-में-जान आई, परन्तु अंदर जाने पर पद्मावती उनको वहां नहीं मिली। वह अभी तक वहाँ आई ही नहीं थी। इसलिए महाराज वहाँ बैठकर उसकी राह देखने लगे। लेकिन पलंग पर बैठने के कारण उन्हें नींद आने लगी। सो उन्होंने वसंतक से कहा, "मित्र, मुझे नींद आती है। कोई कहानी कहो।"

वसंतक कहानी कहने लगा, "उज्जैन नाम की एक नगरी है। वहाँ बड़े सुन्दर-सुन्दर जलों के स्नान हैं।"

राजा ने सहसा टोककर पूछा, "क्या कहा! उज्जैन?"

वसंतक बोला, "यदि यह कहानी आपको पसंद न हो तो दूसरी कहूँ!"

राजा ने कहा, "पसंद की तो कोई बात नहीं, परन्तु उज्जैन का नाम सुनकर मुझे उज्जैन के राजा की बेटी वासवदत्ता की याद आ गई।"

इस पर वसंतक बोला, "अच्छा जाने दीजिये। मैं दूसरी कहानी कहता हूँ। एक ब्रह्मदत्त नाम का नगर है। उसमें काम्पिल्य नाम के राजा रहते थे।"

राजा ने तुरंत टोका, "अरे मूर्ख, राजा ब्रह्मदत्त था और नगर काम्पिल्य, ऐसा कहो। उलटा क्यों कहते हो?"

इसी तरह मनोविनोद चल रहा था कि राजा को नींद आ गई। यह देखकर वसंतक भी अपनी रजाई लेने चला गया, क्योंकि उस समय सर्दी पड़ रही थी।

उधर वासवदत्ता को भी पद्मावती के सरदर्द का समाचार मिला। वह उसे देखने तुरन्त समुद्रगृह में पहुँची। दासी उसको अंदर जाने को कह कर दवा लेने चली गई। भीतर जाकर वासवदत्ता ने देखा कि पद्मावती अकेली सो रही है। बस एक दीपक जल रहा है। उसके धुंधले प्रकाश के कारण ही वासवदत्ता ने महाराज को पद्मावती समझा। फिर महाराज मुँह ढके सो रहे थे। वह उन्हें पहचानती भी कैसे? पद्मावती का वहाँ अकेला होना तो उसे बुरा लगा, लेकिन उसको इस तरह सोते देख कर उसने यही समझा कि उसकी पीड़ा दूर हो गई है। इसलिए उसने सोती हुई पद्मावती को जगाना ठीक नहीं समझा। पलंग का एक भाग खाली पड़ा हुआ था। उसने समझा कि पद्मावती ने जानबूझ कर मेरे लिए यह स्थान छोड़ दिया है। बस वह चुपचाप वहाँ लेट गई।

इसी समय राजा उदयन सपने में बड़बड़ाने लगे, "हा वासवदत्ता!"

वासवदत्ता एकदम चौंक उठी, "अरे, यह तो महाराज हैं, पद्मावती नहीं। कहीं इन्होंने मुझे देख तो नहीं लिया। देख लिया तो यौगन्धरायण का इतने दिन का सभी किया-कराया व्यर्थ चला जायगा।"

राजा फिर बड़बड़ाए, "हा, अवन्तिराज-पुत्री!"

अब तो वासवदत्ता समझ गई कि महाराज सपने में बोल रहे हैं। वह काफी देर बड़बड़ाते रहे, लेकिन वासवदत्ता थोड़ी देर ठहर कर वहाँ से चली गई। जाते समय उसने देखा कि राजा का हाथ पलंग के नीचे लटक रहा है। उसे उठा कर वह ऊपर रखती गई। उसके छूने से राजा एकाएक चौंक उठे। उनकी नींद खुल गई। और वह वासवदत्ता को पुकारते हुए दौड़े। लेकिन अंधेरे में ठोकर खाकर गिर पड़े। इतने में वसंतक लौट आया। राजा ने उससे कहा, "वासवदत्ता मरी नहीं, जीती है। वह मुझे अभी जगाकर गई है। रुमण्वान ने मुझसे झूठ कहा था कि वह जल कर मर गई है।"

वसंतक ने जवाब दिया, "महाराज, यह कैसे हो सकता है। आपने अवश्य सपना देखा है।"

राजा को बड़ा दुख हुआ। बोले, "अगर यह सपना है तो भगवान करे मैं सदा सपना ही देखता रहूँ। मेरा यह पागलपन सदा बना रहे।"

इस पर वसंतक ने हंसकर कहा, "महाराज, इस राजमहल में अवन्ती सुन्दरी नामकी एक यक्षिणी रहती है। जान पड़ता है, कि आपने उसे देख लिया है।"

राजा ने उत्तर दिया, "नहीं-नहीं, मित्र, वह वासवदत्ता थी। मैंने उसी को देखा है। उसने मेरा हाथ उठाकर पलंग पर रखा था।"

वसंतक को लगा जैसे राजा पागलपन की बातें कर रहे हैं। इसलिए वह उन्हें अपने महल में चलने को कहने लगा। इसी समय कंचुकी ने आकर निवेदन किया, "हमारे महाराज दर्शक ने कहा है कि आपके मंत्री रुमण्वान बड़ी भारी सेना लेकर आरुणि का वध करने के लिए वत्स देश की ओर चल पड़े हैं। युद्ध में सदा जय पाने वाली हमारी सेना तैयार है। आप उठें। आपके बहुत से शत्रुओं को हमने अपनी ओर मिला लिया है। प्रजा को भी धीरज बंधाया है। शत्रु को जीतने के लिए और जो कुछ करना चाहिए, वह हमने कर लिया है। सेनाएँ गंगा पार कर चुकी हैं। इसलिए वत्स देश को अपने हाथ में समझो और शत्रु पर तुरन्त आक्रमण कर दो।"

यह समाचार सुनकर महाराज उदयन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त उठकर कहा, "मैं अभी जाकर युद्ध

करूंगा और उस दुष्ट आरुणि को पछाड़ूंगा।"

: ५ :

युद्ध में महाराज उदयन की जय हुई। वत्स-राज पर फिर उनका अधिकार हो गया। वह इस विजय से बड़े प्रसन्न हुए। उन्हीं दिनों उज्जैन के महाराज महासेन ने रैभ्य गोत्र के एक कंचुकी को और महारानी अंगारवती ने वासवदत्ता की धाय वसुंधरा को उनके पास भेजा। लेकिन प्रतिहारी ने उन्हें अंदर महाराज के पास जाने से रोक दिया। बात यह थी कि उस दिन जब महाराज अपने प्रधान महल में थे, तब किसी परदेसी नट ने वीणा बजाई। महाराज तुरंत पहचान गए, "यह तो वासवदत्ता की वीणा घोषवती का शब्द है।" जब उस नट से उस वीणा का हाल पूछा गया तो उसने बताया, "हमने इस वीणा को नर्मदा-तीर पर झाड़ियों में पड़ा पाया है। यदि यह महाराज के किसी काम की हो तो उन्हें भेंट कर दीजिए।"

यह कथा सुनाकर प्रतिहारी ने कहा, "उस वीणा को पाकर महाराज मूर्च्छित हो गए। और जबसे उन्हें होश आया है तबसे वह वासवदत्ता की याद करके रो रहे हैं। ऐसी अवस्था में उनसे क्या कहा जा सकता है?"

कंचुकी ने उत्तर दिया, "कोई चिन्ता नहीं। हमारी

बात का संबंध भी इसी कहानी से है। महाराज उसे सुनने को बड़े उत्सुक होंगे। इसलिए सूचना दे दो।"

प्रतिहारी ने ऐसा ही किया। उनके आने का समाचार जानकर महाराज ने पद्मावती को बुला भेजा। उन्हें इस बात का बड़ा आश्चर्य था कि महाराज महासेन ने उनके विवाह और विजय का समाचार इतनी जल्दी कैसे जान लिया। जब पद्मावती वहाँ आई तो उन्होंने उससे कहा, "पद्मावती, उज्जैन से कंचुकी और धाय आये हैं।" पद्मावती सब-कुछ सुन चुकी थी, और वह बड़ी प्रसन्न थी। बोली, "अहा, उनसे मुझे अपने बंधु-बांधवों का समाचार मिलेगा।"

पद्मावती की इस प्रसन्नता का राजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह बोले, "वाह, यह तो तुमने अपने बड़प्पन के योग्य बात कही। लेकिन तुम खड़ी क्यों हो! बैठती क्यों नहीं?"

लेकिन पद्मावती ने बैठना स्वीकार नहीं किया। उसने कहा, "आपने दूसरा विवाह कर लिया है, यह जान कर इन लोगों का मन शायद उदास होगा।" इस पर राजा ने कहा, "यह ठीक है, लेकिन अगर तुम उनके सामने न आओगी तो वे यह समझेंगे कि राजा हम लोगों से अपनी रानी को छिपाते हैं। यह और भी निन्दा की बात

होगी। इसलिए तुम मेरे पास ही बैठो।"

पद्मावती ने महाराज की बात मान ली और वहीं बैठ गई। वे दोनों उज्जैन के कुशल-समाचार जानने को बड़े उत्सुक थे। डर भी रहे थे। इसलिए उन्होंने कंचुकी और धाय को तुरन्त वहाँ बुला भेजा। दोनों ने आकर महाराज को प्रणाम किया। फिर दोनों ओर का कुशल-मंगल जान लेने के बाद कंचुकी ने महाराज महासेन का संदेशा दिया कि आपने शत्रु से जो अपना राज्य फिर पा लिया है, इस बात को सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ है। जो कायर हैं, वह हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते हैं। उद्यमी पुरुष ही राजलक्ष्मी को पाते हैं। आप उत्साही हैं, इस बात से वह बड़े प्रसन्न हैं।

महाराज बोले, "यह सब उन्हीं का प्रभाव है। उन्होंने मुझे विन्ध्य के जंगलों से पकड़ मंगवाया था। फिर भी पुत्र की तरह पाला। मैं उनकी बेटी को भगा लाया, लेकिन उसकी रक्षा नहीं कर सका। वह स्वर्ग सिधार गई। यह सब होने पर भी वह मुझसे नाता नहीं तोड़ रहे हैं। उन्हींकी कृपा से मैंने अपना देश वापस पाया है।"

इसके बाद महारानी अंगारवती का संदेश देने के लिए धाय आगे बढ़ी, तो महाराज बड़े व्याकुल हो उठे।

वासवदत्ता की याद हो आने से उनका दिल भर आया। इस पर धाय और कंचुकी उन्हें धीरज बंधाने लगे। कंचुकी बोला, "महाराज, धीरज धरो। वासवदत्ता मर कर भी जी रही है। आप उन्हें इतना याद करते हैं। लेकिन यह संसार तो जंगल के पेड़ों की तरह है, जो समय-समय पर कटता-बढ़ता रहता है। इसलिए इस दुख को आप भुला दें।" धाय बोली, "महारानी ने आपसे कहा है—वासवदत्ता अब नहीं है, फिर भी तुम हमारे बेटों के समान हो। हम तो वासवदत्ता का विवाह तुमसे ही करना चाहते थे। इसीलिए तुम्हें उज्जैन बुलाया था, पर तुम चपल होने के कारण बिना विवाह के ही उसे ले गए। तुम्हारे जाने के बाद हमने तुम दोनों के चित्र बनवाये थे और विवाह-संस्कार किया था। वे ही चित्र तुम्हारे पास भेज रही हूँ। इनको देख कर तुम्हें कुछ धीरज होगा।"

महाराज यह सुन कर बड़े खुश हुए। बोले, "यह प्रेम-भरा सन्देशा माता के ही योग्य है। मैं अपराधी हूँ, फिर भी वह मुझे इतना प्यार करती हैं। उनका यह संदेशा मुझे सैकड़ों राज्यों से अधिक प्यारा है।"

पद्मावती ने देवी वासवदत्ता का चित्र देखने की इच्छा प्रकट की और जब धाय ने वह चित्र उसे दिया तो उसे देखकर वह मन-ही-मन अचरज से काँप उठी।

वह चित्र आवन्तिका से मिलता था। अपना संदेह मिटाने के लिए उसने महाराज से पूछा, "क्या यह चित्र देवी वासवदत्ता से मिलता है ?"

महाराज ने कहा, "बिल्कुल वैसा ही है, मानो वासवदत्ता सामने खड़ी है।"

पद्मावती ने सोचा, अगर ऐसी बात है तो मुझे महाराज का चित्र भी देखना चाहिए। यदि वह चित्र इनसे मिल गया तो वासवदत्ता का चित्र भी वासवदत्ता से पूरा मिलता होगा।

यह सोच कर उसने महाराज का चित्र देखने के लिए मांगा और उसे देखकर उसका रहा-सहा संदेह भी जाता रहा। वह तस्वीर महाराज से पूरी तरह मिलती थी। वह सोच में पड़ गई। उसे इस तरह शंकित देखकर महाराज ने पूछा, "वासवदत्ता की तस्वीर देखकर तुम प्रसन्न भी हुईं और हैरान भी। यह क्या बात है ?"

पद्मावती ने उत्तर दिया, "देव, इस तस्वीर से मिलती-जुलती एक स्त्री मेरे पास रहती है। मेरे विवाह से पहले एक ब्राह्मण उसे मेरे पास धरोहर की तरह रख गया था। वह उस ब्राह्मण की बहन है। उसका पति कहीं परदेस गया हुआ है। वह किसी दूसरे पुरुष के सामने नहीं आती।" महाराज ने कहा, "वह कोई और होगी।

दो व्यक्तियों का एक जैसा रूप हो सकता है।"

ये बातें हो ही रहीं थीं कि एक ब्राह्मण के आने की सूचना मिली। यह वही ब्राह्मण था। महाराज ने शीघ्र उसे आदरपूर्वक अन्दर लाने की आज्ञा दी और पद्मावती उसकी बहन को लेने के लिए अपने महल में चली गई। कुछ देर बाद ब्राह्मण के भेष में यौगन्धरायण ने वहाँ प्रवेश किया। उसका मन शंका से बेचैन हो रहा था। उसने यह सब खेल महाराज के भले के लिए खेला था। पर महाराज न जाने क्या सोच रहे होंगे। महाराज को सामने देख कर उसने उनका जय-जयकार किया।

ये शब्द सुनकर महाराज चौंक पड़े, 'ऐसा स्वर तो कहीं सुना है' लेकिन प्रकट में उन्होंने यही कहा, "कहिए देवता, क्या आप ही अपनी बहन को पद्मावती के पास धरोहर बना कर रख गये थे ?"

यौगन्धरायण ने उत्तर दिया, "जी हाँ !" इतने में पद्मावती आवन्तिका को लेकर आ गई। महाराज ने कहा, " इनकी बहन को इन्हें लौटा दो, पर चूँकि धरोहर दो व्यक्तियों के सामने लौटाई जानी चाहिए, इसलिए कंचुकी और धाय इस बात के साक्षी होंगे।"

पद्मावती ने ब्राह्मण से कहा, "आर्य, अपनी बहन

को संभालो।"

इसी समय धाय ने आवन्तिका को देखा। वह चिल्ला उठी, "अरे, यह तो वासवदत्ता है।"

महाराज ने अचरज से पूछा, "हैं, क्या महासेन की बेटी वासवदत्ता!"

और उन्होंने वासवदत्ता से तुरन्त पद्मावती के साथ महल में जाने को कहा, लेकिन ब्राह्मण ने इस बात का विरोध किया, "नहीं-नहीं, अन्दर कैसे जायगी। अन्दर मत ले जाइए। यह तो मेरी बहन है।"

महाराज क्रोध में भर कर बोले, "तुम क्या कह रहे हो? यह तो महासेन की पुत्री वासवदत्ता है।" यौगन्धरायण ने फिर कहा, "महाराज, आप पांडव-वंश में उत्पन्न हुए हैं। ज्ञानी हैं। आपको जबर्दस्ती प्रजा की बहू-बेटियों को नहीं छीनना चाहिए। आप ही तो राज-धर्म के पालने वाले हैं।" इस पर महाराज ने कहा, "अच्छा! हम स्वयं जाँच करेंगे। परदा हटा दो।"

महाराज का यह कहना था कि यौगन्धरायण और वासवदत्ता दोनों ने अपने-आपको प्रकट कर दिया। दोनों ने महाराज की जय-जयकार की। महाराज चकित रह गए। उनके सामने यौगन्धरायण और वासवदत्ता जीते-जागते खड़े थे। वह बोल उठे, "क्या यह सच्ची घटना

है या सपना ? क्या मैं देवी वासवदत्ता को फिर देख रहा हूँ ?"

योगन्धरायण ने कहा, "महाराज, मैंने इन्हें छिपाया था। सब अपराध मेरा है। मुझे क्षमा करें।"

और वह महाराज के चरणों में गिर पड़े। महाराज ने तुरन्त उन्हें उठाया और कहा, "आप ब्राह्मण हैं, ऐसा न करें। और फिर जब-जब हम पर आपदाएं आईं, आप ही ने तरह-तरह के उपाय करके, कूटचाल से, युद्ध से, शास्त्र में लिखी राजनीति के अनुसार हमारी रक्षा की। आप तो हमारे उपकारी हैं।"

पद्मावती ने भी वासवदत्ता के चरण छूकर क्षमा मांगी। वासवदत्ता ने उसे गले लगाते हुए कहा, "सौभाग्यवती, अपराध तो तुम अब कर रही हो।"

यह सब होने पर महाराज ने योगंधरायण से वासवदत्ता को छिपाने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया, "महाराज, अपने राज्य को फिर से पाने के लिए ही मैंने यह सब किया था।" महाराज बोले, "लेकिन उसे पद्मावती के पास क्यों रखा ?"

योगन्धरायण ने बताया, "महाराज, ज्योतिषियों ने कहा था कि पद्मावती आप की रानी होगी, इसलिए देवी वासवदत्ता को हमने इन्हीं के पास रखा।"

६३ कलवार की करतूत (टा०) ।)
६४ हमारे जमानेकी गुलामी ,, ।।।)
६५ बुराई कैसे मिटे ? ,, १)
६६ बालकों का विवेक ,, ।।।)
६७ हम करें क्या ? ,, ३।।)
६८ धर्म और सदाचार ,, १।)
६९ अंधेरे में उजाला १।।)
७० कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल) २)
७१ लोक-जीवन (कालेलकर) ३।।)
७२ जीवन-साहित्य ,, २)
७३ साहित्य और जीवन २)
७४ कब्ज (म० प्र० पोद्दार) १।।)
७५ राजनीति प्रवेशिका १)
७६ जीवन-संदेश (ख.जिब्रान) १।)
७७ अशोक के फूल ३)
७८ पृथिवीपुत्र (वा० अग्रवाल) ३)
७९ कां० का इतिहास ३ भाग ३०)
८० पंचदशी (सं० य० जैन) १।।)
८१ सप्तदशी २)
८२ रीढ़ की हड्डी १।।)
८३ अमिट रेखायें ३)
८४ एक आदर्श महिला १)
८५ चारा दाना ।)
८६ राष्ट्रीय गीत ।)
८७ तामिल-वेद (तिरुकुरल) १।।)
८८ आत्म-रहस्य ३)
८९ थेरी-गाथाएं १।।)
९० बुद्ध और बौद्ध साधक १।।)
९१ जातक-कथा (आनंद कौ.) २।।)
९२ हमारे गांव की कहानी १।।)
९३ साग-भाजी की खेती ३।।)
९४ पशुओं का इलाज (प.प्र.) ।।)
९५ रामतीर्थ-संदेश (३ भाग) १=)
९६ रोटी का सवाल (क्रोपा०) ३)
९७ नवयुवकों से दो बातें ,, ।=)
९८ पुरुषार्थ (डा० भगवान्दास) ६)
९९ काश्मीर पर हमला २)
१०० शिष्टाचार ।।=)
१०१ मानवीय क्रांति ।)
१०२ भारतीय संस्कृति ३।।)
१०३ आधुनिक भारत ५)
१०४ बद्रीनाथ ।=)
१०५ जंगल की सैर ।=)
१०६ भीष्मपितामह ।=)
१०७ शिवि और दधीचि ।=)
१०८ विनोबा और भूदान ।=)
१०९ कबीर के बोल ।=)
११० गांधीजी का विद्यार्थी जीवन ।=)
१११ गंगाजी ।=)
११२ गौतम बुद्ध ।=)
११३ निषाद और शबरी ।=)
११४ गांव सुखी, हम सुखी ।=)
११५ कितनी जमीन ।=)
११६ ऐसे थे सरदार ।=)
११७ चैतन्य महाप्रभु ।=)
११८ कहावतों की कहानियां ।=)
११९ जमाने की मांग =)

'संस्कृत साहित्य-सौरभ'

की

पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. नागानंद
९. रघुवंश
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित

मूल्य प्रत्येक का छः आना

छः आना

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१२

बाणभट्ट-कृत

हर्ष-चरित

●

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

द्वारा

कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

●

१९५४

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५४
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें इसी विचार को इस माला द्वारा मूर्त रूप दिया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। कई आगे निकलेंगी। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तक पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

महाकवि बाण सम्राट् हर्ष के समय (६०६–६४८ ई०) में हुए। यही एक ऐसे संस्कृत कवि हैं जिनका निश्चित समय हमें मालूम है। उन्होंने दो ग्रंथ लिखे 'हर्ष-चरित' और 'कादम्बरी'। 'हर्ष-चरित' संस्कृत साहित्य में मिलनेवाली सबसे पुरानी ऐतिहासिक आख्यायिका है। इसमें बाण ने आरम्भ के दो उच्छ्‌वासों में अपना जीवन-चरित दिया है और बाकी के छः उच्छ्‌वासों में सम्राट् हर्ष एवं उसके परिवार का वर्णन करते हुए उसके राज्य-काल की कई प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया है।

बाण ने यह ग्रंथ संस्कृत गद्य में लिखा। इनकी लेखन-शैली कहीं भारी-भरकम और कहीं बड़ी सरल है। उसमें कथा-प्रवाह के साथ-साथ लगभग पचास वर्णनात्मक चित्र हैं। संस्कृत साहित्य में ये चित्र अद्वितीय हैं। इनसे सातवीं शती का जीता-जागता परिचय प्राप्त होता है। सम्राट हर्ष, उनका राजकुल, उनकी छावनी, उनकी बहन राज्यश्री का विवाह, सेना के कूच की तयारी, प्रयाण करता हुआ कटक-दल, विन्ध्याटवी के जंगली देहात और उनके घर, बौद्ध-भिक्षु दिवाकरमित्र का आश्रम—इनके ऐसे सजीव शब्द-चित्र 'हर्ष-चरित' में खींचे गए हैं कि पाठक को साहित्यिक आनन्द के साथ संस्कृति और इतिहास का भी अच्छा परिचय प्राप्त हो जाता है। बीच-बीच में बाण ने संध्या समय, प्रातःकाल, ग्रीष्म ऋतु आदि के सरस प्राकृतिक वर्णन भी दिए हैं।

प्रस्तुत कथासार हिन्दी के विद्वान डा० वासुदेवशरण ने तैयार किया है। उनका संस्कृत का अध्ययन भी बड़ा विशाल है। पाठकों को इस कथा-सार में कहीं-कहीं मूल का-सा आनंद आवेगा।

—सम्पादक

हर्ष-चरित

आरम्भ में कवि ने शिव को प्रणाम करके वेदव्यास, सुबन्धु, सातवाहन, प्रवर-सेन, भास और आढ्यराज इन प्राचीन कवियों का गुण-गान किया है। फिर कथा का आरम्भ होता है।

: १ :

एक बार ब्रह्माजी खिले हुए कमल पर विराजमान ब्रह्म लोक में देवताओं और ऋषियों के साथ विद्या-गोष्ठी का सुख ले रहे थे। वहां महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि का मन्दपाल नाम के ऋषि से कुछ झगड़ा हो गया और इसी कारण दुर्वासा के साम-गान में कुछ स्वर-भंग हो गया। इसपर सरस्वती को हँसी आ गई। बस फिर क्या था, दुर्वासा मुनि आग-बबूला हो गये। उन्होंने सरस्वती को शाप देने के लिए हाथ में जल ले लिया। सरस्वती की सखी सावित्री ने तथा और कई लोगों ने रोकना चाहा, किन्तु दुर्वासा ने शाप दे ही डाला—"ओ दुर्विनीत, तेरा विद्या का घमंड चूर करता हूं। जा, तू मृत्युलोक में जन्म ले।" इसपर ब्रह्मा ने दुर्वासा से कहा, "ब्रह्मन्, आपने जो किया वह साधुओं का मार्ग नहीं।"

फिर सरस्वती से बोले, "बेटी, दुख न करो। यह सावित्री तुम्हारे साथ जायगी।"

इसके बाद सरस्वती और सावित्री दोनों ब्रह्मलोक से मृत्युलोक में उतरीं। यहां आकर दंडक वन के समीप विन्ध्याचल से बहनेवाले शोण नद के तट पर उन्होंने अपना आश्रम बनाया और वहीं शिव के ध्यान में तप करती हुई रहने लगीं।

कुछ समय बीतने पर एक दिन सवेरे सरस्वती ने घुड़सवारों की एक टुकड़ी को आते हुए देखा। उनका नेता दधीच नामक एक अति सुन्दर युवक था। उसके घोड़े पर सवार एक अंग-रक्षक चल रहा था। वे दोनों घोड़े से उतरकर सरस्वती और सावित्री के पास आए। शिष्टाचार के बाद अंग-रक्षक ने अपने साथी का परिचय देते हुए कहा, "यह च्यवन और सुकन्या का पुत्र दधीच है। मैं उसका सेवक विकुक्षि हूं। शोण के उस पार च्यवन वन तक हमें जाना है। आप भी कृपया अपना परिचय दें।" सावित्री ने इतना ही कहा, "आर्य, समय पर आप सब जानेंगे।"

कुछ दिन बाद उसी दधीच से सरस्वती का विवाह हुआ।

एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक वे दोनों साथ रहे और सरस्वती ने सारस्वत नामक पुत्र को जन्म दिया।

शाप की अवधि पूरी हो जाने पर वह ब्रह्मलोक को लौट गई। दधीच के भाई की पत्नी अक्षमाला ने सारस्वत का पालन किया। सारस्वत ने अक्षमाला के पुत्र वत्स के प्रेम से प्रीतिकूट नामक एक गांव बसाया और स्वयं तप करता हुआ परलोक को चला गया। यही प्रीतिकूट बाण की जन्मभूमि हुई।

वत्स से वात्स्यायन वंश का प्रादुर्भाव हुआ। उस वंश में जो ब्राह्मण हुए वे गृहस्थ होते हुए भी मुनियों की वृत्ति रखते थे। उसी वात्स्यायन वंश में कुबेर नामक ब्राह्मण ने जन्म लिया। कुबेर का पुत्र पाशुपत और पाशुपत का अर्थपति हुआ। अर्थपति के ग्यारह पुत्रों में आठवें चित्रभानु की पत्नी राजदेवी से बाण का जन्म हुआ। बालपन में ही उसे माता का वियोग सहना पड़ा। पिता ने मातृ-स्नेह से उसका पालन किया और उपनयन आदि सब संस्कार यथासमय किए। बाण की आयु पूरे चौदह वर्ष की भी न हुई थी कि पिता भी स्वर्ग सिधार गये। उस समय तक बाण का विवाह हो चुका था।

पिता की मृत्यु के बाद बाण ने कुछ समय दुखी मन से घर पर ही काटा। धीरे-धीरे जब शोक कम हुआ तो बाण के स्वतन्त्र स्वभाव ने जोर मारा। *यौवन आरम्भ* हो रहा था, मन में अल्हड़पन और चपलता के साथ नई-नई बातें जानने का शौक था। पिता के न रहने से एका-

एक जो छूट मिली उसका यह फल हुआ कि बाण घुमक्कड़ हो गए। घर में बाप-दादों की कमाई का अच्छा पैसा था। गांव में पढ़ाई का सिलसिला भी जारी था। किन्तु ये सब सुविधाएं भी उसके तूफानी स्वभाव के कारण बाण को घर में रोक कर न रख सकीं।

बाण बहुत वर्षों तक बाहर घूमता रहा। साथ में लम्बी-चौड़ी मित्र-मंडली भी थी। उनमें कुछ परिचारक, कुछ कवि और विद्वान, कुछ कलाकार शिल्पी, कुछ नाचगान के प्रेमी, कुछ वैद्य-मंत्र-साधक और साधु-संन्यासी थे। इस प्रवास में बाण ने सब तरह की दुनिया देखी, अनेक लोगों से मिला और घाट-घाट का पानी पिया। बड़े-बड़े राजकुलों का हाल-चाल जाना। शिक्षा-केन्द्रों में समय बिताया, कलावन्तों की गोष्ठियों में उपस्थित हुआ। देशाचार और लोकाचारों के अनुभव से धनी बनकर वह फिर अपने गांव को लौट आया। उसके स्वभाव में रईसी का पुट था। दूसरे, कुल के अनुरूप विद्या की प्रवृत्ति थी। तीसरे, साहित्य और कलाओं से अनुराग था। चौथे, मन में छैलपन भी था। सरल, सजीव और स्नेही प्रकृति के कारण बाण की काव्यप्रतिभा में चार चांद लग गए।

: २ :

एक दिन घोर गर्मी के समय जब बाण खा-पीकर निश्चित बैठे थे तो तीसरे पहर उन्हें समाचार मिला कि

सम्राट हर्ष के छोटे भाई कृष्ण का दूत उनका निजी सन्देश लेकर आया है। बाण ने तुरन्त उसे अन्दर लाने के लिए कहा। मटियाले रंग की पेटी से कसा हुआ लहंगे-नुमा वस्त्र पहने हुए उस दूत के सिर पर एक चिट्ठी डोरे से लपेट कर बांधी गई थी, जिसके दोनों छोर पीठ पर लहरा रहे थे। कुशल-समाचार के बाद दूत ने वह लेख खोल कर बाण को दिया। उसमें लिखा था, "मेखलक द्वारा जो सन्देश भेज रहे हैं उसे सुन-समझ कर शीघ्र यहां आओ। विलम्ब न करना। पत्र में इतना ही लिखा जाता है। शेष मौखिक मालूम होगा।"

बाण सबकुछ ताड़ गए। नौकर-चाकरों को हटा दिया और सन्देश पूछा। दूत ने अपने स्वामी कृष्ण की ओर से कहा, "तुम मुझे बन्धु के समान प्रिय हो, तुम्हारे पीठ-पीछे दुष्टों ने सम्राट हर्ष को तुम्हारे विषय में उलटा-सीधा सिखा दिया है। ऐसा कौन है जिसके मित्र-शत्रु नहीं होते? बहुत से मूर्खों से एक-सी बात सुन कर हर्ष का मन भी तुम्हारी ओर से फिर गया है। वे और करते भी क्या? पर दूर होने पर भी मैं तुम्हें भली भांति जानता हूं। मैंने सम्राट् को समझाया कि थोड़ी-बहुत भूल सबसे होती है। उन्होंने मेरी बात मान ली। अब तुम देर न करके शीघ्र राजकुल में आओ।"

सन्देश सुनकर बाण ने उस समय तो कुछ नहीं

कहा, लेकिन रात को शय्या पर लेटे हुए अकेले में सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिए? सम्राट को मेरे बारे में भ्रांति हुई है। इसलिए कृष्ण ने मुझे बुला भेजा है। पर राजकुल की सेवा बजाना मेरे बस का नहीं है। मुझे चापलूसी नहीं आती। किन्तु जाना भी अवश्य चाहिए। भगवान शंकर सब भली करेंगे। यह सोच कर उसने जाने का पक्का इरादा कर लिया।

दूसरे दिन सवेरे स्नान-पूजन करके देवताओं को मनाकर और सब सगे-सम्बन्धियों से मिलकर उसने प्रस्थान किया। कुछ ही दिन में वह राप्ती के किनारे मणितारा गांव में हर्ष की छावनी में जा पहुंचा। वहां स्नान-भोजन से छुट्टी पाकर राजकुल में गया और तीन चौक पार करके, भीतरी आस्थान मंडप (दरबारे खास) के सामने वाले आंगन में उसने हर्ष के दर्शन किए।

हर्ष को देखकर बाण के मन में कितने ही विचार एक साथ दौड़ गए। यही क्या वह स्वनामधन्य परमेश्वर हर्ष हैं, जिन्होंने पूर्व राजाओं को अपने गुणों से जीत लिया है? इस प्रकार सोचते हुए पास जाकर उसने 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण किया। हर्ष ने बाण की ओर देखा और यह जानकर कि यही वह बाण है उसने कहा, "मैं इसे नहीं देखना चाहता। पहले यह मेरी अनुकूलता प्राप्त करे।" यह कह हर्ष ने अपनी दृष्टि फेर ली और पीछे बैठे

हुए मालव राजकुमार से बाण के विषय में कहा, "यह भारी भुजंग (गुंडा) है।" हर्ष की बात सुनते ही मंडप में सन्नाटा छा गया। इस तीखे वचन से बाण तिलमिला उठा। क्षण भर चुप रहकर उसने कड़े शब्दों में इस बात का प्रतिवाद किया और अपने बारे में सच्ची स्थिति बताते हुए कहा, "हे देव, आप ऐसा कैसे कहते हैं, जैसे मेरे बारे में सच्ची बात का पता न हो या आप दूसरों के कहने में आ गये हों ! बड़ों को स्वयं सच्ची बात को देखना चाहिए। आप मुझे साधारण व्यक्ति की तरह मत समझिए। मैंने सोमपायी वात्स्यायन ब्राह्मणों के वंश में जन्म लिया, उचित समय पर उपनयन आदि वैदिक संस्कार प्राप्त किए और सांगवेद तथा शास्त्रों को पढ़ा। जबसे मेरा विवाह हुआ तबसे मैं नियमित गृहस्थ हूं। बताइए, मुझमें क्या भुजंगपना है?[1] मैं इस बात से इन्कार न करूंगा कि चढ़ते यौवन में मुझसे कुछ चपलता हुई, पर वह ऐसी न थी, जिसका इस लोक या परलोक से विरोध हो। फिर मुझे उसका पश्चात्ताप भी है। समय आने पर आप स्वयं मेरे बारे में सबकुछ जान लेंगे।" इतना कहकर बाण चुप हो गया। हर्ष बाण के इन वचनों से

१. 'का मे भुजंगता।' इस छोटे वाक्य के तीन अर्थ हैं—१. मेरे जीवन में भुजंगता (गुंडापन) क्या है? २. भुजंगता उसमें रहती है जो कामुक होता है, मुझमें नहीं। ३. मैंने किस स्त्री का अपनी भुजाओं में आलिंगन किया है?

कुछ नम्र हुए। उत्तर में इतना ही कहा, "हमने ऐसा ही सुना था।" और मंडप में से उठ गए। बाण भी अपने निवास-स्थान को लौट आया। वह मन में सोचने लगा कि हर्ष मुझसे अप्रसन्न नहीं हैं। होते तो दर्शन ही क्यों देते? अब मैं ऐसा करूंगा, जिससे मेरे बारे में वह ठीक बात जान लें।

कुछ दिनों में हर्ष को बाण के स्वभाव का ठीक पता चल गया। तब बाण राजभवन में आकर रहने लगा। हर्ष की उससे परम प्रीति हो गई।

: ३ :

बाण गर्मी की ऋतु में हर्ष के दरबार में गया था। लगभग चार महीने वहां रहकर शरद् के शुरू में वह फिर अपने गांव लौट आया।

सम्राट् ने उसका सम्मान किया है, इस बात से प्रसन्न होकर उसके भाई-बन्धु उससे मिलने आए। अपने को फिर बन्धु-बान्धवों के बीच पाकर बाण का हृदय खिल उठा। उसने प्रसन्न होकर सबका कुशल-समाचार पूछा।

दोपहर के भोजन के बाद वे फिर इकट्ठे हुए और जब वायुपुराण का पाठ हो चुका तो बाण के चचेरे भाइयों ने, जिनके नाम गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल था, एक-दूसरे की ओर देखा, जैसे कुछ कहना चाहते हों। चारों में छोटा श्यामल बाण को बहुत प्यारा

था। बड़ों का आशीर्वाद पाकर उसने बाण से प्रार्थना की कि कृपा कर महाराज हर्ष का चरित हम सबको सुनाइए। इस प्रार्थना को सुनकर बाण ने पहले तो अपनी असमर्थता प्रकट की, किन्तु फिर कहा, "आज तो दिन समाप्त हो गया है। कल सुनाऊंगा।"

अगले दिन सवेरे संध्या-वन्दन से निवृत्त होकर सब लोग इकट्ठे हुए और बाण को घेर कर बैठ गए। तब उसने हर्षचरित सुनाना आरम्भ किया।

× × ×

श्रीकंठ जनपद की राजधानी स्थाण्वीश्वर थी। वहां के किसान सब प्रकार से सम्पन्न थे। चारों ओर पौंडों के खेत फैले रहते थे। खलिहानों में कटी हुई फसल के ढेर लगे रहते थे। जंगल गोधन से भरा हुआ था। गायों के गले में बन्धी हुई टल्लियां बजा करती थीं। भैंसों की पीठ पर बैठकर ग्वाले गीत गाया करते थे। ऐसे उस देश में परम माहेश्वर पुष्पभूति नाम के राजा हुए। वहां घर-घर में शिव-पूजा का प्रचार था। वहीं पर भैरवाचार्य नामक दक्षिण से आया हुआ एक महाशैव रहता था। उसकी कीर्ति सुनकर राजा उससे मिलने गये। अगले दिन भैरवाचार्य भी उनसे मिलने आए।

एक दिन भैरवाचार्य का शिष्य राजा के पास आया और बोला, "यह अट्टहास नामक तलवार है, जो आपके

योग्य है। कृपया ग्रहण कीजिये।" राजा उसे पाकर प्रसन्न हुए। कुछ समय और बीता तो एक दिन भैरवाचार्य ने एकान्त में राजा से कहा, "मैंने महाकाल हृदय नामक मन्त्र का एक कोटि जप किया है। उसकी सिद्धि वेताल-साधन से होती है। आप उसे कर सकते हैं। इसमें तीन शिष्य और आपकी सहायता करेंगे"। राजा ने प्रसन्न हो इसे स्वीकार किया। भैरवाचार्य ने कहा, "अगले कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रात में महाश्मशान के पास वाले मन्दिर में आप मुझसे मिलिए।" राजा ने वैसा ही किया और अकेला ही हाथ में तलवार लेकर नीले वस्त्र पहने नगर से बाहर उस स्थान पर आया।

वहां भैरवाचार्य घोर साधना कर रहा था। उसी समय एक चमत्कार हुआ। जहां वह बैठा था उससे कुछ दूर पर धरती फट गई और उसमें से एक काला पुरुष निकला। उसके शरीर पर चन्दन के थापे लगे थे। बाहिना हाथ तिरछा फेंकते हुए और दाहिनी जांघ मोड़ कर उसे थपथपाते हुए उसने कहा, "मैं श्रीकंठनाग हूं, इस देश का देवता।" उसने भैरवाचार्य को ललकारा। "ऐ दुर्बुद्धि, मुझे बलि दिये बिना तू सिद्धि चाहता है?" राजा पुष्पभूति ने निडर भाव से उसे डपटा और श्रीकंठ नाग भी राजा से भिड़ गया। राजा ने उसे दे मारा। इतने में पुष्पभूति ने देखा कि सामने से सजी-धजी एक

स्त्री आ रही है। उसने उससे पूछा, "भद्रे, तू कौन है ?" स्त्री ने उत्तर दिया, "मैं लक्ष्मी हूं। तेरे पराक्रम से प्रसन्न होकर आई हूं। जो चाहे, वर मांग।" राजा ने लक्ष्मी से यही वर मांगा कि भैरवाचार्य को सिद्धि मिले। देवी ने स्वीकार किया और राजा की भगवा॰ शिव में अटूट भक्ति ॰खकर दूसरा वरदान और देते हुए कहा, "हे राजन्, तुम्हारे वंश में हर्ष नाम का चक्रव॰ी जन्म लेगा। ॰ारश्चन्द्र के समान वह सारी पृथ्वी का भोग करेगा।"

इसके बाद भैरवाचार्य शरीर छोड़कर विद्याधर की गति को प्राप्त हुआ। श्रीकंठनाग भी यह कहकर कि जब काम पड़े मुझे आज्ञा दी॰ज॰गा, धरती में समा गया।

: ४ :

सम्राट पुष्पभूति के वंश में अनेक राजा हुए। उसी वंश में प्रभाकरवर्द्धन नाम का राजाधिराज हुआ। उसकी मह॰द॰॰ का नाम यशोवती था। वह सूर्य का भक्त था और ॰तिदिन सवेरे स्नान करके रक्तकमल से सूर्य की पूजा करता था।

इनके बड़े कुमार का नाम राज्यवर्धन और छोटे का नाम ॰र्षवर्द्धन था। हर्ष के जन्म के समय ज्योतिषी ने ॰ताया, "इसके सब ग्रह उच्च के हैं और यह सब चक्रवर्त्तियों में अग्रणी होगा।" इसके जन्म के समय धूमधाम से पुत्र-जन्म का उत्सव मनाया गया।

हर्ष शनैः-शनैः बढ़ने लगा। जब वह धाय की उंगली पकड़कर चलने योग्य हो गया था और राज्यवर्द्धन छठे वर्ष में लगा था तब राजा के घर एक कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम राज्यश्री रक्खा गया। इसी समय यशोवती के भाई ने अपने पुत्र भंडि को राज्यवर्द्धन और हर्ष के संगी-साथी के रूप में रहने के लिए दरबार में भेजा। एक बार पिता प्रभाकरवर्द्धन ने अपने दोनों पुत्रों को प्यार करते हुए कहा, "मैंने तुम्हारे सखाओं के रूप में मालव के दो राजकुमारों को नियुक्त किया है।" उसी समय कुमारगुप्त और माधवगुप्त नामक दो भाई उपस्थित हुए और राज्यवर्द्धन और हर्ष के साथ रहने लगे।

राज्यश्री भी नृत्य-संगीत आदि कलाओं को सीखती हुई बढ़ने लगी। जब वह युवती हुई तब कन्नौज के राजा अवन्तिवर्मा के बड़े बेटे ग्रहवर्मा ने इसकी याचना की। रानी की अनुमति लेकर शुभ मुहूर्त में ग्रहवर्मा के भेजे हुए दूत के हाथ पर कन्या-दान का जल डालकर राजा ने कन्या का सम्बन्ध निश्चित कर दिया।

ब्याह के दिन निकट आए तो दोनों राजकुलों में तैयारियां होने लगीं। थानेश्वर का रनिवास ब्याह की धूम से भर गया। सब लोगों को पान के बीड़े, इत्र के फाहे और फूल बांटे जाने लगे। देश-देश के चतुर

शिल्पी बुलाये गये। अनेक राजा भेंट का सामान लाये। कोठरी में इन्द्राणी की मूर्ति और दई-देवता पधराए गए। सूत्रधार ब्याह की वेदी बनाने लगे। चूनेवाले महल की दीवार और शिखरों पर सफेदी पोतने लगे। दहेज के योग्य हाथी-घोड़ों की जांच होने लगी। ड्योढ़ी के बाहर बैठे सुनारों के ठट्ठ के ठट्ठ सोना घड़ने लगे। चित्रकार मंगल-चित्र लिखने लगे। खिलौने बनानेवाले भांति-भांति के मिट्टी के खिलौने बनाने लगे। सामन्तों की सती स्त्रियां बड़े सवेरे ही राजमहल में आकर ब्याह का कामकाज करने में लग गईं। कुछ वर-वधू का नाम ले मंगलाचार गाने लगीं। कुछ सूत की लच्छियों से कलावें रंगने लगीं। कुछ उबटन और मुखालेपन तैयार करने लगीं। कुछ लौंग और कपूर की मालाएं गूंथने लगीं। कुछ कलसों पर मांड मांडने लगीं। ब्याह के लिए बहुत भांति के बांधनू की रंगाई के, फूल-पत्तियों की छपाई के, कुमकुम के थापों की छपाई के या मरोड़ कर चुन्नट डाले हुए रेशमी, सूती आदि वस्त्र तैयार होने लगे।

ब्याह के दिन सवेरे मुख्य प्रतिहारी ने सूचना दी कि जामाता के यहां से उनका ताम्बूलदायक आया है। उसके भीतर आने पर राजा ने कुमार ग्रहवर्मा की कुशल पूछी। उसने निवेदन किया, "देव, वे आरहे हैं और आपको प्रणाम कहते हैं।" राजा ने कहा, "रात्रि के पहले पहर में विवाह

की लग्न साधनी चाहिए।" सायंकाल ग्रहवर्मा के साथ बरात राजद्वार पर आई। राजा ने द्वाराचार कर सबका स्वागत किया और वर को नीचे उतार आदर के साथ भीतर ले गये। तभी ज्योतिषियों ने कहा, "लग्न का समय निकट है। जामाता कोहबर में चलें।" ग्रहवर्मा कोहबर के द्वार पर पहुंचे। वहां स्त्रियों ने उनसे लोकाचार कराया। लाल अंशुक ओढ़े हुई राजश्री का हाथ पकड़कर वह कोहबर से बाहर आया और विवाह-मंडप में रची हुई वेदी के पास गया। वहां पुरोहित ब्राह्मणों ने लाजा होम आदि के साथ विवाह की सब विधि सम्पन्न कराई। विवाह-विधि समाप्त होने पर जामाता ने वधू के साथ सास-ससुर को प्रणाम किया और दोनों वासगृह में प्रविष्ट हुए। फिर सुसराल में दस दिन रहकर गृहवर्मा बहू को विदा करा कर और दहेज में दी हुई सामग्री लेकर अपने स्थान को लौट आया।

: ५ :

जब ज्येष्ठ राजकुमार राज्यवर्द्धन कवच पहनने की आयु प्राप्त कर चुका तो पिता प्रभाकरवर्द्धन ने उसे हूणों के साथ युद्ध करने के लिए सेना देकर उत्तरापथ की ओर भेजा। हूण इस समय उत्तरापथ और गन्धार में जमे बैठे थे। उनसे भारत के सीमा-प्रदेश को मुक्त कराना आवश्यक था। उस समय हर्ष की आयु लगभग

पन्द्रह वर्ष की थी। कुछ दूर तक वह भी राज्यवर्द्धन के साथ गया, पर उसे शिकार खेलने का शौक हुआ और वह भाई का साथ छोड़कर हिमालय की तराई में कुछ दिन आखेट करता रहा। एक रात उसने भयंकर स्वप्न देखा। एक शेर आग में जल रहा है और शेरनी बच्चों को छोड़कर उसी आग में कूद रही है। वह घबराकर उठ बैठा। शिकार में भी मन न लगा। दोपहर के समय उसे एक पत्र मिला। उसे लेकर उसने स्वयं बांचा। पिताजी दाह-ज्वर से पीड़ित थे। हर्ष को बड़ा दुःख हुआ और उसने तुरन्त कूच का शंख बजवाया और जल्दी-जल्दी मार्ग लांघता हुआ वह अगले दिन थानेश्वर की छावनी में आ पहुंचा। वहां सब कामकाज बन्द था। वह छावनी पार करके राजद्वार पर आया। जैसे ही वह घोड़े से उतरा, उसने सुषेण नामक वैद्य को बाहर आते हुए देखा और पिता की हालत पूछी। सुषेण ने कहा, "अभी तो अवस्था में सुधार नहीं है।" वह तुरन्त पिता के पास गया, जो इस समय रानी यशोवती के महल में थे। वहां उस समय बिलकुल सन्नाटा छाया हुआ था। हर्ष को देखकर प्रभाकर-वर्धन ने उठने की कुछ चेष्टा की, हर्ष ने उन्हें प्रणाम किया। वह कठिनाई से इतना ही कह सके, "वत्स, बहुत दुर्बल जान पड़ते हो।" भंडि ने बताया कि हर्ष ने तीन दिन से भोजन नहीं किया है। यह सुन प्रभाकरवर्धन ने रोते

हुए कहा, "पुत्र, उठो। आवश्यक क्रियाएं करो। [illegible] आहार करने के बाद ही मैं भी पथ्य लूंगा।" क्षण भर ठहरकर हर्ष नीचे उतरा और अपने स्थान पर जाकर उसने दो-चार कौर खाये। फिर वैद्यों को अलग बुलाकर पिता की हालत पूछी। वैद्य ने कहा, "देव, कल निवेदन करूंगा।" रात में राजा की हालत और बिगड़ती गई। सवेरे हर्ष ने बड़े भाई को बुलाने के लिए तेज [illegible] को दौड़ाया।

दुख की उस अवस्था में राजभवन की हँसी-खुशी जाती रही। हर्ष भी कपड़े से मुंह ढककर अपने पलंग पर पड़ गया। उसी समय यशोवती की प्रतिहारी ने आकर सूचना दी, "महादेवी ने सम्राट के [illegible] जी सती होने का भयंकर निश्चय कर लिया है।" यह दारुण समाचार सुनते ही हर्ष झट मां के पास दौड़ा आया। वह सती-वेश में थीं। दूर से ही आँखों में आँसू भर कर उसने कहा, "माँ, मुझ अभागे को तुम भी छोड़ कर जा रही हो। कृपा कर इस [illegible] को दूर करो।" यह कहकर चरणों में गिर पड़ा। रानी उसे देख कर शोक से विह्वल हो गई और रोने लगी। दुख कुछ कम होने पर रानी ने पुत्र के आंसू पोंछे और बोली "हे पुत्र, मैं [illegible] ही मरना चाहती हूँ। मुझे मत रोक।" यह कह हर्ष के पैरों में गिर पड़ी। हर्ष ने झट अपने पैर खींच लिये और झुककर माता को [illegible]।

माता का असह्य शोक और दृढ़ निश्चय समझकर वह चुप हो गया। रानी यशोवती ने मुंह धोया और पैदल ही चलकर सरस्वती के किनारे गईं और वहीं चिता बनाकर सती हो गईं।

माता के मरण से दुखी हर्ष पिता के पास गया। प्रभाकरवर्द्धन के शरीर की प्राण-शक्ति क्षीण हो चुकी थी। उसकी पुतलियां फिर रहीं थीं। "पुत्र, यह पृथ्वी तुम्हारी है"—यह कहते-कहते उन्होंने आँखें मींच लीं। सम्राट की मृत्यु के बाद स्वयं हर्ष, सामन्त, पौर और पुरोहित कन्धा देकर अर्थी को सरस्वती के किनारे ले गए। और उसे चिता पर रख कर दाह-संस्कार किया। उसने वह भयंकर रात्रि नंगी धरती पर बैठे-बैठे बिताई। इसके बाद सम्राट के फूल चुनकर उन्हें विविध तीर्थ-स्थानों और नदियों में भेजा। अगले दिन सवेरे उठकर हर्ष ने फिर सरस्वती तट पर जाकर स्नान किया और पिता को जलांजलि देकर पैदल राजभवन को लौटा। तब अनेक हित-मित्र और साधु-संन्यासी हर्ष के साथ समवेदना प्रकट करने और समझाने के लिए आए। उन लोगों के समझाने-बुझाने से हर्ष का शोक कुछ कम हुआ। तब उसके मन में परदेस गए राज्यवर्द्धन के बारे में अनेक विचार आने लगे। उसे भय हुआ कि कहीं वह लौटने का विचार छोड़कर वन को ही न चला जाय। आशंका-भरे मन से

वह बड़े भाई के आने की बाट जोहने लगा।

: ६ :

इस प्रकार राज्यवर्द्धन की राह देखते हुए हर्ष ने अशौच के दिन पूरे किए। ब्राह्मणों को जिमाकर शय्या-दान दिया और प्रभाकरवर्द्धन के निजी हाथी को वन में छोड़ दिया गया। उसी समय हूण-युद्ध में घायल होकर राज्यवर्द्धन भी लौट आया। पिता की मृत्यु के शोक से उसकी दशा और भी खराब थी। हड़बड़ी में आने के कारण निजी सेवक पीछे छूट गए थे। राज्यवर्द्धन भीतर आकर बैठ गया। बहुत देर चुपचाप रहने के बाद उठा और स्नान किया। हर्ष ने भी स्नान किया और तब दोनों भाई धरती पर बिछे हुए कालीन पर पास-पास बैठ गए। कुछ प्रधान सामन्तों ने, जिनकी बात टाली न जाती थी, कह-सुनकर उन्हें भोजन कराया।

अगले दिन सवेरे राज्यवर्द्धन ने राजाओं के सामने हर्ष से कहा, "मेरी इच्छा किसी आश्रम में चले जाने की है। तुम राज्य का भार संभालो। मैंने आज से शस्त्र छोड़ा।" यह कह खड्गग्राही के हाथ से झट तलवार लेकर धरती पर फेंक दी। यह देखकर हर्ष का हृदय शोक से फट गया। उसके मन में विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ। पर वह कुछ कह न सका और मुंह नीचा किये बैठा रहा। उसी समय आज्ञा पाकर तोशाखाने के अधि-

कारी ने रोते हुए -ल्ल ल ला रक्खा। तभी राज्यश्री का एक परिचारक रोता-पीटता सभा में आया। राज्यवर्द्धन के पूछने पर उसने किसी प्रकार कहा, "देव, जिस दिन से सम्राट के मरने की खबर फैली उसी दिन दुष्ट मालव-राज ने ग्रहवर्मा को मार डाला और राज्यश्री के पैरों में बेड़ी डालक उसको कान्यकुब्ज के कारावास में डाल दिया। ऐसा सुना है कि वह थानेश्वर पर भी हमला करना चाहता है।"

इस समाचार से राज्यवर्द्धन का विषाद हट गया और शोक की जगह वह क्रोध और वीर-रस से भर उठा। उसका बायां हाथ म्यान पर और दाहिना हाथ तलवा। की मूंठ पर पड़ा। उसी मुद्रा में उसने हर्ष से कहा, "राज्य को तुम संभालो। मैं तो आज ही मालवराज का नाश करने के लिए चला। मेरे लिए अब यही चीवर और यही तप है। सब सेना यहीं रहेगी। अकेला यह भंडि दस हजार घुड़सवार लेकर मेरे पीछे आयगा।" यह कह तुरंत कूच का डंका बजाने की आज्ञा दी। हर्ष ने आग्रह से कहा, "कृपया मुझे भी साथ ले चलें।" किन्तु राज्यवर्द्धन ने उत्तर दिया, "हे तात, छोटे शत्रु के लिए भारी तै।ारी करना उसे बड़प्पन देना होगा। हिरणों को मारने के लिए शेरों का झुंड नहीं चा।हए। तुम ठहरो, मुझे अकेले ही शत्रु-नाश करने दो।" यह कह उसी दिन शत्रु पर चढ़ाई करदी।

राज्यवर्द्धन के चले जाने पर हर्ष अनमना होकर समय बिताने लगा। एक दिन स्वप्न में उसने एक लोहे का खम्भा ·टकर गिरना हुआ देखा। वह घबरा कर उठ बैठा और सोचने लगा, "क्यों ये बुरे सपने अब भी मेरा पीछा नहीं छोड़ते?" लेकिन वह बाहर आकर बैठा ही था कि राज्यवर्धन का एक निजी सवार वहां आ पहुंचा। उसने ·ताया कि राज्यवर्द्धन ने मालव की सेना को खेल-खेल में जीत लिया था, किन्तु गौड़ के राजा ने बाहरी आव-भगत से विश्वास जमाकर उसे अकेले में शस्त्रहीन पाकर मार डाला।

इतना सुनना था कि हर्ष में कोप का ज्वाल·मुखी फूट पड़ा। वह अत्यन्त भीषण रूप धर कर गौड़ नरेश को बुरा-भला कहने लगा। पास में बैठे हुए सेनापति सिंह-नाद ने उसका समर्थन किया और उसे युद्ध के लिए ·त्तेजित किया। इसपर हर्ष ने ·तिज्ञा की, "यदि कुछ ही दिनों में मैं इस धरती को गौड़रहित न बना दूं तो आग में पतंगे की तरह अपने शरीर को जला डालूंगा।" यही नहीं, उसने पूर्व में उदयाचल, दक्षिण में ·चि·कूट, ·श्चिम में अस्ता·ल और उत्तर में गन्धमादन तक के सब राजाओं को ·लख·वा भेजा कि या तो वे उसकी ·धीनता ·स्वीकार करके कर दें या युद्ध के लिए तैयार रहें।

इस प्रतिज्ञा से हर्ष का मन हलका हुआ। अगले दिन उसने बाहर गई हुई राज-सेना को तुरन्त [illegible] में लौटाने की व्यवस्था करने की आज्ञा दी और राज्य का सब प्रबन्ध ठीक किया। उसके बाद दिग्विजय के लिए सेना के कूच की आज्ञा दी।

: ७ :

हर्ष की इस यात्रा को बाण ने चार दिशाओं की विजय का नाम दिया है। उस काल की राजनैतिक पद्धति के अनुसार चतुरंत दिग्विजय के बाद विजयकर्ता को महाराजाधिराज की पदवी प्राप्त होती थी। हर्ष शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक पूजा करके प्रजा की जय-जयकार के बीच राजभवन से निकला और नगर से बाहर सरस्वती के किनारे घास-फूस के बंगलों और तम्बू-डेरों में ठहरा। यहां पर उसने सौ गांव ब्राह्मणों को दान में दिये।

जब रात का [illegible] पहर समाप्त हो रहा था तो कूच का नगाड़ा बजा। [illegible] जोर-जोर से डंके की आठ चोटें मारी गईं। उससे सूचित हुआ कि पहले दिन का पड़ाव आठ कोस की दूरी पर होगा। डंके के साथ ही कूच के बाजे बजने लगे। छावनी में बारी-बारी से सब लोग जागे। डेरे-डंडे उठाए जाने लगे। लद्दू हाथी, घोड़े और छकड़ों पर सामान लदने लगा। भांति-भांति की

सवा।र।ं चलने लगीं। सजी-बजी सेना के ,रावल दस्ते घोड़े छोपे हुए निशानों वाले वेश से स०कर चलने लगे।

प्रयाण के समय देश-देश के राजा हर्ष की स.ायता के लिए इकट्ठे हुए। वे हाथी-घोड़ों पर सवार भांति-भांति की वेश-भूषा पहने थे। अगले पड़ाव पर कामरूप के कुमार भास्करवर्मा के दूत के आने की सूचना मिली। हर्ष ने उसे बुला भेजा और पूछा, "श्रीमान् कुमार तो कुशल से हैं?" उसने उत्तर दिया, "जब देव इतने गौरव से पूछ रहे हैं तो वह आज सब प्रकार कुशल-युक्त हुए।" फिर उसने कहा, "कुमार ने अपने पूर्वजों द्वारा ।जत यह छत्र आपकी सेवा में भेजा है।" जब हर्ष छत्र देख चुके तो सेवकों ने अन्य उप।रों को भी उघाड़ कर ।ाया, जिनमें अनेक आभूषण, ूड़ामाण, श्वेत हार, चिट्टे रंग के क्षौम वस्त्र, मधु पीने के बर्तन, चमड़े की ढालें, [illegible] की तरह मुला म रेशमी थान, ।मदाना के बने हुए नरम तकिए ।नके भीतर पक्षियों के रोयें भरे थे, बेंत के बुने आसन, सुभाषितों से भरी हुई पुस्तकें, काले अगरू के तेल से भरी हुई मोटे बांस की ।लयां, सफेद कपूर के डले, कस्।रा के नाफे आदि ब.मूल्य सामग्री थी। उप.ार स्वी ार करके उसने दूत से आराम करने के लिए कहा और रात्रि के समय उसने कुमार का संदेश पूछा। दूत ने कहा, "देव,

शिव के भक्त कुमार का यह संकल्प है कि शिव के अतिरिक्त दूसरे किसी के चरणों में प्रणाम न करूंगा। आप जैसे अतिशय वीर की मित्रता से ही यह इच्छा सफल हो सकती है। इसलिए कुमार आपके साथ स्थायी मैत्री चाहते हैं।"

हर्ष ने कहा, "कुमार का संकल्प श्रेष्ठ है। उससे मेरी प्रसन्नता और बढ़ी है। ऐसा यत्न करो कि अधिक समय तक हमें कुमार से मिलने की उत्कण्ठा न सहनी पड़े।" दूत ने कहा, "देव, कुछ ही दिनों में आप उनको यहां आया हुआ जानें।" हर्ष ने सवेरे अपने प्रधान दूत के साथ वापसी भेंट सामग्री भेजते हुए दूत को बिदा किया।

फिर एक दिन हर्ष ने सुना कि राज्यवर्धन की सेना ने मालवराज की जिस सेना को जीत लिया था उस सबको अपने वश में करके भंडि लौट आया है और पास ही पहुंच गया है। कुछ समय बाद भंडि राज्यद्वार पर आया। वहीं घोड़े से उतरकर मुंह लटकाए, उसने भीतर प्रवेश किया। दूर से ही ढाड़ मार कर वह हर्ष के पैरों में गिर पड़ा। हर्ष ने लड़खड़ाते पैरों से आगे बढ़कर उसे उठाया और हाल पूछा। भंडि ने कहा, "देव, राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद जब गुप्त नाम के व्यक्ति ने कान्यकुब्ज पर अधिकार कर लिया तो राज्यश्री पकड़ी गई। पर वह किसी तरह छूटकर विन्ध्याचल के जंगल में चली

गई। ऐसा मैंने लोगों से सुना। उसे ढूंढ़ने के लिए गये हुए लोगों में से अभी कोई लौट कर नहीं आया।" हर्ष ने उत्तेजित होकर कहा, "औरों के ढूंढ़ने से क्या ? जहां भी वह हो उसे ढूंढ़ने में स्वयं जाऊंगा। तुम सेना लेकर गौड़ पर चढ़ाई करो।" दूसरे दिन उसने राज्यश्री के ढूंढ़ने के लिए प्रस्थान किया और कुछ ही पड़ावों के बाद विन्ध्याटवी के एक वन-ग्राम में पहुंचकर रात को वहीं ठहरा।

: ८ :

उस गांव में रात [illegible] दूसरे दिन हर्ष ने वन में प्रवेश किया और इधर-से-उधर घूमता रहा, पर राज्यश्री का कुछ समाचार न मिला। एक दिन उसे पता लगा कि यहां से एक कोस पर पहाड़ की जड़ में, वृक्षों के घने झुरमुट में दिवाकरमित्र नामक भिक्षु अपने शिष्यों के साथ रहते हैं। शायद उसे खबर लगी हो।

दिवाकरमित्र स्वर्गीय ग्रहवर्मा का बाल्पन का मित्र था। हर्ष कई बार उसकी प्रशंसा सुनकर उससे भेंट करने की बात मन में ला चुका था। वह तुरन्त उससे मिलने चला। वहां उसने वृक्षों के बीच में बैठे हुए दिवाकरमित्र को देखा और दूर से ही उसे प्रणाम किया। [illegible] के आसन के दोनों ओर दो शेर के बच्चे बैठे थे। बायें हाथ से वह कबूतर के बच्चे को जंगली चावल चुगा रहा था। उसने हर्ष को देखकर उचित आवभगत से उसका

स्वागत किया और विन्ध्याटवी में आने का कारण पूछा। हर्ष ने कहा, "मेरे परिवार के सब इष्ट व्यक्तियों के नष्ट हो जाने पर मेरे जीवन का एकमात्र सहारा मेरी छोटी बहन बची थी। पति-वियोग हो जाने के बाद वह भी शत्रु के भय से किसी प्रकार बचकर इस वन में आ गई। मैं रात-दिन उसे ढूंढ़ रहा हूं, पर अभी पता नहीं लगा। यदि किसी वनचर ने आपको कुछ सूचना दी हो तो कृपया बताएं।" यह सुनकर भदन्त ने दुखी भाव से कहा, "अभी तक ऐसा कोई समाचार मुझे नहीं मिला।" ठीक उसी समय एक भिक्षु ने आकर रोते हुए कहा, "भन्ते, बड़े दुःख का विषय है। बाल-अवस्था की एक सुन्दर स्त्री विपत्ति में पड़ी हुई शोक के आवेग से अग्नि में जलने के लिए तैयार है। कृपया चलकर उसे समझाएं।"

सुनते ही हर्ष को शंका हुई कि वह उसकी बहन ही है। उसने गद्गद् कंठ से पूछा, "वह स्त्री कितनी दूर पर है और क्या हमारे पहुंचने तक वह जीवित मिल सकेगी?"

भिक्षु ने कहा, "महाभाग, आज सवेरे नदी पर घूमते हुए मैंने अनेक स्त्रियों से घिरी हुई और करुण स्वर में विलाप करती हुई एक स्त्री को देखा। उनमें से एक ने कहा, 'यह हमारी स्वामिनी, पिता के मरण, स्वामी के नाश, भाई के प्रवास और अन्य सब बन्धुओं के वियोग से अनाथ हुई, शत्रु द्वारा किये गए पराभव के

दारुण दुःख को न सह सकने के कारण अग्नि में प्रवेश कर रही है। कृपया इसे बचाइए और समझाइए।' मैंने दुखी होकर कहा, 'यदि तुम इसे मुहूर्त भर भी रोक सको तो मेरे गुरु समाचार सुनते ही यहां आकर इसे समझायें।'"

हर्ष ने भिक्षु की बात सुनते ही तुरन्त समझ लिया और दिवाकरमित्र के कान में कहा, "आर्य, दुर्भाग्य से इस बुरी अवस्था को प्राप्त हुई वह मुझ मन्दभाग्य की बहन ही है।" फिर उस दूसरे भिक्षु से कहा, "उठो, और बताओ वह कहां है, जिससे तुरन्त वहां जाकर उसे हम जीवित ही बचा सकें।"

इसके बाद हर्ष, दिवाकरमित्र और अन्य लोग पैदल उस भिक्षु के पीछे चल पड़े। दूर से ही उन्होंने अनेक स्त्रियों का विलाप सुना। हर्ष तुरंत दौड़कर वहां गया और अग्नि प्रवेश के लिए तैयार राज्यश्री के ललाट पर हाथ रखकर उसे सहारा दिया। इस अवस्था में सहसा भाई को पास देखकर राज्यश्री ने रोते हुए कहा, "हा पिता! हा माता!" और बहुत विलाप करने लगी। हर्ष भी देर तक रोते रहे, फिर कहा, "बहन, अब धीरज धरो और अपने को संभालो।" आचार्य ने भी कहा, "हे कल्याणी, बड़े भाई की बात मानो।" शोक जब कुछ कम हुआ तो हर्ष उसे अग्नि के पास से हटाकर दूर ले गए।

वहां पहले बहन का मुख धोया और फिर अपना। फिर मन्द स्वर में कहा, "वत्से, भदन्त को प्रणाम करो। ये तुम्हारे पति के दूसरे हृदय और हमारे गुरु हैं।" पति का नाम आते ही राज्यश्री के नेत्रों में फिर जल भर आया। जब उसने प्रणाम किया तो दिवाकरमित्र के नेत्र भी गीले होगए। वह मुंह फेरकर गहरी सांस छोड़ने लगे। फिर क्षण भर रुककर बोले, "अब अधिक रोने से क्या लाभ ? स्नान करके सबको फिर आश्रम को चलना चाहिए।" यह सुन हर्ष ने बहन के साथ नदी में स्नान किया और आश्रम में लौटकर ग्रहवर्मा को पिंड देने के बाद पहले बहन को कुछ खिलाया और फिर स्वयं कुछ खाया। तब राज्यश्री से उसकी विपत्तिका सारा हाल सुना।

उसी समय आचार्य दिवाकरमित्र वहां आए और कहने लगे, "श्रीमन्, सुनिए, मुझे कुछ कहना है। बृहस्पति की पत्नी तारा के लिए काम-भाव से व्याकुल चन्द्रमा के जो आंसू समुद्र में गिरे, उन्हें सीपियों ने पी लिया और वे सुन्दर मोती बन गये। उन मोतियों को पाताल के वासुकि नाग ने किसी तरह पाकर यह एक लड़ी माला बनाई थी, जिसका नाम मन्दाकिनी है। भिक्षु नागार्जुन जब पाताल गए तो वासुकी से वह माला उन्होंने प्राप्त की और सातवाहन नाम के राजा को दी। उसी माला को कृपया आप स्वीकार करें।"

हर्ष ने उसे लेकर प्रेम के साथ कहा, "ऐसे रत्न मनुष्यों को नहीं मिलते। मैं अब आर्य के वश में हूं।"

कुछ समय बीतने पर राज्यश्री ने सखी के मुख से हर्ष से गेरुआ वस्त्र धारण करने की आज्ञा मांगी। हर्ष तो चुप रहे, पर दिवाकरमित्र ने धीर स्वर में कहा, "आयुष्मति, शोक कभी न बुझनेवाली अग्नि है। अपने सुकुमार मन को विवेक का सहारा दो। पिता के समान तुम्हारा यह बड़ा भाई ही अब तुम्हारा गुरु है। जो यह कहे वही करो।" हर्ष ने कहा, "आर्य, एक याचना करता हूं। इस दुखिया छोटी बहन का लालन मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु मैं शत्रु-कुल के नाश की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। जबतक मैं अपने आपको उस बोझ से हल्का न कर लूं तबतक मैं चाहता हूं कि आप मेरी इस बहन को अपनी शरण में लें। अपने उस काम से छुट्टी पाकर यह और मैं एक साथ गेरुआ वस्त्र धारण करेंगे।" उत्तर में भदन्त ने फिर कहा, "भाग्यशाली को दो बार कहने की आवश्यकता नहीं। छोटे या बड़े जिस काम में मेरा उपयोग हो सके, मैं आपके अधीन हूं।"

उस रात को हर्ष वहीं रहे। अगले दिन आचार्य और राज्यश्री को साथ लेकर कुछ पड़ाव करने के बाद गंगा-तट पर अपने कटक में लौट आए।

इस प्रकार हर्षचरित की यह कहानी समाप्त हुई।

संस्कृत-साहित्य-सौरभ
१३

भारवि-कृत

किरातार्जुनीय

●

श्री ज्योतिप्रसाद निर्मल

द्वारा

कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

सम्पादित

●

१९५४

सत्साहित्य-प्रकाशन

सस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। इसी विचार को इस माला द्वारा मूर्त रूप दिया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। कई आगे निकलेंगी। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तक पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'किरातार्जुनीय' के लेखक महाकवि भारवि का नाम संस्कृत साहित्य में खूब प्रसिद्ध है। महाकवि कालिदास, दण्डी और माघ के समान उनको मानते हैं। संस्कृत कविता का अध्ययन करने वालों के लिए जिन तीन ग्रंथों का पढ़ना बहुत ही आवश्यक है उनमें एक 'किरातार्जुनीय' है। इस ग्रंथ की रचना-शैली बहुत ही मनोहर और 'अर्थ-गौरव' से पूर्ण है। प्रकृति का वर्णन तो इतना सुन्दर है कि मन मुग्ध हो उठता है। भारवि राजनीति के पण्डित माने गए हैं। पूरे काव्य में नीति भरी पड़ी है। वह परम शैव थे।

वह कब हुए और कहां के रहने वाले थे इस बारे में संस्कृत के दूसरे कवियों की तरह कुछ भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। इनके ग्रंथ से इनके जीवन के बारे में भी कुछ पता नहीं लगता, परन्तु दक्षिण के एक शिला-लेख और आचार्य दण्डी ने अपनी पुस्तक 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में अपने पुरखों का जो वृत्तान्त दिया है, उससे पता चलता है कि वह दक्षिण देश के निवासी थे और चालुक्य वंश के राजा विष्णुवर्धन की सभा के पण्डित थे। राजा विष्णुवर्धन पुलकेशी द्वितीय का छोटा भाई था और ६१५ ई० के आसपास महाराष्ट्र में राज्य करता था। इन सब उल्लेखों से पता चलता है कि भारवि सातवीं सदी के आरम्भ में हुए।

भारवि ने बस एक ही ग्रंथ लिखा है और उसीके बल पर वह अमर हैं। बड़े-से-बड़े अर्थ को थोड़े से शब्दों के द्वारा प्रकट करना उनकी कविता की विशेषता है। इस ग्रंथ की कथा महाभारत से ली गई है।

—सम्पादक

किरातार्जुनीय

कौरव-पांडवों की कहानी कौन नहीं जानता। उनमें आपस में बड़ी अनबन थी। कौरव चाहते थे कि हस्तिनापुर का राज्य उनके हाथ में रहे। उन्होंने कई बार पांडवों और उनकी पत्नी द्रौपदी का अपमान भी किया; किन्तु पांडवों ने चुपचाप उसे सह लिया और अनबन को आगे नहीं बढ़ने दिया।

बड़े पांडव युधिष्ठिर में जहां अनेक गुण थे, वहां एक अवगुण भी था। वह जुआ खेलने की कला में बड़े निपुण थे। कौरवों ने युधिष्ठिर के इस अवगुण से लाभ उठाने की पूरी चेष्टा की। दुर्योधन उनमें सबसे बड़ा था। जब पांडव इन्द्रप्रस्थ में राज्य करते थे तो उसने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए न्योता भेजा। युधिष्ठिर ने यह न्योता स्वीकार कर लिया। जुए का खेल हुआ। बाजी लगाई गई कि जो हार जाय वह बारह बरस तक जंगल में निवास करे। युधिष्ठिर हार गए। एक बार तो राजा धृतराष्ट्र ने उनका राज्य उन्हें लौटा दिया, परन्तु दुर्योधन हार मानने वाला नहीं था। उसने युधिष्ठिर को एक बार फिर जुआ खेलने का न्योता दिया। इस बार भी युधिष्ठिर हारे और अपने भाई भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा पत्नी द्रौपदी के साथ तेरह वर्ष के लिए वन चले गए। इनमें से एक वर्ष

अज्ञातवास में रहने की शर्त थी। वे द्वैतवन नाम के एक जंगल में जाकर रहने लगे।

वहां रहते जब कई वर्ष बीत गए, तब एक दिन युधिष्ठिर ने दुर्योधन का समाचार जानने के लिए एक वनवासी किरात को हस्तिनापुर भेजा। किरात ब्रह्मचारी का वेश धारण कर वहां गया और दुर्योधन का समाचार लेकर वापस लौट आया। यहीं से इस काव्य की कथा आरम्भ होती है।

: १ :

किरात ने महाराज युधिष्ठिर से कहा, "दुर्योधन इस समय राज्य का नीतिपूर्वक शासन कर रहा है। मैं राजा हूं, मेरा यही धर्म है, ऐसा समझ कर वह शत्रु और मित्र के साथ उचित व्यवहार करता है। बड़े-बड़े राजा उसे कर देते हैं। उसके राज्य में बढ़िया खेती होती है। प्रजा प्रसन्न है। उसने दुःशासन को युवराज बनाया है और स्वयं यज्ञ आदि करता रहता है, पर वह आपकी चर्चा नहीं सुन सकता। वह आपको मिटाना चाहता है। आपको भी उसका नाश करने के लिए उचित उपाय करना चाहिए।"

यह सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने वनवासी को पुरस्कार देकर विदा किया और सब समाचार अपने भाइयों तथा पत्नी को सुनाया। द्रौपदी यह समाचार सुनकर बड़ी दुखी हुई। दुर्योधन कई बार उसका अपमान कर चुका था। उससे चुप नहीं रहा गया। बोली, "हे नाथ, स्त्री पुरुष को उपदेश दे, यह उचित नहीं समझा जाता,

किन्तु फिर भी मेरे अन्दर जो दर्द भरा हुआ है वह मुझे कुछ कहने के लिए विवश कर रहा है। क्षमा कीजिए। इन्द्र के समान तेज वाले आपके पुरखों ने जिस धरती का राज भोगा उसे आपने यों ही खो दिया। आपके सिवा ऐसा और कौन कर सकता है ? जो दुष्टों के साथ दुष्टता का बर्ताव नहीं करते वे सदा हारते हैं। जो भीम पहले उत्तम रथ पर चढ़ कर चलते थे वह आज पैदल पथरीली धरती पर घूमते हैं, इन्द्र के समान अर्जुन पेड़ों की छाल पहन कर जीवन बिता रहे हैं। नकुल और सहदेव दोनों जंगली हाथियों की तरह हो गए हैं। सबकी दुर्दशा देखकर आपका क्रोध क्यों नहीं भड़कता ? आपकी अपनी क्या दुर्दशा हो गई है। जंगली फल खाते-खाते आपका शरीर ही दुर्बल नहीं हुआ है, यश भी दुबला गया है। इसलिए आप अब शांति छोड़कर शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अपना पुराना तेज धारण कीजिए। शांति, धैर्य तथा संतोष तो मुनियों के लिए है, राजाओं के लिए नहीं। आप सबकुछ कर सकते हैं। आपका तेज असीम है। फिर भी शत्रु पर विजय पाने के लिए आप समय की बाट जोह रहे हैं, यह उचित नहीं है। विजय चाहने वाले राजा समय के अनुसार किसी-न-किसी बहाने सन्धि को भी तोड़ देते हैं।"

द्रौपदी की बातें सुनकर भीम से भी चुप नहीं रहा गया। वह बोले, "महाराज, द्रौपदी ने इस समय जो कुछ कहा है, वह बहुत सुन्दर है। स्त्री का कहा होने के कारण वह उपेक्षा करने योग्य नहीं है। अचरज की बात तो यह है कि आपके पास देवताओं को भी विस्मय में

डालनेवाला पुरुषार्थ है, फिर भी शत्रुओं ने आपकी यह दुर्दशा कर दी है। माना इस समय आपके पास शक्ति नहीं है, फिर भी यदि आप शत्रु को जीतने के लिए चेष्टा करें तो प्रजा आपका स्वागत करेगी। शूरवीरों का सच्चा सहायक पुरुषार्थ है। यदि आप तेरह साल पूरे होने की राह देखेंगे तो राज्य का सुख भोगकर दुर्योधन अवधि के बाद भी आपका राज्य नहीं लौटायगा। इसलिए आलस्य छोड़कर शत्रुओं पर विजय पाने का उपाय कीजिए और हम लोगों को आदेश दीजिए। शत्रुओं में ऐसा कौन है जो आपके छोटे भाइयों के पराक्रम को सह सके।"

भीम की ये बातें सुनकर उसे शांत करते हुए युधिष्ठिर बोले, "भीम, तुमने जो कुछ कहा है वह ठीक है, किन्तु प्रत्येक कार्य सोच-विचार कर करना चाहिए। असमय में क्रोध करना अनुचित है। शत्रु का नाश करने के लिए शांति से बढ़कर और कोई बढ़िया साधन नहीं है। यदि हम अवधि के बाद नियमपूर्वक युद्ध की घोषणा करेंगे तो सब राजा हमारी सहायता करेंगे। यह समझ लेना कि अधिक समय हो जाने पर दूसरे राजा दुर्योधन के पक्ष में हो जायंगे तुम्हारी भूल है। अहंकारी मनुष्य का साथ समय पड़ने पर सभी छोड़ देते हैं, क्योंकि वे उसके दुर्व्यवहार से मन-ही-मन अप्रसन्न रहते हैं। इसलिए हमारे लिए वनवास की अवधि को शांति के साथ [illegible]ना ही उचित है।"

महाराज युधिष्ठिर भीम को इस प्रकार समझा ही रहे थे कि [illegible] भगवान वेदव्यास वहां आ पहुंचे। उनको देखते ही सबने उनका स्वागत-सम्मान किया।

उन्हें ऊंचे आसन पर बिठाया। फिर उनकी आज्ञा पाकर आप भी हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गए।

उसके बाद व्यासजी का गुणगान करते हुए युधिष्ठिर ने बड़ी चतुरता से उनके आने का कारण पूछा। व्यासजी धृतराष्ट्र की निन्दा और युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए बोले, "आपके शत्रुओं ने आपके साथ जो बुरा बर्ताव किया है उससे आपका भला ही हुआ है। लेकिन आपका शत्रु, बल और हथियारों में, आपसे बढ़ा हुआ है। आपको उससे बढ़ने का उपाय करना होगा। भीष्म पितामह, कर्ण और द्रोणाचार्य जैसे योद्धा उसके पक्ष में हैं। उनको पराजित करने के लिए दिव्य अस्त्र चाहिए। मैं अर्जुन को एक मंत्र सिखाता हूं। उसके द्वारा वह इन्द्र को प्रसन्न करेंगे और दिव्य अस्त्र प्राप्त करके शत्रुओं पर विजय पायेंगे। मेरा इस समय यहां आने का यही उद्देश्य है।" इसके बाद वेदव्यास ने अर्जुन को वह मंत्र सिखाया और बोले, "हे अर्जुन, तुम मेरे कहने के अनुसार शस्त्र धारण करके मुनियों की भांति तपस्या करो। एक यक्ष को मैं तुम्हारे साथ किये देता हूं। वह तुम्हें तपस्या के स्थान पर पहुंचा आवेगा।"

ऐसा कहकर व्यासजी वहां से चले गए और यक्ष वहां आकर उपस्थित हो गया। तब भाइयों से विदा मांग कर अर्जुन उसके साथ चलने को तैयार होने लगे। द्रौपदी ने उस समय एक वीर-पत्नी की भांति उन्हें विदा दी। उसके हृदय में वियोग का दुख तो था, पर [illegible] भी कम नहीं था। अर्जुन शत्रुओं पर विजय पाने के लिए

ही तो तप करने जा रहे थे।

द्रौपदी की बातें सुनकर अर्जुन कुछ उत्तेजित हो उठे। उन्हें शत्रुओं के प्रति क्रोध भी उत्पन्न हुआ और वह अस्त्र-शस्त्र लेकर यक्ष के साथ हिमालय की ओर चल पड़े।

: २ :

शरद ऋतु का सुहावना समय था। मार्ग दिखाता हुआ यक्ष अर्जुन के साथ चला जा रहा था। कहीं कीचड़ का नाम नहीं था। तालाबों में कमल खिले हुए थे। खेतों में अनेक प्रकार के धानों की बालें झूम रही थीं। गांवों के हर घर में फूल खिल रहे थे। अर्जुन शरद् ऋतु की यह सुन्दर शोभा देखकर बड़े प्रसन्न हुए। यह देखकर यक्ष बोला, "हे अर्जुन, यह समय सचमुच बड़ा सुन्दर मालूम होता है। सरोवर और नदियों का जल स्वच्छ हो गया है। आकाश बादलों के न होने से निर्मल दिखाई देता है। मंद-मंद सुगंधित वायु बह रही है। खेतों का जल, हरी लताएँ, सफेद कमल और पके हुए धान की पीत कांति से इन्द्र-धनुष की शोभा प्रकट हो रही है। हंस कूज रहे हैं। हरि-णियाँ मधुर कंठवाली गोपियों का गाना सुनकर चरना भूल गई हैं।"

इस प्रकार अर्जुन से शरद् ऋतु की शोभा का वर्णन करता हुआ यक्ष हिमालय पर्वत पर आ पहुंचा। यहां आकर उसने कहा, "हिमालय पर धरती, आकाश और स्वर्ग सबके निवासी रहते हैं। यह रत्नों की खान है। नाना प्रकार के पुष्पों से यह शोभित है। इसके शिखर बहुत ऊंचे और हिम से ढके हुए हैं। इसका मध्य भाग बहुत

सुन्दर है। वहां से जान्हवी आदि सुर-सरित एं प्रवाहित हो रही हैं। इसका उच्च शिखर आकाश-मंडल को छूने जा रहा है। मानसरोवर आदि पवित्र स्थान यहीं पर हैं। इसी हिमालय पर गहन वन हैं जो बड़े-बड़े वृक्षों और औषधियों से शोभित हैं, जहां हिंसक पशु निर्भय होकर विचर रहे हैं। इसी पर्वत पर भगवती पार्वती ने अपनी अद्भुत तपस्या से भगवान शंकर को प्राप्त किया था।

"देखो अर्जुन, यहीं पर कैलास पर्वत है। यहीं भगवान शंकर अपने गणों के साथ निवास करते हैं। और यह इन्द्रकील पर्वत कैसा मनोरम है! इसकी गुफाएं बड़ी सुन्दर हैं। यह पर्वत इन्द्र को बहुत प्यारा है। यहां के वन बड़े मनोहारी हैं। यहां की मरकत मणि की शोभा के सामने सूर्य की किरणें भी फीकी पड़ गई हैं।"

इस प्रकार वहां की शोभा का वर्णन करता हुआ यक्ष अन्त में बोला, "हे अर्जुन, अब आप शस्त्र धारण करके इसी इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या कीजिए। तपस्या के समय बहुत-सी बाधाएं पैदा होंगी। बिना विघ्न-बाधाओं के [illegible] होना कठिन है। भगवान शंकर और लोकपाल आपकी सहायता करें।"

इस प्रकार प्यारे और [illegible] वचन कहकर यक्ष वहां से चला गया और अर्जुन वहीं इन्द्रकील पर्वत पर रहने लगे।

: ३ :

इन्द्रकील पर्वत की अद्भुत छटा को देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। तपस्या करने में उनका उत्साह बढ़ने

लगा। सांसारिक विषयों से अपने मन को हटाकर और इन्द्रियों को अपने वश में करके वह बहुत कठिन तप करने लगे। उन्होंने शस्त्र धारण किये हुए थे, परन्तु उनका स्वभाव बड़ा सरल था। उन्होंने अपने आचरण से ऋषियों को जीत लिया। उनके मुख पर एक अद्भुत तेज दिखाई देने लगा। उनके सिर की जटाएं बढ़ गईं। धनुष धारण किये उनको तपस्या में लगे देखकर हिंसक पशुओं तथा सर्प आदि जीवों ने हिंसाभाव छोड़ दिया। पवन बहुत ही सुखद और शीतल होकर बहने लगा। पौधे नये पत्तों से हरे-भरे दिखाई देने लगे। आकाश निर्मल हो गया और धूल दूर हो जाने के कारण धरती शांत दिखाई देने लगी।

अर्जुन के तप का ऐसा प्रभाव देखकर वहां के वनचर इन्द्र के पास गये और उन्होंने उनसे अर्जुन की अद्भुत तपस्या का वर्णन किया। वनचरों के मुख से अर्जुन की तपस्या का वर्णन सुनकर इन्द्र हृदय में बड़े प्रसन्न हुए, फिर भी उन्होंने अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए अप्सराओं और गन्धर्वों को इन्द्रकील पर्वत पर भेजा। उनकी रक्षा के लिए इन्द्र ने हाथी, रथ, घोड़ों तथा अपने सेवकों को भी जाने का आदेश दिया। आज्ञा पाकर वे सब लोग चल पड़े। मार्ग में बड़ी तेज धूप थी। उनके शरीर से पसीना टपकने लगा। लेकिन जब वे सब मंदाकिनी के समीप पहुंचे तो उन्हें बड़ी शांति मिली। शीतल वायु ने उनका ताप दूर कर दिया। उस समय आकाश का दृश्य भी अद्भुत दिखाई देता था। रथों में जुते हुए घोड़े और इन्द्र की सेना सब

आ...ाश-गंगा की भांति जान पड़ते थे। वे सब आपस में बातें करते जाते थे कि इन्द्र का काम कैसे सिद्ध किया जायगा। यही सोचते-सोचते वे इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचे और गंगा के किनारे की सुरम्य भूमि पर अपने शिविर लगाये।

इन्द्रकील पर्वत की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता था। वह एक बसे हुए सुन्दर नगर की भांति दिखाई देने लगा। हाथियों की जलक्रीड़ा के कारण गंगाजल का रंग पलट गया। अप्सराओं के सौन्दर्य से पर्वत और पेड़ चमक उठे। घूम-घूम कर वे वहां की छटा देखने लगीं। कहीं ऊंचे से सरिताएं गिर रही थीं, कहीं फूलों से लदी लताओं पर भौंरे गुंज रहे थे। वे फूलों पर मुग्ध हो गईं। इसके बाद वे जलविहार के लिए चलीं। जलाशयों और नदियों में स्नान करते हुए उन्होंने जिस प्रकार क्रीड़ा की, उससे जंगल में मंगल दिखाई देने लगा। जब सायं...ाल आया तो सूर्य की लालिमा से पश्चिम दिशा लाल हो गई। धीरे-धीरे अन्धकार ने चारों दिशाओं को ढक लिया। वन, उपवन, नदी और पर्वत सब अन्धकार में डूब गए। सूर्य के अस्त हो जाने से कमलिनी का मुख मलिन हो गया और वह मुरझा गई।

लेकिन समय कभी एक-सा नहीं रहता। पूर्व दिशा में चन्द्र ने उदय होकर अन्धकार का नाश कर डाला। वह उज्ज्वल हो गई। यद्यपि चन्द्र ने अपनी चांदनी से आकाश को पूर्ण रूप से प्रकाशित नहीं किया था फिर भी रात्रि नई बहू की तरह लगती थी, जिसका घूंघट हट गया हो और वह लज्जा के भार से दबी जा

रही हो। फिर चन्द्रमा की किरणें चारों ओर छा गईं और अप्सराएं विहार करने के लिए निकल पड़ीं। इसी प्रकार उन्होंने सारी रात बिता दी। सवेरा हुआ। बन्दीजन मंगलगान करने लगे। शीतल मन्द सुगन्धित वायु बहने लगी और दिशाएं पक्षियों के कलरव से मुदित दिखाई देने लगीं।

दिन निकलने पर अप्सराएं अच्छी तरह सजधज कर उस स्थान पर पहुंचीं, जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। उन्हें लुभाने के लिए वे तरह-तरह के उपाय करने लगीं। अर्जुन तब गंगा के तट पर तपस्या में लीन थे। यम-नियम का पालन करने से उनके अंग दुबले हो गए थे, तो भी वह अटल थे। उनके शरीर से प्रभा निकल रही थी। उनका वेश मुनियों का था, पर तेज में वह इंद्र के समान लगते थे। यह देखकर गन्धर्व मृदंग और वीणा बजाने लगे। सारी ऋतुएं एक साथ वहां आ गईं। आकाश में बादलों की काली घटा छा गई। बिजली चमकने लगी। वर्षा से तपोवन गीला हो गया। कोयल की सुरीली ध्वनि होने लगी। मालती के फूल खिल उठे। मलय पवन मन को हरने लगा। बारी-बारी से हरेक ऋतु ने अपना-अपना प्रभाव दिखाया, पर अर्जुन का मन तनिक भी तप-ध्यान और वन्दना से नहीं डिगा। गन्धर्वों के वीणा-वादन का भी अर्जुन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब अप्सराएं अपने रूपजाल में फंसाने के लिए अर्जुन के समीप जा पहुंचीं। वह अपने नाचगान व हावभाव से अर्जुन का तप भंग करने की कोशिश करने लगीं, किन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिली।

तपस्वी अर्जुन के तप-साधन के सामने उन अप्सराओं तथा गन्धर्वों के सारे प्रयत्न असफल हो गए। अन्त में वे सब निराश होकर लौट गए।

: ४ :

गन्धर्वों और अप्सराओं के लौट आने पर इन्द्र स्वयं उस स्थान पर आये जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। उन्होंने बूढ़े मुनि का वेश धारण किया था, लेकिन उनका तेज उसी तरह चमक रहा था जैसे सूरज बादलों में ढका हुआ हो। उन्हें अपने सामने देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए और उनका सत्कार कर उन्हें उच्च आसन पर बिठाया। थोड़ी देर आराम करने के बाद इन्द्र ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा, "हे अर्जुन, तुमने अच्छा किया जो युवावस्था में तप कर रहे हो। मैं तो इस उम्र में भी संसार में फंसा हुआ हूं। तुम्हारे तप से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम सुन्दर हो, गुणी भी हो। यह सोने में सुगन्ध जैसा है। संसार के प्राणियों को जन्म लेने में कितना दुख होता है। सारा जीवन विपत्तियों से भरा हुआ है। फिर मृत्यु अपना विकराल मुंह फैलाए सामने खड़ी रहती है। इसलिए सज्जन लोग मुक्ति की इच्छा से ही तपस्या करते हैं। तुम्हारा मन शुद्ध है। तुम भी ऐसा ही कर रहे हो, लेकिन एक बात समझ में नहीं आती। तुमने योद्धा का वेश क्यों धारण किया है? यह शांति का समर्थन नहीं करता। जान पड़ता है, तुम्हारी तपस्या मोक्ष-प्राप्ति के लिए नहीं है। तुम्हें यदि लक्ष्मी की चाह है तो वह चंचला है। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए तप कर रहे हो तो आत्म-पीडा की

भांति पर-पीड़ा भी उचित नहीं है। हां, यदि तुम चाहो तो मुक्ति बड़ी आसानी से मिल सकती है। सो तुम युद्ध का ध्यान छोड़ दो। अगर जीतना है तो इन्द्रियों को जीतो।"

इस प्रकार शस्त्र छोड़ देने का उपदेश देकर इन्द्र जब चुप हो गए तो अर्जुन उनसे विनयपूर्वक बोले, "भगवन, आपने जो बातें कही हैं वे उचित ही हैं। आपका वचन वेद-वचन के समान हैं। उसके बारे में तर्क की आवश्यकता नहीं है, परन्तु जान पड़ता है कि आप मेरे तप का उद्देश्य नहीं जानते। इसीलिए मुनि की भांति उपदेश दे रहे हैं। मैं आपके उपदेश का असली पात्र नहीं हूं। मैं क्षत्रिय हूं। मैं पांडु और कुन्ती का पुत्र अर्जुन हूं। हमारे चचेरे भाई दुर्योधन ने हम लोगों का सर्वस्व छीन लिया है। अपने बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा से इस दुस्तर तप को पूर्ण करने के लिए मैं यहां आया हूं। भगवान वेदव्यास ने मुझे आदेश दिया है कि मैं अस्त्र-शस्त्र धारण कर इस पर्वत पर तपस्या कर देवताओं के राजा इन्द्र को प्रसन्न करूं। युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ कपट-जुए के खेल में अपना सर्वस्व हारकर द्वैतवन में निवास कर रहे हैं। वह मेरे विरह में मेरे अन्य भाइयों तथा द्रौपदी के साथ अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। मैं आपसे अधिक क्या कहूं, शत्रुओं ने हमारे शरीर का वस्त्र भी उतरवा लिया है। बड़े दुख की बात तो यह है कि भरी सभा में उन्होंने द्रौपदी का अपमान किया। दुर्जनों के साथ मैत्री करना भी बुरा होता है। उसका परिणाम यह हुआ कि अजातशत्रु युधिष्ठिर की भी दुर्योधन आदि से शत्रुता बढ़ गई। इस संसार में मानहीन

प्राणियों को लोग तिनके से भी तुच्छ समझते हैं। इसलिए मैं सुख की अभिलाषा नहीं रखता। बुढ़ापे और मृत्यु के भय से मोक्ष भी नहीं चाहता। मैं तो शत्रुओं पर विजय पाने के लिए ही यह तप कर रहा हूं। मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शत्रुओं पर विजय पाने की अभिलाषा में मेरी ओर टकटकी लगाये बैठे हैं। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन कदापि नहीं करना चाहता। मेरी प्रतिज्ञा है कि या तो मैं इस पर्वत पर अपने प्राणों का अन्त कर दूंगा या अपने इष्टदेव इन्द्र की आराधना करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूंगा।"

यह सुनकर इन्द्र ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और अर्जुन को छाती से लगा लिया। उन्होंने अर्जुन को भगवान शंकर की आराधना करने का उपदेश दिया। कहा, "जब तुम शंकर को प्रसन्न कर लोगे तो मैं तुम्हें ऐसी शक्ति दूंगा जो शत्रुओं का मुंह फेर देगी।" इस प्रकार कहकर वे वहां से चले गए।

इन्द्र की बात मानकर अर्जुन निर्भय होकर भगवान शंकर की आराधना के लिए कठिन तपस्या करने लगे। इस प्रकार इन्द्रियों को वश में करके उपवास तथा व्रत करते हुए, सूर्य के सामने एक पैर से खड़े होकर, अर्जुन को तपस्या करते कई वर्ष बीत गए। उनका शरीर दुर्बल हो गया, किन्तु मन की शक्ति बढ़ती गई। उनका मुख सूर्य की तरह शोभावाला हो गया। सिर की जटाएँ चमकने लगीं। धनुष को तान कर तपस्या करते हुए रुद्र की भांति अर्जुन ने पर्वत पर निवास करनेवाले वनचरों,

तपस्वियों और मुनियों को विस्मय में डाल दिया।

अर्जुन के तप के प्रभाव को मुनिगण भी जब सहन न कर सके तब वह स्वयं भगवान शंकर की शरण में कैलास पर्वत पर पहुंचे और उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति सुनकर शंकर उनके सामने प्रकट हुए। तब मुनियों ने अर्जुन की भीषण तपस्या का वर्णन इस प्रकार किया: "भगवान सूर्य की किरणों की भांति एक तेजस्वी पुरुष इंद्रकील पर्वत पर तप कर रहा है। वह तपस्वी होता हुआ भी धनुष-बाण, कवच, खंग, जटा, वल्कल और मृग-चर्म धारण किये हुए है। जब वह चलने लगता है तब पृथ्वी कांप उठती है। इसलिए हम लोगों को संदेह हो रहा है कि क्या वह अपने तप के तेज से सारे विश्व को जीत लेना चाहता है? या एक ही बार में संहार करना चाहता है? या मुक्ति चाहता है। हम लोग उसके तेज को सहन करने में असमर्थ हो रहे हैं। भगवन, आप सब-कुछ जानते हुए भी क्यों उसकी उपेक्षा कर रहे हैं? आप ही हम सबकी रक्षा कर सकते हैं। इसलिए, हम आपकी शरण में आये हैं।"

भगवान शंकर ऋषियों की बात सुन कर गंभीरता-पूर्वक बोले, "तपस्वियो, यह तेजस्वी पुरुष बदरिकाश्रम तपोवन में रहने वाले भगवान नारायण का अंश है। यह सारे संसार को दुख देने वाले प्रबल शत्रुओं को जीतने की अभिलाषा से मुझे प्रसन्न करने के लिए तप कर रहा है। यह और कृष्ण दोनों ब्रह्मा की प्रार्थना से असुरों का नाश करने के लिए मनुष्य रूप में रहते हैं। देखिये, अर्जुन

को देवकार्य में लगे हुए देखकर मूक नाम का दानव वाराह का रूप धारण कर छल से उसे मारने की तैयारी कर रहा है। इसी समय में किरात रूप धारण करके वाण चलाकर उसका वध करूँगा। अर्जुन भी वाराह को मारने के लिए मेरे साथ ही वाण चलायेगा और उस शिकार के लिए मुझसे झगड़ा करेगा। उस समय मेरे साथ घोर संग्राम करते हुए अर्जुन के पराक्रम को आप लोग देखिएगा।"

इस प्रकार तपस्वियों को समझाकर शिवजी ने किरात का वेश धारण किया। किरात सेना भी तैयार होकर सिंह के समान गरजने लगी। शिव के आदेशानुसार वह शिकार के बहाने चारों ओर से उस ओर चल पड़ी, जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। सब ओर भगदड़ मच गई। स्वयं किरात-भेष-धारी शिवजी सबको भयभीत करते हुए अर्जुन के आश्रम के समीप जा पहुंचे। उसी समय मूक दानव वाराह के वेश में अर्जुन की ओर धावा करता हुआ आगे बढ़ रहा था। शिवजी भी किरातों के साथ उसके पीछे-पीछे चल पड़े।

५

अर्जुन ने अत्यन्त भयंकर शरीर वाले और पर्वत को खंडहर करने में समर्थ बड़े-बड़े दांतों वाले वाराह रूप धारण किये हुए उस मूक दानव को दूर से आते हुए देखा। उसे देखते ही वह तर्क-वितर्क में पड़ गए। वह सोचने लगे कि यह वाराह अपने कठोर दांतों से वृक्षों की जड़ को उखाड़ता तथा पर्वत को तोड़ता हुआ इधर ही आक्रमण करने के लिए क्यों आ रहा है ? यद्यपि इस [illegible] के

हिंसक पशुओं ने अपनी हिंसा-वृत्ति त्याग दी है, फिर भी यह मेरी ही ओर क्यों दौड़ा आ रहा है ? कहीं दैत्य या दानव लोग ही तो वाराह रूप धारण करके मुझ पर आक्रमण करना नहीं चाहते ? अवश्य ही वाराह के रूप में यह कोई दानव है, क्योंकि इसे देखकर मेरा मन क्षुब्ध हो रहा है। मेरे जैसे तपस्वी का यहां कोई शत्रु नहीं है, यह भी समझना भूल है, क्योंकि अकारण द्वेष करनेवाले दुर्जनों के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है। इसलिए यह कोई माया-रूप-धारी दानव ही जान पड़ता है। यह या तो दुर्योधन का भेजा हुआ है या अश्वसेन, जिसके बंधु-बान्धव खांडव वन में जल गए थे, बदला लेने आया है या यह भीम का कोई शत्रु है। जो कोई भी हो, मैं इस हिंसक पशु को अवश्य मारूंगा।

यह सोचकर अर्जुन गांडीव धनुष पर बाण चढ़ाकर उस वाराह को मारने के लिए तैयार हो गए। उनको तैयार देखकर शिवजी भी पिनाक धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर वाराह को मारने के लिए उसके पीछे अग्रसर हुए। शिवजी ने तुरन्त वाराह को लक्ष्य करके बाण चलाया। वाराह आहत होकर गिर पड़ा और बाण पृथ्वी में घुस गया। अर्जुन ने भी उसी समय वाराह को मारने के लिए बाण छोड़ा। वह बाण भी जीव-जंतुओं को व्यथित करता हुआ अत्यंत तेजी से वाराह के शरीर को छेदकर पार हो गया। इस प्रकार दोनों के बाण लगते ही वाराह कटे वृक्ष की भांति गिरकर धराशायी हो गया। उसके बाद अर्जुन अपने बाण को लेने के लिए उस वाराह की

ओर चल पड़े। वहां जाकर उन्होंने चिंघाड़ मार कर मरते हुए वाराह को देखा और यह भी देखा कि शिवजी का भेजा हुआ एक किरात वहां उपस्थित है।

किरात ने अर्जुन को प्रणाम करके कहा, "भगवन, आपका तप बहुत ही उज्ज्वल और कीर्ति को बढ़ाने वाला है। तपस्वी होते हुए भी आप हिमालय की भांति स्थिर तथा इन्द्र की भांति राजेन्द्र जान पड़ते हैं। आप ऐसे तपस्वियों के लिए मोक्ष भी दूर नहीं है,विजय प्राप्ति में तो कोई संदेह ही नहीं है। ऐसी स्थिति में आप मेरे स्वामी के वाण को लेने का प्रयत्न न करें, क्योंकि उनके ही वाण से इस वाराह की मृत्यु हुई है। महात्मा सदा सदाचार का पालन करते हैं। आप ही यदि उसका पालन न करेंगे तो सदाचार ही न रह जायगा। मेरी समझ में तो आप धोखे से दूसरे के वाण को लेने के लिए तैयार हो गए हैं। दूसरे के द्वारा मारे गए पशु का मारना ही आपके लिए लज्जाजनक है। यदि मेरे स्वामी इसे न मारते तो यह आपको मार डालता। मेरे स्वामी किरातपति के सिवा दूसरा कोई भी इस भयंकर वाराह को नहीं मार सकता था। इसलिए आपको किरातपति से लोहा लेना उचित नहीं है। इससे आप समूल नष्ट हो जायंगे। आप उनसे मैत्री कीजिए। यदि आप विनय के साथ याचना करेंगे तो वह वाण ही क्या, समस्त पृथ्वी को जीतकर आपको समर्पित कर सकते हैं। उनके पास से कोई भी याचक हताश होकर अभी तक नहीं लौटा है। हां, अभिमान करेंगे तो आप कुछ न ले सकेंगे। आप सज्जन हैं।

मेरे स्वामी ने आपको क्षमा कर दिया। और उनका बाण लौटा दीजिए। उनसे मित्रता करने से आपके सब मनोरथ पूरे हो जायंगे।"

किरात की ये बातें सुनकर अर्जुन आवेश में आ गए। फिर भी वह गंभीर और शांत स्वर में बोले, "आपकी वाणी बड़ी प्रिय और मधुर है। कुछ लोग केवल शब्दा-डंबर को ही अपनाते हैं। कुछ अपने हृदय के भावों को स्पष्ट करने में चतुर होते हैं और कुछ गूढ़ अर्थ वाली वार्ता में पटु। किन्तु आपमें ये सभी गुण हैं। किरात होकर भी आप अपनी बोलने की विलक्षण प्रतिभा के बल से मुझे ठगना चाहते हैं। जब आपको उचित-अनुचित का इतना ध्यान है तो आपने अपने स्वामी को क्यों नहीं रोका? हो सकता है कि उन्होंने वाराह पर बाण चलाया हो, किन्तु वह बाण कहीं इधर-उधर छिप गया होगा। आपको मुझसे बाण मांगने की आवश्यकता नहीं, बल्कि पहाड़ पर उसे ढूंढ़ना चाहिए। मैं सदाचार का पूर्णरूप से पालन करने वाला हूँ। खांडव वन को जलाते समय अग्नि ने मुझे अनगिनत बाण दिये थे। मुझे देवताओं के बाणों की कोई आवश्यकता नहीं, फिर किरात के बाण को लेकर मैं क्या करूंगा। मृग आदि तथा हिंसक पशुओं को जो मारता है वही उसका अधिकारी होता है। इस-लिए वाराह मारनेवाले को ही वाराह मिलना चाहिए। इस संबंध में आपके स्वामी को झूठा अभिमान छोड़ देना चाहिए। इस वाराह को आपके स्वामी और मैंने एक साथ ही मारा है। यह कैसे मान लिया जाय कि उनके ही

वाण से यह मरा है ? यदि मुझे बचाने के लिए उन्होंने वाराह पर वाण चलाया था तो उनका उद्देश्य पूरा हो गया। अब उन्हें वाण का लालच क्यों हो रहा है ? तुमने कहा है कि वाण मांग लीजिए। स्वाभिमानी व्यक्तियों को दूसरों से याचना करना शोभा नहीं देता। जान पड़ता है कि आपके स्वामी मुझ पर झूठा आरोप लगा रहे हैं। वह मेरे मित्र कैसे हो सकते हैं। यदि वह वाण लेने के लिए यहां आयंगे तो उनकी वही दशा होगी जो सांप की मणि लेनेवाले की होती है।"

अर्जुनकी बात सुनकर किरात शिवजीके पास पहुँचा। वह अर्जुन पर बहुत प्रसन्न थे, किन्तु फिर भी उन्होंने किरातों की सेना को आक्रमण करने का आदेश दे दिया। वह स्वयं पिनाक धनुष लेकर सेना का संचालन कर रहे थे। किरातों की सेना गरजती हुई अर्जुन की तपोभूमि की ओर बढ़ने लगी। पास पहुंच कर जब सब वीर एक-एक करके बल की परीक्षा कर चुके तब उन्होंने अर्जुन पर एक साथ ही आक्रमण कर दिया। अनेक अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार किया गया, किन्तु अर्जुन का बाल भी बांका नहीं हो सका। इसी बीच गांडीव पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, प्रलयकाल मचाने वाला रुद्ररूप धारण कर, अर्जुन किरात सेना पर टूट पड़े। उनकी ओजपूर्ण वाणवर्षा से किरात सेना इधर-उधर भागने तथा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरने लगी। उनकी वीरता देखकर किरात बड़े आश्चर्य में पड़ गए और उनके वाणों से जंगल के समस्त जीव भयभीत हो गए। देखते-देखते शिव जी की सेना अपने अस्त्र-शस्त्र छोडकर भाग

खड़ी हुई। वह घबराहट के मारे अपने स्वामी किरात-पति की ओर भी नहीं देख सकी। कार्तिकेय को पराजित करनेवाले अर्जुन भयभीत सैनिकों के पीछे चल पड़े। कार्तिकेय ने जब देखा कि किरात सैनिक भागे जा रहे हैं तब वह उन्हें आश्वासन देते हुए बोले, "संग्राम की भूमि को छोड़कर मत भागो। आपके लिए खेल और युद्ध समान है। आपने राक्षसों को पराजित किया है। मनुष्यों की तरह भागना आपको शोभा नहीं देता। इसके पास तो रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल सेना तक नहीं है, फिर तुम लोग भयभीत होकर क्यों भाग रहे हो? प्राचीनकाल में असुरों के साथ युद्ध करके तुम लोगों ने जो यश प्राप्त किया है वह भी आज तुमने खो दिया।"

इस प्रकार जब कार्तिकेय ने सेना को रोका तो शिवजी भी उसको "मत भागो", "मत भागो" कह कर आश्वासन देने लगे। इस आश्वासन से सेना में जीवन लौट आया। इसके बाद अर्जुन और किरातपति के बीच तुमुल-युद्ध होने लगा। अर्जुन के द्वारा चलाये हुए बाणों को किरातपति ने बड़ी चतुराई से काट डाला। अर्जुन ने भी शिवजी के बाणों का साहस तथा वीरतापूर्वक सामना किया। आकाश उनके बाणों से भर गया। दोनों वीर एक-दूसरे के बाण काटने लगे। शिवजी हृदय में अर्जुन की वीरता देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे, इसलिए उन्होंने ऐसे मर्मभेदी बाणों का प्रहार नहीं किया, जिनसे उनका अहित होने की संभावना थी। अर्जुन शिवजी के बाणों से आहत होकर भी तनिक नहीं घबराए। दोनों ओर का

रोमांचकारी युद्ध देखकर महर्षि, देव तथा किरात सब रोमांचित हो उठे।

: ६ :

तपस्वी अर्जुन किरातपति का अद्भुत संग्राम देखकर क्रोध और आश्चर्य से भर उठे। वह सोचने लगे—आश्चर्य है कि इस संग्राम में मतवाले हाथी भी नहीं हैं। अनेक ध्वजाओं से सजे हुए रथ भी नहीं दिखाई पड़ते। वेग से वायु की भांति उड़नेवाले घोड़ों का भी कहीं पता नहीं है। रणबांकुरे लड़ाकू वीरों की सेना भी कहीं नहीं जान पड़ती। उत्साहवर्धक रणभेरी, दुंदुभि तथा नगाड़ों की तुमुल ध्वनि का भी कहीं आभास नहीं होता। रुधिर की नदियां भी नहीं बह रही हैं। फिर क्यों इस किरात-युद्ध में मेरी शक्ति काम नहीं दे रही है? क्या यह कोई माया है या मेरी बुद्धि पर ही तो पत्थर नहीं पड़ गए हैं? या मैं वह अर्जुन नहीं हूं, क्योंकि मेरे गांडीव धनुष से निकले बाण जिस प्रकार पहले पराक्रम दिखाते थे वैसा इस समय नहीं दिखा रहे। वास्तव में यह महान योद्धा किरात नहीं जान पड़ता। यह बाण चलाने और फिर उसे समेट लेने में अद्भुत और कुशल रणनायक जान पड़ता है। इसका शरीर अद्भुत है। इसके मुख पर कोई विकार नहीं है। इसकी वीरता को भीष्म तथा द्रोणाचार्य जैसे युद्ध-विद्या के आचार्यों से भी बढ़कर कह सकते हैं। अवश्य ही यह कोई देवता या दानव है। इसलिए इसके पराक्रम को दिव्यास्त्र द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है।

यह सोचकर अर्जुन ने गांडीव पर प्रस्वापन नामक

अस्त्र चढ़ाया। उसके प्रभाव से सारी शत्रु सेना घोर अंधकार में पड़ गई और भयभीत होकर मूर्च्छित हो गई। कितने ही वीरों के हाथों से तलवारें पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उस समय किरात वेश धारण किये हुए शिव के ललाट से तेज की लपटें निकलने लगीं। उसने अन्धकार को दूर कर दिया और किरात-सैनिक मूर्च्छा त्याग फिर युद्ध करने को तैयार हो गए। दिशाएं जगमगाने लगीं। सूर्य की किरणें चमकने लगीं। तब अर्जुन ने प्रस्वापन अस्त्र को विफल जानकर नागपाश अस्त्र को चढ़ाया। नागपाश के प्रभाव से चारों ओर विषधर सांप जिह्वा लपलपाते हुए फैल गए और आकाश में विचरने वाले पक्षी इधर-उधर भाग गए। भगवान शंकर ने नागपाश अस्त्र के प्रभाव को दूर करने के लिए गरुड़ास्त्र का प्रयोग किया। समस्त आकाश-मंडल में गरुड़-ही-गरुड़ दिखाई देने लगे। गरुड़ों के उड़ने तथा उनके परों के प्रभाव से आंधी-सी आ गई, जिससे वृक्ष जड़ से उखड़ कर आकाश में उड़ने लगे। देखते-देखते गरुड़ों ने सर्पों को नष्ट कर डाला। अर्जुन ने जब देखा कि नागास्त्र का भी शत्रु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उन्होंने आग्नेय-अस्त्र का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। आग की भयंकर लपटों से चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। ऐसा जान पड़ने लगा जैसे यह महाअग्नि थोड़ी ही देर में विश्व को जला कर राख कर देगी। ऐसी भयंकर अग्नि देखकर भगवान शंकर ने उसे शांत करने के लिए तत्काल वरुणास्त्र का प्रयोग प्रारंभ किया। उससे उसी समय आकाश-मंडल में बादलों की

काली घटा छा गई, और मूसलाधार वर्षा होने लगी। थोड़ी देर में आग की लपटें आप-से-आप शांत हो गईं। अग्नि के शांत होने के बाद आकाश तथा पृथ्वी तल हरा-भरा दिखाई देने लगा।

इस प्रकार शत्रुओं को पराजित करने के लिए अर्जुन ने जिन-जिन अमोघ अस्त्रों का प्रयोग किया, भगवान शंकर ने उनके विरोधी अस्त्रों का प्रयोग कर उन्हें विफल बना दिया। अर्जुन हताश-से होने लगे। उनके दिव्यास्त्र समाप्त हो गए, किन्तु वह शत्रु पर विजय नहीं प्राप्त कर सके। फिर भी धैर्य धारण कर वह युद्धभूमि में डटे रहे और अपने स्वाभाविक पराक्रम से शत्रुओं पर विजयी होने के लिए प्रयत्न करने लगे। उनकी भौंहें आवेश और क्रोध में तन गईं। धनुष तान कर बाणों की वर्षा करते हुए और सैनिकों को ललकारते हुए अर्जुन का मुखमंडल चमक उठा। किन्तु महेश्वर पर इसका कुछ प्रभाव नहीं हुआ। उनके सारे बाण विफल हो गए। यद्यपि भगवान शंकर अर्जुन की ढिठाई देखकर कुछ अप्रसन्न हुए, किन्तु मन-ही-मन उनके साहस की प्रशंसा करते हुए सोचने लगे—यद्यपि यह शत्रु से पराजित हो गया है, फिर भी अपने पराक्रम को बारम्बार प्रकट करता हुआ पीछे हटने को कदापि तैयार नहीं है। वह प्रत्येक दशा में शत्रु को पराजित करने का यत्न कर रहा है। अमोघ अस्त्र अब इसके पास नहीं है, फिर भी साधारण बाणों से ही पराक्रम दिखा रहा है।

महेश्वर इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए अर्जुन से

स्वयं युद्ध करने को तैयार हुए। दोनों ओर से फिर घोर संग्राम होने लगा। अर्जुन के बाणों से आहत होकर शत्रु-सेना भागने लगी। सेना की यह दुर्दशा देखकर किरातपति क्षुब्ध हो उठे और साक्षात यमराज की भांति भयंकर रूप धारण कर धनुष की टंकार करने लगे। अर्जुन के चलाए हुए समस्त बाणों को शिवजी ने बीच ही में काट डाला। यह देख कर अर्जुन घबरा गए। लेकिन चैतन्य होकर वह फिर सेना पर बाण-वर्षा करने लगे। शंकर ने भी कुछ क्रुद्ध होकर अर्जुन के बाणों को फिर नष्ट कर दिया। उनके पास अब एक भी बाण नहीं बचा। शिव के मर्मघाती बाणों से अर्जुन अत्यन्त हताश और व्याकुल हो उठे। उनका कवच भी महेश्वर की माया से नष्टभ्रष्ट हो गया और उनके शरीर से अद्‌भुत कांति प्रकट होने लगी। उनके शरीर से रुधिर की धारा बह रही थी। फिर भी वह टूटे धनुष से शिवजी से बराबर लड़ते रहे और तनिक भी पीछे नहीं हटे। लेकिन जब वह भी नष्ट हो गया तो वह तलवार लेकर लड़ने लगे, किन्तु शिवजी के प्रभाव से वह भी अर्जुन के हाथ से छूट कर गिर पड़ी। अर्जुन खाली हाथ हो गए, लेकिन इस दुर्दशा पर भी उन्हें क्रोध न आया। उन्होंने फिर पत्थरों की वर्षा करनी प्रारंभ की, किन्तु शिवजी ने उसका भी निवारण कर दिया। अन्त में अर्जुन शिव से बाहुयुद्ध करने का निश्चय करके उनकी ओर दौड़ पड़े।

: ७ :

शिव के सामने पहुंच कर अर्जुन ने उनके वक्षस्थल

पर अपनी भुजाओं से प्रहार किया। शिवजी ने भी निषंग-सहित धनुष को दूर फेंक कर लौह मुग्दर के समान अपनी मुष्टियों से अर्जुन को मारा। पर्वत की कंदराएं मुष्टि-प्रहारों की ध्वनि से गूंज उठीं। शंकर की छाती पर घावों से रुधिर बह रहा था। वह सन्ध्या के सूर्य की तरह शोभित थे। उनकी छाती पहाड़ की तरह थी। अर्जुन की मुष्टियां जब उससे टकराईं तो उनमें दर्द होने लगा। शंकर ने फिर मुष्टि-प्रहार किया तो अर्जुन के नेत्रों के सामने अंधकार छा गया और वह मदोन्मत्त की भांति लड़खड़ाने लगे। इससे उनकी क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी। उन्होंने बड़े वेग से समीप जाकर, बलपूर्वक अपनी दोनों भुजाओं से शंकर की दोनों भुजाएं पकड़ लीं। शंकर और अर्जुन दोनों रणबांकुरे थे। उन्हें अपनी-अपनी भुजाओं पर अभिमान था। दोनों में परस्पर पर्वत को कंपाने वाला मल्लयुद्ध होने लगा।

मल्लयुद्ध के समय किरात सेना के सैनिकों को यह निर्णय करना बड़ा कठिन हो गया कि कौन अर्जुन है और कौन शंकर? या नीचे अर्जुन है अथवा भगवान शंकर? इन्द्रकील पर्वत भी शंकर तथा अर्जुन का भार सहन करने में असमर्थ हो गया। वह विचलित होकर हिलने-डुलने लगा। दोनों मल्ल-योद्धा हाथ-पैर के बंधन से मुक्त होकर भुजाओं पर ताल ठोंकते हुए उछल रहे थे। उनके पदाघातों से नदियों के तट गहराने लगे। भगवान शंकर ने वेगपूर्वक उछल कर ज्योंही अर्जुन को फिर पटकना चाहा, अर्जुन ने अपनी दोनों भुजाओं से

उनके चरण पकड़ लिये। आशुतोष उन्हें उठाकर पृथ्वी पर फेंकना चाहते थे, लेकिन चरण पकड़ने से उनका हृदय गद्गद् हो गया। उन्होंने अर्जुन को तत्काल गले से लगा लिया।

इसके बाद भगवान आशुतोष किरात वेश त्याग कर अपने असली रूप में प्रकट हो गए। यह देखकर अर्जुन गद्गद् हो उठे। उन्होंने साक्षात भगवान शिव को प्रणाम किया। तत्काल शंकर की आज्ञा से वह अपने अपूर्व वेश में, गांडीव, कवच तथा चर्म आदि सहित, सुशोभित होने लगे। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। मेघों ने जलवृष्टि प्रारंभ कर दी। रंग-बिरंगे मंदार पुष्पों की वर्षा होने लगी। आकाश निर्मल हो गया। बिना बजाए नक्कारों की गंभीर ध्वनि सर्वत्र आकाश में गूंज उठी। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि अष्ट लोकपाल रत्नजटित विमानों पर बैठकर आकाश में विचरण करते हुए शिव की स्तुति करने तथा अर्जुन को आशीर्वाद देने लगे। शिव के गण भी अर्जुन की प्रशंसा करने लगे।

अपनी तपस्या को पूर्ण समझ कर अर्जुन बड़े सन्तुष्ट हुए और भगवान की स्तुति करने लगे, "भगवन, लोग जबतक आपके सामने नतमस्तक नहीं होते तबतक उन पर अनेक प्रकार की विपत्तियां आती हैं। बिना आपकी शरण में आये न तो अनिष्ट की निवृत्ति होती है और न इष्ट की प्राप्ति। लोग दान आदि कर्म करते हुए मुक्ति-प्राप्ति के लिए आपकी आराधना करते हैं, किन्तु आप निःस्वार्थ भाव से उनकी सेवा का फल प्रदान करते हैं, यह

केवल आपकी दया है। इसमें आपका कुछ भी स्वार्थ नहीं है। मनुष्य भक्ति के साथ आपका स्मरण करके भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है। आपका ओढ़ने का वस्त्र रोमयुक्त गजचर्म है, मणिधर भीषण सर्प आपका कटि-भूषण अर्थात् करधनी है। आप मनुष्य के कपालों की माला धारण करते हैं। चिता की राख आपके मस्तक पर लगी रहती है। ये वस्तुएँ और चन्द्रमा की कला सब समान शोभा पाती हैं। वास्तव में आपकी कोई शारीरिक रूपरेखा नहीं है, परन्तु आप न जाने किस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों प्रकार का शरीर धारण किये हुए हैं। विरुद्ध वेश-भूषा होने पर भी आप ही में रम-णीयता पाई जाती है। इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है ? हे देव, आप चराचर प्राणियों के संहारकारी हैं। आपकी कृपा से संपूर्ण संसार जीवित है। आप पंच महाभूतों के कारण परमाणु के भी कारण हैं। हे नाथ, अब मुझे अभीष्ट सिद्धि प्रदान कीजिए। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए। आप शरणागत के अपराध नहीं देखते। आज की पावन घड़ी की बाट मैं वर्षों से देख रहा था। भगवन, आप मुझे ऐसा अमोघ अस्त्र प्रदान कीजिए, जिसका प्रयोग करके मैं बड़े भाई युधिष्ठिर के शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकूं।"

आशुतोष शिव ने इस प्रकार स्तुति करते हुए अर्जुन को सान्त्वना दी और शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाला पाशुपात नामक महान अस्त्र प्रदान किया। साथ ही धनुर्वेद की शिक्षा भी देने का प्रबन्ध किया। धनुर्वेद

माथ [illegible] में वहां उपस्थित हुए। उन्होंने शिव की प्रदक्षिणा की और अर्जुन के पास चले गए। अर्जुन की अभिलाषाएं पूर्ण हो गईं। धनुर्वेद के जाने के बाद इन्द्र आदि देवताओं ने भी आकर विजय-प्राप्ति के कई अमोघ अस्त्र अर्जुन को प्रदान किये और उसकी स्तुति करने लगे। शंकर भगवान ने कहा, "जाओ, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो।"

इसके बाद शंकर के चरणों में प्रणाम करके और देवताओं की प्रशंसा प्राप्त करते हुए अर्जुन घर की ओर लौट चले। वहां पहुंच कर उन्होंने अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया।

●

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१४

दण्डी-कृत

दशकुमार-चरित

भाग १

●

श्री कृष्णाचार्य

द्वारा

कथासार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

सम्पादित

●

१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५५
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें और इस कार्य को संस्कृत-प्रेमी श्री हर[illegible]जी से तभी प्रारम्भ भी करा दिया था। उन्होंने कई ग्रन्थों का कथासार हमारे लिए कर दिया था। हिन्दी के पाठकों की सेवा में उस तथा कुछ अन्य सामग्री को सम्पादित करके उपस्थित किया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'दशकुमार-चरित' के लेखक महाकवि दण्डी का नाम संस्कृत साहित्य में बड़े आदर से लिया जाता है फिर भी उनके बारे में हमारा ज्ञान बहुत ही सीमित है। उनके समय के बारे में बहुत मतभेद है। अन्तिम खोजों के आधार पर वह ७०० ई० से पहले ही हुए होंगे। विद्वानों का मत है कि उनका काल पांचवीं-छठी सदी होना चाहिए।

'दशकुमार-चरित' का जो रूप आज मिलता है वह पूरा दण्डी का लिखा हुआ नहीं है। उन्होंने उसे अधूरा छोड़ दिया था। बाद में किन्हीं दो लेखकों ने 'पूर्व पीठिका' और 'उत्तर पीठिका' लिख कर उसे पूरा किया। इन पीठिकाओं और दण्डी-चरित-कथा में काफी अन्तर है। इस कथासार में भी यह उलझन पाठकों को मिलेगी। उदाहरण के लिए आरम्भ में प्रमति को सुमति का पुत्र कहा है, पर जब प्रमति अपनी कथा कहता है तो वह अपने को कामपाल व नागवल्ली का पुत्र बताता है। इस ग्रंथ में कवि ने तत्कालीन समाज के निचले स्तर का चरित्र खींचा है। जादूगर, चोर, जुआरी, पाखण्डी, साधु, वेश्याएं, कामुक राजकुमार व राजकुमारियां, धोखेबाज व्यापारी और सरकारी कर्मचारी सभी इसमें हैं। तत्कालीन मूढ़ विश्वासों का उल्लेख भी हुआ है। ब्राह्मण, जैन, बौद्ध सभी पर उसने चोट की है। कवि शायद इस गन्दी समाज-व्यवस्था का भण्डाफोड़ करके आदर्श समाज की कल्पना हमारे सामने रखना चाहता था। विदर्भ के राजा पुण्यवर्मन् का चरित्र इस बात का साक्षी है। कुछ भी हो चरित्र-चित्रण बहुत सशक्त और प्यारा है। शैली मनोहारी और ओजभरी है। भाषा सीधी सादी है। संस्कृत गद्य पर कवि का पूर्ण अधिकार है। इसलिए प्रकृति व पुरुष सभी के वर्णन बड़े अनूठे बने हैं। दण्डी अपने पद-लालित्य के लिए ही प्रसिद्ध हैं।

पूर्वपीठिका में छः उच्छ्वास हैं, जिनमें प्रधान पात्र राजवाहन और अवन्तिसुन्दरी के विवाह तथा सोमदत्त व पुष्पोद्भव की आपबीती का वर्णन है। 'दशकुमारचरित' में सात उच्छ्वास हैं, जिनमें शेष सात कुमारों की आपबीती है। अन्त में छोटी-सी उत्तरपीठिका है जिसे कथा का उपसंहार कह सकते हैं। पाठक इस अपूर्व कथा का पूरा रस ले सकें, इसलिए हम इसे दो भागों में प्रस्तुत कर रहे हैं।

—सम्पादक

दशकुमार-च रेत

भाग १

१. जन्म और ।ाचा

पुराने समय में मगध देश में पुष्पपुरी या पाटलि-पुत्र नाम की एक मुन्दर और लम्बी-चौड़ी नगरी थी। इम नगरी में राजहंस नाम के एक राजा राज करते थे। ·ा और रूप के कारण राजहंस का बड़ा नाम फैला था। वह बड़े दानी भी थे और उनके राज में हमेशा यज्ञ आदि धर्म के काम होते रहते थे। राजहंस की पत्नी का नाम वमुमती था। वह भी बहुत मुन्दर और बुद्धिमती थी। इम ाा गजा के तीन मंत्री थे; धर्मपाल, पद्मोद्भव और मितवर्मा। तीनों मंत्री राज-काज और पढ़ने-लिखने में बड़े चतुर थे। कठिन-से-कठिन कामों को वे बड़े धीरज और विवेक से पूरा कर लेते थे। इन गुणों के कारण लोग इन्हें देवगुरु वृहस्पति मे भी बड़ा मानने लगे थे।

इनके कई पुत्र थे। मितवर्मा के पुत्रों का नाम था मुमति और सत्यवर्मा। पद्मोद्भव के मुश्रुत और रत्नोद्-भव नाम के दो पुत्र थे तथा धर्मपाल के तीन बेटे थे मुमंत्र, मुमित्र और कामपाल। इनमें सत्यवर्मा की रुचि धर्म की ओर थी। वह तीर्थयात्रा पर निकल गया। का मपाल

का स्वभाव बड़ा खराब था। वह बुरे आदमियों की सोहबत में रहने लगा और सबके समझाने पर भी वह दुनिया की सैर करने चला गया। रत्नोद्भव व्यापार के काम में बड़ा चतुर था। वह समुद्र-पार चला गया। दूसरे पुत्र अपने काम में अच्छे निकले। तीनों बूढ़े मंत्री जब मर गये तब वे लोग उनके स्थान पर काम-काज करने लगे।

एक बार मगध के राजा राजहंस ने मालवा पर चढ़ाई की। मालवा के राजा मानसार भी बड़े मान वाले थे, पर इस लड़ाई में वह हार गये और उनकी सारी सेना मारी गई। राजा भी पकड़ लिये गये। बाद में मगध के राजा ने दया करके उन्हें छोड़ दिया और उनका राज भी लौटा दिया। किन्तु कुछ समय बाद राजहंस को पता लगा कि मानसार ने तपस्या करके भगवान् शंकर से एक ऐसी गदा प्राप्त कर ली है, जिसका वार कभी खाली नहीं जाता। इस गदा को पाकर वह बड़े घमण्डी हो गये हैं और मगध पर हमला करने को तैयार हैं। यह सुनकर राजा ने मंत्रियों को सलाह के लिए बुलाया। मंत्रियों ने कहा कि राजा मानसार के पास शिवजी की गदा है इसलिए उससे लड़ना ठीक नहीं होगा। किले में बैठकर अपना बचाव ही करना चाहिए। लेकिन राजा न माने। बोले, "मैं युद्ध न करना किसी भी तरह ठीक नहीं समझता।" उसने मानसार का सामना करने का निश्चय किया। उधर मालवा की सेना भी मगधराज में घुस आई। मागधों और मालवों का यह

युद्ध बहुत भयंकर था। इस युद्ध को देखने के लिए, मनुष्य की कौन कहे, देवता भी आये और देख-देख कर अचरज करने लगे।

राजहंस युद्ध करने में बड़े कुशल थे। उनकी बराबरी इन्द्र से की जाती थी; लेकिन मालवपति मानसार ने इस बात की कोई परवा न की और अवसर पाकर उसने राजहंस पर शिवजी की दी हुई गदा से हमला किया। राजहंस इसके लिए तैयार थे। उन्होंने अपने तेज बाणों से उसे बीच ही में काट डाला। फिर भी उस गदा से उनके रथ का सारथी मारा गया। वह बेसुध होकर रथ में गिर पड़े और राम छूटे हुए घोड़े रथ को लेकर जंगलों में भाग गये। इस प्रकार मालवा के राजा की जीत हुई और उन्होंने विशाल मगध-राज पर कब्जा करके पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया।

महारानी पहले ही विन्ध्याचल के जंगलों में भेज दी गई थी। राजा के रणभूमि से चले जाने के बाद उनके मंत्री कुछ देर तो लड़े, पर वे भी हार गये और किसी तरह समाचार देने के लिए महारानी वसुमती के पास पहुंचे। अपनी सारी सेना नष्ट हो जाने और मगधराज के लापता होने की बात सुनकर महारानी बड़ी दुखी हुई। वह भी मरने को तैयार हो गई, परन्तु मंत्रियों के समझाने पर उस समय उन्हें अपना विचार छोड़ना पड़ा। महाराज का किसी को ठीक-ठीक पता भी तो नहीं था। शायद वह जीवित ही हों। फिर उनके पुत्र होनेवाला था।

इस तरह उस समय तो वह चुप हो गई, पर जब रात होने पर सब सो गये तो उनका दुख फिर उमड़ पड़ा। इस बार वह अपने को नहीं सम्भाल सकी और चुपचाप उठकर अकेले एक ओर चल दी। अचानक वह उस जगह आ पहुंची, जहां राजा राजहंस के युद्ध के मैदान से भागे हुए रथ के घोड़े आकर टिके थे। वह मरने के लिए तैयार होकर आई थी। एक पेड़ की डाल पर उन्होंने अपना दुपट्टा बांधकर फांसी का फन्दा तैयार किया और आखिरी बार महाराज की याद करके उन्हें पुकारने लगी। उनके इस करुण विलाप को सुनकर जंगल गूंज उठा। महाराज का रथ वहां से दूर नहीं था। रात की शीतलता और शान्ति के कारण उन्हें धीरे-धीरे होश आ रहा था। उन्होंने रानी का करुण विलाप सुना। वह तुरन्त उस आवाज को पहचान गये और धीमे स्वर में उसे पुकारने लगे। रानी ने वह पुकार सुनी तो हैरान होकर उधर दौड़ी। चांदनी रात थी। महाराज को पहचानते उसे देर न लगी। कुछ देर तो इस अपार खुशी के कारण वह बोल न सकी। फिर आवाज देकर उन्होंने पुरोहित और मंत्रियों को भी वहां बुला लिया। वे सब महाराज को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त उनके घावों की मरहम-पट्टी की।

कुछ दिन में वह बिलकुल ठीक हो गये, पर हार हो जाने के कारण वह बड़े दुखी रहते थे। एक दिन, आगे क्या और कैसे करना चाहिए, इस बारे में सलाह

करने वह महर्षि वामदेव के पास गये। इन्हीं महर्षि ने राजा को बताया कि उनके एक अत्यन्त प्रतिभावान पुत्र उत्पन्न होगा। वह वैरी का नाश करेगा। उसकी राह देखनी चाहिए।

ऐसा ही किया गया और समय पाकर राजहंस के घर सचमुच शुभ लक्षणों वाले पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम राजवाहन रखा गया। राजवाहन के साथ-साथ मंत्रियों के भी पुत्र हुए। मंत्री सुमति के प्रमति, सुमंत्र के मित्रगुप्त, सुमित्र के मंत्रगुप्त और सुश्रुत के लड़के का नाम विश्रुत रखा गया। कुमार राजवाहन और ये सब मंत्रिपुत्र, साथ-साथ खेलते हुए धीरे-धीरे बड़े होने लगे।

मिथिलापति प्रहारवर्मा महाराज राजहंस के बड़े मित्र थे। वह भी उनकी ओर से मालवा के राजा से लड़े थे और हार गए थे। यही नहीं, जब वह अपने देश को लौट रहे थे तो उन्हें भीलों ने लूट लिया। उनके दो जुड़वां बच्चे थे। वे धाय के पास थे। इस भाग-दौड़ में वह पीछे रह गई। वहीं पर एक शेर ने उस पर हमला किया। एक बच्चा धाय के पास था, दूसरा उसकी बेटी के पास। इस हमले में धाय सबसे बिछुड़ गई। उसे बस इतना याद था कि बच्चा उसके हाथ से छूटकर एक मरी हुई गाय के पेट में जा गिरा था और जब शेर उसे खाने को लपका तो किसी ने तीर मारा और शेर मर गया। बच्चे को शायद भील उठा ले गये। दूसरे पुत्र का उसे कुछ पता नहीं था।

एक ब्राह्मण ने जब धाय की यह कथा सुनी तो वह बच्चे को खोजने चला। बच्चा भीलों के पास था। किसी तरह वहाँ से निकालकर वह उसे महाराज राजहंस को पालन-पोषण करने को दे गया। राजा ने दूसरे मंत्री-पुत्रों की तरह उसके पालन-पोषण की व्यवस्था कर दी। उसका नाम उपहारवर्मा रखा गया। दूसरा राजकुमार जो धाय की बेटी के पास था वह राजा को एक भीलनी के पास मिला। उसे कुछ धन देकर वह उस बच्चे को भी ले आये। उसका नाम उन्होंने अपहारवर्मा रखा और पालन-पोषण के लिए उसे रानी को सौंप दिया।

इसी तरह एक दिन मुनि वामदेव के सोमदेव-शर्मा नाम के शिष्य महाराज राजहंस के पास एक और बालक लेकर आये। यह सुश्रुत के छोटे भाई रत्नोद्भव का लड़का था। रत्नोद्भव घूमते हुए कालभवन टापू पर पहुँच गए थे। वहाँ बालगुप्त नाम के बड़े धनवान सौदागर रहते थे। उनकी लड़की का नाम सुवृत्ता था। इसी से रत्नोद्भव का विवाह हुआ। व्यापार में वह चतुर था। बहुत दिन तक खूब धन कमाया। फिर उसे अपने देश और भाइयों की याद आई। वह पत्नी-सहित जहाज में बैठकर चल दिया। मार्ग में जहाज डूब गया। सुवृत्ता धाय की मदद से किसी तरह एक किनारे पर जा लगी। कुछ दिन बाद उसी जंगल में उसने एक लड़के को जन्म दिया। यह वही बच्चा था जो शेर, हाथी और बन्दर के चंगुल में फँसकर भी

बच गया था, लेकिन उसकी मां का कुछ पता नहीं था। न रत्नोद्भव का ही कुछ हाल मालूम था। महाराज ने इस बच्चे को भी रख लिया। उन्होंने उसका नाम पुष्पोद्भव रखा और सुश्रुत को बुलाकर कहा, "देखो, यह तुम्हारे भाई रत्नोद्भव का बच्चा है। इसकी खूब अच्छी तरह देखभाल करो।"

कुछ दिन बाद एक रात को रानी वसुमति के पास एक यक्षिणी आई। वह बहुत सुन्दर थी। उसने कामदेव के समान एक सुन्दर बच्चा रानी को दिया। बोली, "यह तुम्हारे मंत्री धर्मपाल के पुत्र कामपाल का बेटा है। मेरा नाम तारावली है। मैं मणिभद्र की लड़की हूं। आप इसे लें और इसका पालन करें। आपका पुत्र चक्रवर्ती राजा होगा और यह उसकी सेवा करेगा।" यह कहकर वह रुकी नहीं, चली गई। रानी ने सब कथा राजा को सुनाई। राजा बड़े हैरान हुए, पर उन्होंने सुमित्र को बुलाकर बच्चा उसे सौंप दिया। इस लड़के का नाम अर्थपाल रखा गया।

इसके बाद एक दिन एक और विचित्र घटना घटी। ऋषि वामदेव का एक छात्र एक बालक को लेकर महाराज के सामने आया। महाराज से उसने निवेदन किया कि यह बालक आपके मंत्री सितवर्मा के पुत्र सत्यवर्मा की सन्तान है। सत्यवर्मा तीर्थ करते हुए अग्रहार नाम के एक गांव में जा पहुंचे थे। वहां उसने काली नाम की एक ब्राह्मण पुत्री से विवाह कर लिया था। जब उसके कोई पुत्र नहीं हुआ तो सत्यवर्मा ने

काली की छोटी बहन गोरी से शादी करली। इस गोरी के एक पुत्र हुआ, परन्तु डाह के कारण बड़ी बहन ने एक दिन गोरी के बच्चे को धाय समेत नदी में धकेल दिया। धाय बहते-बहते एक पेड़ के सहारे किनारे पर जा लगी। पेड़ पर एक सांप था। उसने धाय को काट खाया। लेकिन उसके मरने से पहले वह छात्र वहां पहुंच गया और बच्चे को ले आया। यह कथा सुनकर महाराज को सत्यवर्मा की बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने बच्चे को ले लिया और उसका नाम सोमदत्त रखा गया। इस बालक को महाराज ने सत्यवर्मा के भाई सुमति को बुलाकर सौंप दिया।

इस प्रकार महाराज के मंत्रियों और उनके भाइयों के पुत्रों की एक अच्छी मण्डली जुड़ गई। ये सब साथ-साथ खेलते थे। सबने ऊंची शिक्षा प्राप्त की। सब लिपियां सीखीं। सब वेद, शास्त्र, इतिहास, काव्य, नाटक आदि पढ़े। सब तरह की नीतियां भी उन्होंने सीखीं। गाने-बजाने में प्रवीण हो गए। जादू-टोने के कौशल भी उन्होंने सीखे। घुड़सवारी और शस्त्रविद्या का अभ्यास उन्हें कराया गया। इन सबके साथ उन्हें चोरों की विद्या, जुए में कुशलता आदि तरह-तरह की कपट-कलाओं का अभ्यास भी कराया गया।

धीरे-धीरे वे सब युवा हुए। वे सब काम उत्साह और उमंग से करते थे। आलस उन्हें छू भी नहीं गया था। यह देखकर महाराज को बड़ी खुशी हुई और उन्हें विश्वास हो गया कि अब उनके बैरी उनका कुछ

नहीं बिगाड़ सकते।

२. राजवाहन की पाताल-यात्रा

एक दिन किसी काम से ये सब राजकुमार महाराज को घेरे खड़े थे। इसी समय ऋषि वामदेव वहां आये। राजा ने बड़े आदर और भक्ति से उनका स्वागत किया। कुमारों ने भी उन्हें प्रणाम किया। मुनि आशीर्वाद देकर कहने लगे, "हे महाराज, आपके कुमार और उनकी इस मित्र-मंडली को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ये सब कुमार सुशिक्षित, बलवान और सुशील हैं। ये आपकी इच्छा पूरी करेंगे। मेरे विचार से अब अच्छा समय है। राजवाहन को अपने मंत्रियों को लेकर दिग्विजय आरम्भ कर देनी चाहिए। ये लोग सब तरह के कष्ट और कठिनाइयां सहन करने तथा बड़े काम पूरे करने के योग्य हो चुके हैं।"

मुनि की यह बात सुनकर राजा ने दिग्विजय की आज्ञा दे दी। बस फिर तो तुरन्त युद्ध की तैयारियां होने लगीं। होने क्या लगीं, पलक मारते ही हवा की-सी तेजी और फुर्ती के साथ, सब काम पूरा हो गया। उनकी तैयारी देखकर राजहंस को बड़ा भरोसा हुआ और उन्होंने सबको समझा-बुझाकर विदा दी। वे लोग रास्ते में तरह-तरह की घटनाएं देखते हुए आगे बढ़ने लगे। एक स्थान पर राजवाहन को एक ऐसा मनुष्य मिला जो लोहे-जैसा कठोर और काला था। उसके शरीर पर हथियार चलाने के निशानों के साथ-साथ जनेऊ भी लटक

रहा था। समझ में नहीं आता था कि वह क्षत्रिय था या ब्राह्मण! इस रहस्यमय आदमी ने राजकुमार को अपनी रामकहानी सुनाते हुए कहा, "मैं उस ब्राह्मण-वंश का हूं जो भीलों के साथ रहते हैं और अपना कुलधर्म भूल चुके हैं। मैं भी भीलों के साथ लोगों को लूटा करता था। लेकिन एक बार एक ब्राह्मण पर मुझे दया आ गई। मैंने भीलों का विरोध किया, लेकिन वे नहीं माने। लड़ाई में उन्होंने मुझे मार डाला।

"ब्राह्मण की रक्षा में प्राण देने के कारण यमराज ने मेरी बुद्धि बदलकर मुझे फिर धरती पर भेज दिया। मैं फिर अपनी पुरानी देह में लौट आया। यहां एक और ब्राह्मण ने मेरी देखभाल की। मुझे शास्त्रों की शिक्षा दी। मैं सुधर गया।" इस ब्राह्मण का नाम मातंग था। इसने राजकुमार को अकेले में ले जाकर बताया कि कैसे शिवजी ने उसे दर्शन देकर पाताल जाने की आज्ञा दी है। वह पाताल का राजा बनेगा, और इस काम में जो राजकुमार मदद करेगा, वह आजकल में आने वाला है।

यह कहकर मातंग ने राजकुमार से सहायता की प्रार्थना की। राजकुमार सारी कथा सुनकर शायद दैव-गति समझ गये और सहायता के लिए तैयार हो गये।

रात को जब सब सो गये तो राजकुमार चुपचाप मातंग के साथ चल दिये। वह राजवाहन को शिव के बताये मार्ग से पातालपुरी ले गया। वहाँ जाकर मातंग ने एक यज्ञ किया और अपना शरीर अग्नि में डाल दिया। राजकुमार पहले तो यह सब देखकर घबराये;

किन्तु थोड़ी देर में उ.ोंने देखा कि मातंग दिव्य देह धारण कर कुंड के बाहर निकल आया है। उसी ममय एक बड़ी रूपवती कन्या अपनी सहेलियों के साथ वहाँ आई। उस कन्या ने एक हीरा मातंग को भेंट किया और कहने लगी, "हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, मैं असुरों के राजा की लड़की कालिन्दी हूँ। मेरे पिता देवताओं से युद्ध में लड़कर मारे गए। मैं बहुत दुखी हुई तो एक महात्मा ने मुझे ढाढ़स बँधाया और कहा कि आपके ममान लक्षणों वाला एक अजनबी पुरुष पाताल-लोक में आयगा और यहाँ का राजा बनेगा। वही पुरुष आपका पति भी बनेगा। सो अब आप यहाँ का राज संभालिये और मुझे भी चरणों की दासी बनाइये।" यह सुनकर मातंग ने राजवाहन की आज्ञा से कन्या से विधिपूर्वक विवाह कर लिया। और इसके बाद बड़े आनन्द से वहाँ का राज-काज चलाने लगा। राजवाहन को भी घर की याद आई। कालिन्दी ने मातंग को भूख-प्यास मिटानेवाली एक मणि भेंट में दी थी। वही मणि मातंग ने राजकुमार को दे दी और बड़े प्रेम से उसे विदा किया।

अपने स्थान पर आकर राजवाहन ने देखा कि वहाँ न तो उनकी मित्रमंडली है, न सेना। वे सब उनके गायब हो जाने के बाद उन्हें ढूंढ़ने चले गए थे। अब राजकुमार उनकी तलाश में इधर-उधर घूमने लगे। वह शिला नाम की एक नगरी में पहुँचे। वहाँ उन्हें एक सुन्दर बाग दिखाई दिया। उस बाग में घुसकर राज-

कुमार एक सुपारी के पेड़ के नीचे बैठकर सुस्ताने लगे।

इतने में राजवाहन ने डोली में किसी को आते देखा। उस डोली में दो स्त्री-पुरुष बैठे थे। डोली वाला आदमी राजवाहन को देखते ही प्रसन्नता से नाच उठा। वह बाहर निकला और उसने राजवाहन के पैर छुए। राजवाहन अब उसे पहचान गए। उनके मुंह से निकला, "ओह, प्रिय सोमदत्त, तुम हो।" यह कहकर राजवाहन ने उसे गले से लगा लिया। दोनों मित्रों की आँखों में आनन्द के आँसू छलक आए।

इसके बाद राजवाहन ने सोमदत्त से सब हालचाल पूछे। उत्तर में सोमदत्त हाथ जोड़कर अपनी कहानी सुनाने लगे।

३. सोमदत्त की आपबीती

सोमदत्त कहने लगे, "राजकुमार, जब आप गायब हो गए तब हम सब राजकुमार अलग-अलग दिशाओं में आपका पता लगाने चल दिए।

"मैं चलते-चलते एक तालाब के पास पहुँचा। गरमी के दिन थे और मैं प्यास के कारण बेचैन हो रहा था, लेकिन मैंने जैसे ही पानी पीने के लिए हाथ बढ़ाया तो एक कीमती हीरा दिखाई दिया। मैंने उसे निकाल लिया। आगे चलकर एक दीन ब्राह्मण की कुटी पर आया। यहाँ पता लगा कि मैं वीरकेतु राजा के राज्य में आ गया हूँ। इस राजा को लाट देश के राजा मत्तकाल ने घेर लिया था, क्योंकि उसने अपनी सुन्दरी

कन्या उसे देने से इन्कार कर दिया था, लेकिन अब लाचार होकर उसे अपनी कन्या वामलोचना मत्तकाल को देनी पड़ी। लौटते हुए वह शिकार करने को इस जंगल में रुक गया है। उधर वीरकेतु का मंत्री राजा के अपमान से बड़ा दुखी हुआ। वह राज्य की सारी सेना लेकर दूसरी जगह चला गया। अब वह मत्तकाल के विरुद्ध तोड़फोड़ के सामान तैयार कर रहा है।

"यह कथा सुनकर मुझे सब बातों का पता लग गया। मैंने वह हीरा तरस खाकर उस ब्राह्मण को दे दिया और थकान के कारण सो गया। ब्राह्मण वह हीरा पाकर बड़ा खुश हुआ और वहाँ से चला गया। जब मैं सोकर उठा तो देखा कि उस ब्राह्मण को कुछ सैनिक बाँध कर ला रहे थे। उस पर हीरे की चोरी का आरोप था। उन्हें जब यह बताया कि हीरा मैंने दिया था तो सिपाहियों ने ब्राह्मण को छोड़ दिया और मुझे बांध लिया। वे मत्तकाल के सिपाही थे। मुझे उन लोगों ने जेल में डाल दिया। वहाँ वीरकेतु के मंत्री मानपाल के भी कुछ आदमी कैद थे। मैंने उनसे दोस्ती कर ली। और सुरंग खोद कर उनके साथ निकल भागा। हम सब मंत्री मानपाल के पास पहुँचे। मत्तकाल को जब इन बातों का पता लगा तो उसने हमें वापिस मांगा, लेकिन मंत्री मानपाल ने मना कर दिया। फिर क्या था, लड़ाई ठन गई। मानपाल युद्ध में जीत गए और मत्तकाल मारा गया। इस जीत का समाचार जब वीरकेतु राजा के पास पहुँचा तब वहाँ बहुत आनन्द मनाया गया। मेरा

बहुत सत्कार किया गया। वीरकेतु ने अपनी कन्या कुमारी वामलोचना का विवाह मेरे साथ कर दिया। राजा के कोई और सन्तान न थी। इसलिए उत्तराधिकारी मुझे बनाया। मैंने भी अपनी ओर से राजा की सेवा करने में कोई कसर नहीं रखी। इस प्रकार बहुत दिन तक आनन्द करता रहा।

"किन्तु, हे राजकुमार, आपकी याद आते ही मैं व्याकुल हो जाता था। आज मैं एक महात्मा के उपदेश से यहां शिवजी की पूजा करने आया था। यहां आना ऐसा शुभ हुआ कि आपसे भेंट हो गई।"

यह कथा सुनकर कुमार राजवाहन ने साथी सोमदत्त की चतुराई और वीरता की बड़ी सराहना की और अपनी पाताल-यात्रा का रोचक हाल सुनाया। इसी समय उनके एक और साथी पुष्पोद्भव वहां आ गये। फिर तो वे सब बड़े प्रेम से आपस में मिले।

अपना हाल सुनाकर राजकुमार राजवाहन ने पुष्पोद्भव से पूछा, "अब तुम बतलाओ कि कहाँ-कहाँ गये थे?" पुष्पोद्भव ने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़े और अपना हाल सुनाने लगे।

४. पुष्पोद्भव की आपबीती

पुष्पोद्भव ने कहना शुरू किया, "कुमार, आपको जिस समय वह ब्राह्मण एकान्त में ले गया था, तभी हम लोगों को खटका हुआ था। जब आपका पता नहीं लगा तब हम लोग समझ गये कि आप उसी के काम से कहीं

चले गये हैं। लेकिन हम यह नहीं जानते थे कि आप किधर गये हैं, इसलिए हमने तय किया कि आपको खोजने के लिए एक-एक व्यक्ति एक-एक दिशा में जाय।

मैं भी एक ओर चला। चलते-चलते थककर मैं एक पहाड़ की तराई में एक पेड़ की छाँह में बैठ गया। अभी कुछ देर ही बैठा था कि देखता क्या हूं कि ऊपर से एक आदमी गिरता आ रहा है। मैंने तुरन्त उसे अपने हाथों में ले लिया। वह बेहोश हो गया था। जब होश में आया तो बोला, "भाई, मैं मगध-नरेश के मंत्री पद्मोद्भव का पुत्र हूं। मेरा नाम रत्नोद्भव है। मैं रोजगार के सिलसिले में कालयवन द्वीप चला गया था। वहाँ एक सौदागर की लड़की से विवाह हो गया। कुछ दिन बाद जब मैं जहाज़ से घर लौटने लगा तो जहाज़ एक भयानक तूफ़ान में डूब गया। भाग्य से मैं जैसे-तैसे किनारे आ लगा। किन्तु पत्नी के डूब जाने के कारण मैं बहुत दुखी था। इसी बीच में एक साधु ने बताया कि सोलह वर्ष बाद मेरा दुख दूर होगा। मैंने इसी आशा में सोलह वर्ष काट दिये। लेकिन फिर भी कोई आशा नहीं दिखाई दी तो मैं निराश होकर इस पहाड़ पर से कूद पड़ा।"

इतनी रामकहानी सुनने के बाद सहसा मुझे किसी स्त्री का रोना-बिलखना सुनाई पड़ा। वहां जाकर देखा कि एक वृद्धा उस स्त्री को आग में जलने से रोक रही है। पूछने पर उसने बताया कि वह उस स्त्री की धाय है और वह युवती सौदागर रत्नोद्भव की पत्नी सुवृत्ता है। उसने जो कहानी सुनाई उससे मैं समझ गया कि सुवृत्ता

अन्य कोई स्त्री नहीं, मेरी मां है। मैंने तुरन्त पैर छूकर उनको प्रणाम किया। और सबको ले जाकर पिताजी से भेंट कराई। सब बड़े प्रसन्न हुए। मुझे तो उन्होंने बहुत ही प्यार किया। उसके बाद मैंने उन्हें सब कहानी सुनाई और फिर उन्हें एक ऋषि के आश्रम में ठहराने का प्रबन्ध कर आपको ढूंढ़ने निकला। मैंने कुछ साथी इकट्ठे किये और साधु का वेश बनाकर खोजने लगा। मैंने करामाती सुरमे की मदद से धरती में से ढेरों अशर्फियां निकलीं और घूमते-घूमते उज्जैन पहुंच गया। वहां बन्धुपाल नाम के सौदागर के यहां रहने लगा। यहां बालचान्द्रका नाम की एक वैश्य की लड़की से मिलना हुआ। वह मालवा के राजा मानसार की लड़की की सहेली थी। राजा के बड़े लड़के दर्पसार तप करने कहीं चले गये थे और राजकाज उनके फुफेरे भाई चंडवर्मा और दारूवर्मा देखते थे। वे बड़े आवारा थे। दारूवर्मा की निगाह बालचन्द्रिका पर थी। वह उसे बहुत तंग करता था। इससे बालचन्द्रिका बहुत दुखी थी। बहुत सोच-विचार कर मैंने बालचन्द्रिका से कहा कि नगर में यह बात फैला दी जाय कि राजकुमारी की सहेली बालचन्द्रिका पर यक्ष आता है। उस यक्ष से जो पार पा सकेगा उसी से बालचन्द्रिका का विवाह हो सकेगा। यह बात सुनकर दारूवर्मा यदि डर गया तो ठीक होगा। अगर बल के घमंड में वह उसे बुलावेगा तो मैं उसे मार डालूंगा।

"मेरी यह योजना सफल रही। दारूवर्मा ने बाल-चन्द्रिका को बुला भेजा। मैं भी स्त्री के वेश में उसके

साथ गया और वहां मैंने दारूवर्मा को मार डाला। अब तो नगर में यह बात फैल गई कि बुरे काम का नतीजा बुरा होता है। बाद में मेरा विवाह बालचन्द्रिका के साथ हो गया।"

यह कहानी सुनाकर पुष्पोद्भव ने कहा, "बन्धुपाल ने जैसा शकुन विचारा था उसीके अनुसार मैं इधर आया तो आपसे भेंट हो गई। मुझे अब जितनी खुशी हो रही है उसका वर्णन नहीं कर सकता।"

इस मिलन पर राजकुमार भी बहुत प्रसन्न हुए और सोमदत्त को शिवजी की पूजा के लिए भेजकर पुष्पोद्भव के साथ अवन्ती चले गये। पुष्पोद्भव ने राजकुमार का सबसे परिचय कराया और उन्हें ब्राह्मण-पुत्र प्रसिद्ध किया। वे आराम से वहां रहने लगे।

५. राजवाहन और अवन्तिसुन्दरी

कुछ दिनों बाद धीरे-धीरे वसन्त ऋतु आ गई। लोगों के मन में तरह-तरह की उमंगें उठने लगीं। स्त्री-पुरुषों में ही नहीं, पेड़ और पौधों में भी परिवर्त्तन होने लगे। निर्गुण्डा, लाल, अशोक, टेसू और तिलों में कोपलें तथा नई कलियां निकल आईं। इन नई कोपलों तथा आम के बौर का स्वाद ले-लेकर कोयलों और भौरों की आवाज और भी सुरीली हो उठी। इनकी कूक तथा गुंजार बड़ी साफ और ऊंची हो गई।

सुना जाता है कि दक्षिण में मलय पहाड़ है। इस पर चन्दन के पेड़ बहुत उगते हैं। इन चन्दन वृक्षों

पर सुगन्धि के कारण हमेशा सांप लिपटे रहते हैं। ये सांप चन्दन की महक से भरी हुई यहां की हवा को पी-पी कर उगला करते हैं। शायद इसीलिए दक्षिणी बयार इतनी पतली और महीन पड़ कर बह रही थी।

इन्हीं दिनों एक बार मालवराज मानसार की पुत्री अवन्तिसुन्दरी भी आनन्द-विहार के लिए निकली। वह नगर के बाहर एक बहुत सुन्दर बगीचे में आई। उसकी प्यारी सहेली बालचन्द्रिका उसके साथ थी। उन दिनों वसन्त ऋतु में कामदेव की पूजा का आम रिवाज था। क्वारी लड़कियां यह पूजन बड़े चाव से किया करती थीं। राजकुमारी ने भी विधिपूर्वक कामदेव की पूजा की। इसके बाद वह खेलकूद और घूमने-फिरने में लग गई।

राजवाहन ने पुष्पोद्भव से कहा कि चलो, हम लोग भी राजकुमारी को देख आवें। पुष्पोद्भव तैयार हो गया। दोनों मित्र थोड़ी देर में बाग में पहुँच गए। बालचन्द्रिका ने इन लोगों को देखा तो बेखटके उधर ही चले आने का संकेत कर दिया। वे दोनों राजकुमारी और उनकी सहेलियों की तरफ बढ़ चले। दोनों ने एक-दूसरे को देखा। दोनों बहुत सुन्दर थे। नतीजा यह हुआ कि दोनों एक दूसरे की तरफ खिंचे। समय पाकर बालचन्द्रिका ने अवन्तिसुन्दरी से कहा, "राजकुमारी, यह जो महानुभाव सामने खड़े हैं, एक ब्राह्मण युवक हैं। यह तरह-तरह के कला-कौशल और शिल्प के जानकार हैं। रत्न परखने में निपुण हैं। तन्त्र और चिकित्सा-

शास्त्र के पंडित हैं। आपको इनका आदर करना चाहिए।" राजकुमारी ने तुरन्त एक सुन्दर आसन बिछा दिया और विधिपूर्वक राजकुमार का सत्कार किया। राजकुमार का मन बराबर राजकुमारी की ओर खिंच रहा था। वह सोचने लगे कि ऐसा क्यों हो रहा है। तभी सहसा उन्हें पिछले जन्म की याद आ गई। वह राजा शाम्ब थे और राजकुमारी उनकी पत्नी यज्ञवती थी। एक बार रानी के कहने पर उन्होंने एक हंस को पकड़कर उसके पैर बाँध दिये थे। वह हंस एक ऋषि थे। उन्होंने राजा को शाप दिया, 'तुमने बिना कारण हमारा अपमान किया है। तुम पापी हो। जाओ, तुम्हारी स्त्री तुमसे अलग हो जायगी।' राजा के बहुत क्षमा-प्रार्थना करने पर ऋषि को दया आ गई। उन्होंने कहा, 'तुमने बुरे इरादे से हमें नहीं बांधा, सो इस जन्म में तुम्हें शाप का फल नहीं भोगना पड़ेगा। हां, अगले जन्म में दो महीने तक तुम्हारे पैर बंधेंगे। उसके बाद तुम्हारी स्त्री तुम्हें मिल जायगी।'

यह कथा याद आते ही राजकुमार समझ गये कि यह राजकुमारी मेरे पहले जन्म की पत्नी यज्ञवती है। उन्होंने राजकुमारी से भी यह बात कही। उसे भी सब बातें याद आ गईं। अब तो दोनों एक-दूसरे को प्रेम करने लगे। लेकिन तभी राजकुमारी की माता के आने का समाचार मिला। वे वहां से चले गये।

बाद में कुछ समय तक [illegible] के सहारे दोनों में पत्र-व्यवहार चलता रहा। लेकिन इस बीच

उनकी अवस्था बड़ी विचित्र हो गई। पुष्पोद्भव उनको राजकुमारी से मिलाने की बात सोचने लगा। थोड़े दिन बाद एक जादूगर अवन्तिका में आया और उसकी जादूगरी की प्रसिद्धि नगर भर में फैल गई।

मालवपति ने भी जादूगर को राजमहल में अपने करतब दिखाने के लिए बुलाया। इससे पहले ही पुष्पोद्भव जादूगर से मिले और सब बातें उसे समझा दीं। जादूगर ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वह राजकुमार को अवन्तिसुन्दरी से मिला देगा। महल में उसने अनेक तमाशे दिखलाए और बाद में एक ऐसा खेल दिखाया, जिसमें अवन्तिसुन्दरी का विवाह राजवाहन के साथ होता हुआ सब दर्शकों ने देखा। वे सोचने लगे कि यह सब जादू है। किन्तु यह सब थी वास्तविक घटना और जैसा कि पहले से तय हो चुका था राजकुमार राजवाहन धीरे से राजकुमारी के साथ भीतर के महल में चले गये और आनन्द से रहने लगे। किसी को असली बात का पता ही नहीं लगा।

६. राजवाहन पर क्या बीती

बहुत दिन तक राजकुमार सुखपूर्वक महल में रहते रहे, लेकिन एक दिन सब भेद खुल गया और चंडवर्मा ने राजकुमार को जेल में डाल दिया। जब राजकुमारी के माता-पिता को पता लगा कि उनका दामाद बड़ा सुन्दर है तो वे उसकी ओर हो गये। उनके बीच में पड़ने से राजकुमार के प्राण बच गये, लेकिन

चण्डवर्मा उन्हें अपने साथ अंग देश ले गया। वह अंग-देश के राजा सिंहवर्मा की बेटी अम्बालिका से विवाह करना चाहता था, पर राजा नहीं माने। वह सेना लेकर चढ़ आया। उस युद्ध में सिंहवर्मा हार गये और अम्बालिका चण्डवर्मा के हाथ में पड़ गई। तभी अवन्तिसुन्दरी के भाई महाराज दर्पसार का संदेश चण्डवर्मा को मिला। उन्होंने राजवाहन को मार डालने और राजकुमारी को कैद में डालने की आज्ञा दी थी। चण्डवर्मा ने राजकुमार को हाथी से कुचलवा देने की आज्ञा दी। लेकिन इसी बीच एक अद्भुत घटना घटी। राजकुमार के पैरों में जो जंजीर थी वह आप-से आप टूट गई। दो महीने बीत चुके थे और पूर्व-जन्म का श्राप पूरा हो चुका था। वह जंजीर भी एक परी थी और श्राप के करण जंजीर बनी हुई थी। अपनी कहानी सुना-कर वह राजकुमारी को सब समाचार देने चली गई। तभी पता लगा कि किसी व्यक्ति ने चंडवर्मा को मार डाला। भीतर-बाहर हलचल मच गई। इसी घपले में राजवाहन भी जेल से बाहर निकल आए। वहां उन्हें पता चला कि चंडवर्मा को मारनेवाला व्यक्ति अपहारवर्मा है तो वह बेहद प्रसन्न हुए।

इसी समय एक सेना ने चण्डवर्मा की सेना को बाहर से आकर घेर लिया। अपहारवर्मा ने राज-कुमार को बतलाया कि मेरे मित्र धनमित्र की सहायता से अंगराज सिंहवर्मा के सहायक राजाओं की सेना चण्डवर्मा से टक्कर ले सकी है। अन्त में चण्डवर्मा की

सेना हार गई और अपहारवर्मा राजवाहन को चम्पा-नगरी के बाहर एक स्थान पर ले गया। वहां पहुंचकर दोनों महारथी बैठे ही थे कि उन्होंने धनमित्र को आते हुए देखा। उसके पीछे-पीछे उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मंत्रगुप्त और विश्रुत भी आ गए। साथ ही मिथिला के प्रहारवर्मा, काशीराज, कामपाल तथा चंपा-नरेश सिंहवर्मा भी उपस्थित थे। राजवाहन उन सबको देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने सबका आदर किया और बड़े प्रेम से सबसे मिले। इस मिलन के बाद राजवाहन ने अपना हाल सबको सुनाया। फिर सोमदत्त और पुष्पोद्भव की आपबीती भी सुना डाली। इसके बाद वह एक-एक करके सब साथियों का हाल पूछने लगे। इनमें सबसे पहले अपहारवर्मा ने अपनी कहानी सुनानी शुरू की।

७. अपहारवर्मा की आपबीती

अपहारवर्मा ने कहा, "आपको ढूंढते-ढूंढते मैं गंगा-किनारे आम के पेड़ के नीचे बैठे एक बाबाजी के पास जा पहुंचा। मुझे मरीचि ऋषि की तलाश थी, क्योंकि वह दिव्य दृष्टि से आपका पता बता सकते थे। उस महात्मा की दशा कुछ अजीब-सी थी। दिमाग कुछ बिगड़ गया था, पर उन्होंने मेरा स्वागत किया और जब मैंने उनसे मरीचि ऋषि का पता पूछा तो वह बोले, "अंग देश में काममंजरी नाम की एक सुन्दर वेश्या रहती थी। उससे एक दूसरी वेश्या ईर्ष्या

करती थी। एक दिन बातों-ही-बातों में वह काममंजरी से बोली कि तू तो ऐसी शेखी मार रही है जैसे 'मरीचि' को फंदे में फांस लाई हो। बस, इसी मामले में दोनों में शर्त लग गई। फिर क्या था, यह काममंजरी अपनी मां के साथ एक दिन मरीचि के पास गई और फूट-फूट कर रोने लगी। बोली, महाराज, यह मेरी लड़की है। मैं इसे वेश्या के काम में चतुर बनाना चाहती हूं, किन्तु यह तपस्वियों का जीवन बिताना चाहती है। असल में यह एक गरीब ब्राह्मण से प्रेम करती है, लेकिन हम गरीबों से प्रेम करने लगें तो कैसे चले। इसलिए जब मैंने इसे उससे मिलने से रोका तो यह रूठ गई और यहां वनवास के लिए भाग आई।"

"यह सब हाल सुनकर मरीचि को उन लोगों पर बड़ी दया आई। उन्होंने उस वेश्या की लड़की को बहुत समझाया। बोले, 'जंगल में रहना और तप करना तेरे बूते का काम नहीं है। इसे रहने दे। तेरे लिए तो यही ठीक है कि तू अपनी मां का कहना मान।"

"उनकी यह बात सुनकर वह वेश्या की लड़की बड़ी दुखी हुई और बोली, 'भगवन्, अगर आज यहां जंगल में आपके चरणों का आसरा मुझे न मिला, तो मैं जल मरूंगी।' इसपर मुनि कुछ सोच में पड़ गए। थोड़ी देर बाद उसकी मां से बोले, 'अच्छी बात है, तुम इस समय तो घर लौट जाओ। कुछ दिनों में यह लड़की समझ जायगी कि तप का जीवन बिताना आसान काम नहीं है। मैं भी इसे समझाता रहूंगा।"

उनके जाने के बाद काममंजरी ने अपनी देह को सजाना छोड़ दिया। वह बड़े भक्तिभाव से वहां रहने लगी। उसके दिन भजन-चिन्तन में बीतने लगे। अपने ज्ञान के अनुसार वह शास्त्र और आत्मा-परमात्मा के बारे में भी चर्चा किया करती थी। आश्रम के सब काम उसने संभाल लिये थे। मरीचि भी इस प्रकार की वृत्ति से और कामकाज में लगन के कारण उससे संतुष्ट रहने लगे। धीरे-धीरे उसकी ओर उनका ध्यान विशेष रूप से जाने लगा। वह लड़की भी इस बात को ताड़ गई और उसने ऋषि को अपनी ओर खींचने का पूरा प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि धर्म, अर्थ और काम की चर्चा करते-करते मरीचि ऋषि एक दिन उस वेश्या के जाल में फंस गए। जब वह पूरी तरह काममंजरी के इशारों पर नाचने लगे तो एक दिन वह उन्हें लेकर काम महोत्सव में गई। तब वह विलासी के समान बने-ठने हुए थे। वहां काममंजरी ने अपने से ईर्ष्या करनेवाली वेश्या से कहा कि देख, मैंने मरीचि को वश में किया है। मरीचि ऋषि यही हैं। राजा काममंजरी की इस विजय से बड़े प्रसन्न हुए और दूसरी वेश्या तो उसकी बांदी बन गई।

"वहाँ से घर लौट कर काममंजरी ऋषि से बोली, 'भगवन्, आपने दासी पर बड़ी कृपा की। अच्छा, यह तमाशा खत्म हुआ। अब मुझे अपने काम-काज में लगने दीजिए।"

यह सुनकर ऋषि को बहुत दुख हुआ। वह सब बात

जान गये थे। पछताते हुए अपने आश्रम में लौट आये।"

यह कथा सुनाकर बाबा बोले, "महानुभाव, उस वेश्या ने जिस तपस्वी को ऐसा मूर्ख बनाया था, वह मैं ही हूँ। मैं अब ठीक राह पर आ गया हूं। शीघ्र ही आपका काम करने योग्य हो जाऊंगा। तबतक आप चम्पा नगरी में निवास करें।"

"मैं मरीचि की कहानी सुनकर आगे बढ़ा। एक बगीचे में बने विहार के पास लाल अशोक के पेड़ के नीचे मैंने एक जैन साधु को देखा। पूछने पर पता लगा कि यह जैन साधु निधिपाल का पुत्र वसुपालित है। इसे भी काममंजरी ने अपने रूपजाल में फंसा कर कंगाल बनाया और फिर निकाल दिया। जैन बनने पर भी हृदय को शान्ति नहीं मिली। उसे जैनों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि, वरुण की निन्दा सुननी पड़ती थी। इससे उसे बड़ा दुख होता था।

"मैंने उसे ढाढ़स बंधाया और विश्वास दिलाया कि एक दिन वही वेश्या उसका सब धन लौटाने आवेगी और मैं आगे बढ़ गया। चम्पा नगरी में जाकर मैंने वहां के धनवान व्यक्तियों की रीति-नीति का पता लगाया। वे धनी थे, पर कंजूस बहुत थे। सब लोग उनसे तंग थे। इन कंजूस बनियों को ठीक मार्ग पर लाने के लिए मैं चौर्यशास्त्र के आचार्य कर्णीसुत के अनुसार जुओं के अड्डों पर जाने लगा और पांसे के उस्ताद जुआरियों की सोहबत में मैंने बैठना शुरू किया। धीरे-धीरे जुए की सब चालबाजियाँ मैंने जान लीं और जुआ खेलने की

असली कला सीख ली । जुए के इन अड्डों में मुझे बड़ा आनन्द मिलने लगा । मुझे जुए का चस्का लगानेवाले आदमी का नाम विमर्दक था । यह बड़ा भरोसे का आदमी था। उसे मेरा जिगरी दोस्त समझिए । इस विमर्दक के द्वारा ही चम्पा का सब अन्दरूनी हाल मुझे मालूम हुआ । शहर में कहां-कहां क्या-क्या काम होते हैं, यह सब उसी से पता लगता था । मतलब यह कि शहर और यहां के आदमियों से अब मैं अच्छी तरह परिचित हो गया ।

"इसके बाद मैं चोरी करने निकला। पहली ही रात को मेरा मिलना कुबेरदत्त नाम के रईस की बेटी से हुआ। बचपन में जिस व्यक्ति से उसकी शादी तय हुई थी वह अब गरीब हो चुका था। इसलिए उसके पिता ने उसका विवाह अर्थपति नाम के मनहूस मालदार से करने का निश्चय किया था। वह नारी पहले युवक को चाहती थी और उसीके पास जाने को घर से निकली थी । मुझे देखकर वह डर गई, पर मैंने उसकी सहायता की और पुलिस से बचाता हुआ उसे उसके मनोनीत पति उदारक या धनमित्र के घर पहुंचा आया । यही नहीं, मैंने इस प्रकार की चालें चलीं, जिससे धनमित्र की फिर से प्रतिष्ठा होने लगी। राजा भी उसे मानने लगा और कुबेरदत्त ने भी धनमित्र को अमीर समझ उसी से अपनी बेटी का विवाह करने की इच्छा फिर से प्रकट की।

"इसी बीच मेरा मिलना काममंजरी की बहन

[illegible]मंजरी से हुआ। वह वेश्या की बेटी होकर भी बड़ी सच्चरित और कलाविद् थी। मैं उससे विवाह करना चाहता था, पर उसकी मां और बहन काममंजरी ने रुकावटें डालीं। मैंने जिस 'जादू के बटुए' का ढोंग रचकर धनमित्र को धनी प्रसिद्ध किया था उसी की रिश्वत देकर काममंजरी और उसकी मां को चुप किया और रागमंजरी से शादी करली।

"इसके बाद मैं अर्थपति के विरुद्ध वातावरण बनाने लगा और उसपर बटुए की चोरी का आरोप लगा कर उसे जेल में डलवा दिया। बटुआ काममंजरी के पास था। उसे बताया गया कि यह बटुआ तभी धन देता है जब चोरी और छल से प्राप्त धन उसके मालिक को लौटा दिया जाय। काममंजरी ने जैन साधु विरूपक का सब धन लौटा दिया। यही नहीं, शेष धन भी उसने दान कर दिया। वह गरीब हो गई। तभी मैंने राजा के पास शिकायत की कि बटुआ अब काममंजरी के पास पहुंच गया है। तभी तो वह इतना दान कर रही है। इधर मैं काममंजरी से भी मिला रहा और उससे राजा के सामने कहलवा दिया कि यह बटुआ अर्थपति ने उसे दिया था। राजा अर्थपति को प्राणदण्ड देने को तैयार हो गये, पर बाद में धनमित्र के कहने पर उसकी सम्पत्ति जब्त कर उसे देश से निकाल दिया गया। अब धनमित्र का विवाह कुबेरदत्त की लड़की के साथ बिना किसी विघ्न-बाधा के हो गया।

"लेकिन अभी मेरी कथा का अन्त नहीं हुआ।

मैंने राजकुमारी अम्बालिका को पाने के लिए बड़ी चालें चलीं। मैं कई बार मुसीबतों में फंसा, पर अन्त में राजकुमारी से भेंट हो ही गई।

"किन्तु विवाह से पहले एक और दुर्घटना हो गई। इन्हीं दिनों मालवा का चंडवर्मा सेना लेकर चंपा पर चढ़ाई करने आया। वह भी अम्बालिका को चाहता था। उसने अंगराज सिंहवर्मा को युद्ध में हरा दिया और अम्बालिका को वह अपने साथ ले गया। ठीक विवाह के मुहूर्त के समय में भी धनमित्र और दूसरी सेना के साथ विवाह-मण्डप में घुस गया। वहां मैंने चंडवर्मा को मार डाला और इस प्रकार अम्बालिका को बचा लिया।

"हे राजकुमार! इसके बाद मैंने जैसे ही राजकुमारी अम्बालिका को साथ लेकर कमरे में प्रवेश किया, उसी समय आपका परिचित स्वर सुनाई पड़ा। आप की आवाज सुनकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। यही मेरी रामकहानी है।"

राजकुमार यह कहानी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, और अपहारवर्मा की बड़ाई करने लगे। फिर वह उपहारवर्मा की ओर देखकर बोले, "अब तुम अपना हाल सुनाओ।"

●
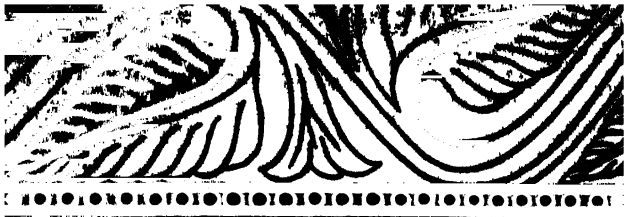
दशकुमार-चरित

२
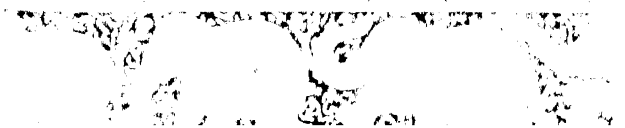
संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१५

दण्डी-कृत

दशकुमार-चरित

भाग २

●

श्री कृष्णाचार्य
द्वारा
कथासार

●

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
संपादित

●

१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५५
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

दशकुमार-चरित

भाग २

८. उपहारवर्मा की आपबीती

उपहारवर्मा अपना हाल सुनाते हुए बोले—

"मैं आपकी खोज करता हुआ विदेहराज की ओर निकल गया। राजधानी मिथिला के निकट पहुंचा तो नगर के बाहर एक बुढ़िया मिली। मुझे देखते ही वह रोने लगी। मैंने रोने का कारण पूछा तो वह बोली, 'मिथिला के पिछले राजा प्रहारवर्मा की मगध-नरेश राजहंस से बड़ी मित्रता थी। उनकी दोस्ती बल और संबल की तरह प्रसिद्ध थी। इन दोनों राजाओं की रानियों, प्रियंवदा और वसुमति, में भी बड़ी मित्रता थी। एक बार प्रियंवदा और प्रहारवर्मा अपने मित्र राजहंस से मिलने मगध देश गए। उन्हीं दिनों मालव-नरेश के साथ मगधराज की भारी लड़ाई हुई। मगधराज हार गए। वहां से लौटने पर प्रहारवर्मा को पता लगा कि उनके राज्य को बड़े भाई संहारवर्मा के पुत्र विकटवर्मा ने छीन लिया है। वह अपने भानजे से मदद लेने चले; पर मार्ग में भीलों ने उन्हें लूट लिया। उनके बच्चे मेरे पास थे। मेरे साथ मेरी लड़की भी थी, पर हम बच्चों को न बचा सके। मेरा बच्चा भील उठा ले

गये और बाद में जब मेरी लड़की मुझे मिली तो पता लगा कि उसके पास जो बच्चा था उसे भी भीलों ने छीन लिया था। हमने महाराज से सब हाल कहा तो वह बड़े दुखी हुए। उधर अपने भतीजों से युद्ध में भी वह हार गये। अब राजा-रानी कैद में हैं और मेरी लड़की पुष्परिका लाचार होकर पेट के लिए विकटवर्मा की रानी कल्पसुन्दरी की दासी बनी हुई है। यह रानी बहुत ही चतुर और सुन्दर है। विकटवर्मा इसका दास है।"

"मैं समझ गया कि मेरे माता-पिता ही कैद में डाल दिये गए हैं। मैंने बुढ़िया से सब बातें कह दीं। वह बहुत प्रसन्न हुई। अपनी बेटी से मेरा परिचय कराया। मैं भी अपने मां-बाप को छुड़ाने के उपाय करने लगा। सबसे पहले मैंने पुष्परिका को कल्पसुन्दरी का मन विकटवर्मा के विरुद्ध करने के काम में लगाया। धाय को भी यही काम सौंपा। बाद में मैंने मन में सोचा कि पराई स्त्री को अपनी ओर मिलाने में कोई हर्ज तो नहीं है? पर मैंने यह सोच कर धीरज बांधा कि मैं अपने माता-पिता को छुड़ाने के लिए ही ऐसा कर रहा हूं। इसी समय सपने में मुझे गणेशजी ने दर्शन दिए और कहा, 'पुत्र उपहारवर्मा, तू अपने मन में मैल और किसी तरह की ग्लानि मत ला, क्योंकि तू मेरा ही अंश है। यह कल्पसुन्दरी भी वास्तव में पूर्वजन्म की गंगा है। इस गंगा को हमारे पिता महादेवजी अपनी जटाओं से सहला-सहला कर खूब दुलार किया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि मैं गंगा के साथ खेल

रहा था। वह विमाता होने के कारण मेरी बाल-लीला पर झुंझला उठी और शाप दे बैठी कि जा, तू मनुष्य-योनि में चला जा।

"इसपर मैंने भी उसे शाप दे डाला और कहा, 'तू भी मनुष्य योनि में जा और स्त्री-शरीर धारण कर। जिस प्रकार इस समय नदी होने से तेरा प्रयोग बहुत से आदमी करते हैं, इसी तरह स्त्री-शरीर में भी तेरा उपयोग कई आदमी करेंगे।' मेरा शाप सुनकर गंगा ढीली पड़ गई। वह नरमी से बोली, 'अच्छा, तुमने भी मुझे इतना कठोर शाप दे डाला, पर अब तो दया कर दो कि पहले एक पुरुष के साथ रह चुकने के अनन्तर तुम्हारी ही चरण-सेवा का सौभाग्य मुझे मिले और फिर सदा ही तुम्हारा सहवास प्राप्त रहे।' इसलिए, पुत्र उपहारवर्मा, यह प्रसंग कुछ बुरा नहीं है; बल्कि स्वाभाविक और सुन्दर है। इस कल्पसुन्दरी के सम्पर्क को तुम किसी बुरी आशंका से मत देखो।" सपने में ये सब बातें सुनकर मेरे चित्त को बड़ी तसल्ली हुई। उधर पुष्परिका ने भी अपनी कूटनीति में सफलता प्राप्त करली। उसने न केवल कल्पसुन्दरी का मन विकटवर्मा की ओर से फेर दिया, बल्कि मेरा परिचय देकर उसे मेरी ओर आकर्षित भी कर दिया। यही नहीं, उसने प्रबन्ध करके कल्पसुन्दरी से एक बार मेरी भेंट भी करा दी। उस समय मैंने अनुभव किया कि कल्पसुन्दरी मुझसे अलग नहीं हो सकती। तब मैंने उसे समझाया कि तुम अकेले में राजा को मेरी सूरत-शक्ल से मिलना-जुलना

हुआ चित्र दिखला कर कहना, 'महाराज, यह मूरत पुरुष-सौन्दर्य की सीमा तक पहुँची है या नहीं ?' वह यह सुनकर अवश्य 'हां' कहेंगे। तब तुम कहना 'एक संन्यासिनी को मैं जानती हूं। वह देश-विदेश घूमी हुई है। उसने यह तस्वीर देकर मुझसे कहा है कि यदि तेरे पति सुन्दर देह बनाना चाहते हैं तो पहले अपने मित्रों, मन्त्रियों और भाइयों के साथ सलाह करलें। जब सब एक राय हो जायं तब उन्हें इस काम में हाथ डालना चाहिए।' राजा यह बात जरूर मान लेगा। तब तुम इस बगीचे के चौराहे पर यज्ञ कराना।'

"बात-की-बात में यज्ञ होने तथा उसके द्वारा राजा को सुन्दर बनाने का समाचार सारे नगर में फैल गया। राजा ने मंत्रियों और मित्रों को बुला कर परामर्श किया। सबने राजा के इस प्रस्ताव का समर्थन किया। यह बात सबको अच्छी लगी कि राजा विकटवर्मा महात्मा के मंत्रबल से देवताओं-जैसा रूपवान और राजसी शरीर प्राप्त करेंगे। अमावस के दिन रात्रि में यज्ञ-कर्म आरम्भ किया गया। जब यज्ञ हो रहा था तब मैं रानी का रूप धरकर यज्ञ-भूमि में पहुंचा और राजा से पूछा, 'हे राजन्, आप मुझे वचन दीजिए कि सुन्दर होने पर आप मेरी सौतों के चक्कर में तो नहीं पड़ोगे।' विकटवर्मा ने कसम खाकर कहा कि वह कल्पसुन्दरी को छोड़ कर और किसी को नहीं चाहेगा। इसके बाद मैंने उससे राज के मुख्य भेद यज्ञकुंड के आगे बतलाने की आज्ञा दी।

उसने तुरन्त चार मुख्य भेद इस प्रकार बतलाए—पहला, मेरे पिता के छोटे भाई प्रहारवर्मा कैद में हैं। उन्हें मैं विष द्वारा मारना चाहता हूं। दूसरा, मैं पुंड्र देश को जीतना चाहता हूं। तीसरा, मुझे एक यूनानी सौदागर के पास अमूल्य हीरा होने का पता लगा है। मैं इसे लेना चाहता हूं। चौथा, मैं प्रहारवर्मा के साथी अनन्तसीर को मरवा डालना चाहता हूं।

उसके चौथे भेद को सुनते ही मैं अंधकार में से निकल पड़ा और मैंने उसको छुरी से मार डाला। मारने के बाद मैंने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले और उनको अग्निकुंड में डाल दिया। इस प्रकार अब मैं किम्वदंती के अनुसार रूप बदला हुआ विकटवर्मा था। दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने सब प्रजा को दर्शन दिये। मेरा रूप देख कर सबको आश्चर्य हो रहा था।

"मैंने दरबार लगाया और कहा कि रूप बदलने के साथ मेरा स्वभाव भी बदल गया है। सबसे पहले मैंने अपने पिता को छोड़ने और उनका राज उन्हें सौंप देने का प्रस्ताव किया। इसके साथ अन्य अन्यायपूर्ण कार्य भी करने का मैंने इरादा छोड़ दिया। इस प्रकार सब लोगों को विश्वास हो गया कि मैं ही विकटवर्मा हूं तथा रूप के साथ-साथ मेरा स्वभाव भी बदल गया है। मेरे माता-पिता सब कुछ जान कर बड़े प्रसन्न हुए। मेरे पिता गद्दी पर बैठे और मुझे उन्होंने युवराज बनाया। इसी समय पिताजी के मित्र श्री सिंहवर्मा का एक पत्र मिला। उससे मालूम हुआ

कि चंडवर्मा ने चंपा पर हमला किया है। इस कार्य के लिए मैंने भारी सेना लेकर इस ओर कूच किया। यहां आने पर मेरे भाग्य ही खुल गए और आपके दर्शनों का लाभ हुआ।"

यह कथा सुन कर राजकुमार बड़े प्रसन्न हुए और फिर अर्थपाल से बोले, "अब तुम भी अपनी आपबीती सुनाओ।"

६. अर्थपाल की आपबीती

अर्थपाल अपना हाल सुनाते हुए कहने लगे—

"युवराज, मैं भी इन्हीं मित्रों के साथ-साथ निकला। अनेक देशों का चक्कर लगाते-लगाते मैं एक बार काशीराज की राजधानी वाराणसी (बनारस) में पहुंचा। वहां पर मुझे एक लम्बा-तड़ंगा और हट्टा-कट्टा आदमी मिला। वह देखने में बड़ा बहादुर लगता था। वह किसी कठिन काम के लिए तैयार हो रहा था; किन्तु उसकी आंखें रोने के कारण लाल हो रही थीं। यह देखकर मेरे मन में सहानुभूति पैदा हुई और मैंने उससे इस बात का कारण पूछा। तब उसने इस प्रकार अपना हाल सुनाया, 'मैं एक गांव के मुखिया का लड़का हूं और मेरा नाम पूर्णभद्र है। बचपन में मुझे चोरी करने की आदत पड़ गई थी। अनेक बार चोरी करते पकड़ा गया और जेल भी गया। एक बार यहां काशी में मैंने एक मालदार वैश्य के घर चोरी की। चोरी का माल मेरे पास

से बरामद होने के कारण मैं पकड़ा गया और मुझे मौत की सजा मिली। मुझे मारने के लिए एक मस्त हाथी लाया गया। उसका नाम मृत्युविजय था। यह हाथी बहुत भयानक था। इस अवसर पर यहां के प्रधान मंत्री कामपाल भी आए। इन्हीं की आज्ञा से हाथी मुझे कुचलने को छोड़ा गया। जैसे ही वह चिंघाड़ता हुआ मेरी ओर बढ़ा, मैं एकदम कूदकर उसके सामने आ गया। अगर्चे मेरे हाथ बंधे हुए थे, फिर भी मैंने एक घूंसा उसकी सूंड पर दे मारा। इस चोट से घबरा कर हाथी पीछे हट गया। यह देख कर महावत को बड़ा क्रोध आया। उसने हाथी को फिर हांका; लेकिन मैंने भी पहले की तरह फिर घूंसा मारा। इस बार भी हाथी उलट कर भाग खड़ा हुआ। महावत के क्रोध की सीमा न रही। उसने अंकुश की चोटें कर-करके हाथी को फिर बढ़ाया, पर मेरी क्रोधभरी हुंकार सुनकर वह दूर से ही भाग गया। इस बार उसने महावत की मार की चिन्ता नहीं की।

"काशीराज के मंत्री ऊपर से यह तमाशा देख रहे थे। उन्होंने मुझे बुलवाया और कहने लगे, 'तुम तो बहादुर हो, इस हाथी को मौत से कम मत समझो। बड़ा खूनी है। लेकिन तुमने इसे भी भगा दिया। देखो भाई, मेरी सलाह मानकर चोरी की आदत छोड़ दो और हम आर्य लोगों की तरह आचार-विचार से रहना शुरू कर दो। बतलाओ, क्या तुम

ऐसा करोगे ?

"मैं उनके व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ और तुरन्त कहा, 'जैसी आपकी आज्ञा।' इसके बाद वह मेरे साथ मित्रों के समान बर्ताव करने लगे और मैं सुख से उनके पास रहने लगा।

"एक दिन मैं बातों-ही-बातों में उनका पिछला इतिहास पूछ बैठा। उन्होंने बतलाया कि पाटलिपुत्र के महाराज रिपुंजय के धर्मपाल नाम के एक मंत्री थे। इनके दो लड़के थे, पहली माता से सुमित्र और दूसरी माता से मैं कामपाल। बचपन से ही मैं आवारा और वेश्यागामी हो गया। जब बड़े भाई ने रोकथाम की तो मैं भागकर काशी चला आया। यहां भी काशीराज चंडसिंह की कन्या कांतिमती से मेरा खोटा सम्बन्ध हो गया। उसके एक पुत्र पैदा हुआ। भेद खुलने के डर से उसे श्मशान में डलवा दिया गया; लेकिन एक दिन भेद खुल ही गया और मैं पकड़ा गया। मुझे मौत की सजा मिली, लेकिन मैं बच कर भाग निकला और एक जंगल में पहुंचा। यहां एक स्थान पर एक रूपवती स्त्री बैठी रो रही थी। मैंने उससे रोने का कारण पूछा। उसने मुझे दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और बोली, 'मैं यक्षों के राजा मणिभद्र की पुत्री तारावली हूं। मुझे काशी के श्मशान में एक बालक पड़ा मिला था। उसे मैं महाराज राजहंस की रानी वसुमती को सौंप आई हूं। उस बालक की मां कान्तिमती और मैं कई जन्मों से आपकी पत्नी के रूप में सेवा

करती रही हूं। आप एक जन्म में शौनक ऋषि, दूसरे में शूद्रक तथा अब कामपाल हैं। मैं पहले गोपकन्या, फिर आर्यदासी और अब तारावली हूं।'

"इस प्रकार अपना किस्सा सुनाने के बाद अपनी विद्या से उसने वहां एक सुन्दर महल खड़ा कर दिया और हम दोनों बहुत समय तक सुख से उस महल में रहते रहे। कुछ समय बाद मैंने तारावली से काशी के राजा चंडसिंह से पुराने बैर का बदला लेने की बात कही। तारावली तत्काल मुझे चंडसिंह के महल में ले गई। मैं तलवार लेकर खड़ा हो गया और राजा को जगाया। मैंने उसे अपना परिचय दिया तो वह घबरा गया और उसने हर तरह से मेरी आज्ञा मानने की प्रतिज्ञा की। दूसरे ही दिन उसने मुझे राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया और अपनी बेटी कान्तिमती का विवाह भी मुझसे कर दिया। अब मैं यहां मंत्री बना हुआ हूं। वैसे राज्य मेरा ही है।

"मंत्री कामपाल की यह कथा सुना कर उसने आगे कहा, "कुछ समय बाद चंडसिंह मर गए और उनकी गद्दी पर सिंहघोष बैठे। कामपाल इतने भले थे कि राज्य पर अपना अधिकार होने पर भी उन्होंने बालक सिंहघोष को गद्दी पर बिठाया; पर युवा होने पर चापलूस दरबारियों के कारण राजा सिंहघोष की मंत्री कामपाल से खटपट हो गई। इसी बीच में किसी कारण नाराज होकर तारावली भी उन्हें छोड़ कर चली गई। तब वह बहुत दुखी हुए। इसी समय राजा ने

उन्हें कारागार में डाल दिया। अब राज की ओर से घोषणा हुई है कि उनका वध किया जायगा। महानुभाव, मैं इसी चिन्ता में रो रहा हूं। आज मंत्रीजी मार दिये जाएंगे।

"पूर्णभद्र की बातें सुनकर मुझे विश्वास हो गया कि मंत्री कामपाल अन्य कोई नहीं, मेरे पिता ही हैं। मैंने उसको बतलाया कि जिस पुत्र को यक्षकन्या ने महाराज राजहंस को सौंपा था, वह मैं ही हूं। फिर उसी के सहारे मैंने अपनी माता से सम्पर्क स्थापित किया। उन्हें सब बातें कहलवा दीं और बताया कि वह महाराज से सती होने की आज्ञा ले लें। उधर तो चिता, सती होने तथा पिताजी के वध की तैयारी होती रही, इधर मैंने एक सर्प पकड़ा और उसी मैदान में जा पहुंचा जहां पिताजी का वध होने को था। भीड़ का लाभ उठा कर मैंने उस सर्प को पिताजी के ऊपर छोड़ दिया।

"सर्प ने उन्हें काट खाया। मैंने चुपके से उनके घाव पर बन्द लगा दिया था, पर वह मरे हुए व्यक्ति का बहाना करते रहे। सांप ने चाण्डाल को भी काटा था और वह मर गया था। इस कारण राजा को मन्त्री कामपाल के मरने का पूर्ण विश्वास हो गया। उन्होंने माताजी को सती होने की आज्ञा दे दी। पूर्णभद्र की सहायता से हम लाश को घर ले आए और पिताजी की चिकित्सा कर उन्हें ठीक कर लिया। मुझे पाकर मेरे माता-पिता को अपार हर्ष हुआ।

"उधर पिताजी के सहायकों की कमी नहीं थी। हम सबने मिलकर एक सेना संगठित करली और सिंहघोष से युद्ध करने लगे। इसी बीच मैंने महल तक सुरंग खुदवाई। लेकिन वह सुरंग राजा सिंहघोष के कमरे में न जाकर वहां जा निकली, जहां कान्तिमती के भाई चण्डघोष की बेटी मणिकर्णिका रहती थी। उसका सब हाल जान कर मैं सिंहघोष के महल में पहुंचा और सोते को उठा लाया। अब राज्य हमारा हो गया। सिंहघोष को हमने नहीं छोड़ा। मेरी मां ने मेरा विवाह मणिकर्णिका से करा दिया। इस बात का वह बहुत पहले निश्चय कर चुकी थी। इसके बाद मैंने सुना कि अंगराज के राज्य पर आक्रमण होने की तैयारी है। उसकी सहायता करने के लिए मैं इधर आया और अब यहां आपके दर्शन पाकर कृतकृत्य हो उठा।"

यह कथा सुनकर राजवाहन बोले, "तुमने बड़ी बहादुरी का काम किया है, लेकिन अब सिंहघोष को छोड़ दो और मेरे पास भेज दो।" फिर वह प्रमति की ओर मुड़े, बोले, "अब तुम्हारी बारी है। तुम अपनी कहानी सुनाओ।"

१०. प्रमति की आपबीती

प्रमति ने नमस्कार किया और आपबीती सुनाने लगा—

"आपकी खोज में चलते-चलते मैं विन्ध्याचल की तराई में पहुंच गया। रात हो चली थी, सन्ध्या-वंदन आदि करके मैं वहीं सो गया। नींद में मैंने देखा कि मैं एक महल में पहुंच गया हूं। वहां बहुत-सी सुन्दर नारियां सो रही हैं। मैं भी वहीं सो गया। किन्तु सबेरे आंख खुली तो मैं उसी बियाबान जंगल में था। एक दुबली-पतली नारी मुझे जगा रही थी। वह देखने में दुर्बल थी; पर उसके नेत्रों में चमक थी। उसे देख कर मेरे मन में आप ही आप भक्ति-भाव उमड़ आया और मैंने उसके पैरों पर सिर रख कर नमस्कार किया। उसने भी मुझे अपने लड़के की तरह तुरन्त उठा कर छाती से लगा लिया। मेरा मस्तक चूमा। बेहद खुशी के कारण उसकी बाहें थरथरा गईं और पुत्र-स्नेह के कारण उसकी आंखों से आंसू बह चले, गला भर आया। उसने कहा, 'बेटा, मगध की रानी वसुमती ने शायद तुझे बताया होगा कि किस तरह मणिभद्र की लड़की उनकी गोद में बालक अर्थपाल को देकर चली गई थी। मैं वही स्त्री हूं और तेरी मां हूं। तेरे पिता कामपाल हैं, सुमंत्र उनके बड़े भाई हैं। उनके पिता का नाम धर्मपाल था। तेरे पिता से मैं व्यर्थ ही रूठ गई थी। मैं इस जंगल में अकेली रहती हूं। घर छोड़ आने के कारण एक राक्षस ने मुझे शाप दिया था कि मैं साल भर तक तुझे तंग करूंगा। साल पूरा होने पर वह उतर गया और मैं जाने लगी; पर तभी तू आ गया। तूने

यहां के देवी-देवताओं से शरण मांगी। मैं तुझे अकेला कैसे छोड़ती? सोते-सोते को उठा ले गई और रास्ते में श्रावस्ती नरेश के महल में सुला दिया और मन्दिर में गई। वहां पार्वती ने मुझे पति के पास जाने को कहा। मैं वहीं जा रही हूं।' उसकी ये सब बातें सुनकर मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। वह भी मुझे बार-बार प्यार करके वहां से चली गई।

"उसके जाने के बाद मुझे स्वप्न में मिलने-वाली राजकुमारी का ध्यान हो आया। उससे मिलने के लिए मैं तुरन्त श्रावस्ती की ओर चल दिया। जाते-जाते रास्ते में सौदागरों का एक भारी काफला मिला। इन लोगों ने जहां पड़ाव डाला था, उस जगह मुर्गों के दंगल के कारण बड़ा हो-हल्ला मच रहा था। मैं भी भीड़ में घुसकर तमाशा देखने लगा। मेरे पास एक बूढ़ा ब्राह्मण बैठा हुआ था। बातों-ही-बातों में मेरी उससे दोस्ती हो गई। लड़ाई के अन्त में पछाही मुर्गे की जीत हुई। वह बूढ़ा ब्राह्मण भी पछांह का था। वह अपने देश के मुर्गे की जीत पर बहुत खुश हुआ। वह बहुत उदार और प्रसन्नचित्त आदमी था। मुझे अपने साथ डेरे पर ले गया। अगले दिन जब मैं श्रावस्ती की ओर चला तो थोड़ी दूर तक वह मेरे साथ आया और लौटते समय बोला, 'अच्छा भाई, मैं [illegible] हूं। कभी काम पड़े तो मुझे याद करना।'

"मैं चलते चलते श्रावस्ती जा पहुंचा और

थकान के कारण नगर के बाहर ही बाग में, बेलों के एक कुंज में जाकर सो गया। कुछ समय बाद हंसों की-सी बोली सुनकर मेरी नींद खुली। देखा कि एक युवती आ रही है। उसके हाथ में एक चित्र था और उस चित्र के व्यक्ति से वह मेरा [illegible] कर रही थी। कुछ बातचीत के बाद वह मुझे अपने घर ले गई। उस चित्र से और उसकी बातों से मैं समझ गया कि यह युवती श्रावस्ती की राजकुमारी की सहेली है। मैंने उससे वह चित्र ले लिया और स्वप्न के आधार पर उस चित्रवाले व्यक्ति के पास ही ठीक राजकुमारी के समान चित्र बना दिया। अब तो उसने मुझसे सब बातें पूछीं। मैंने भी सबकुछ बता दिया। राजकुमारी मेरी याद में बड़ी परेशान थी। यह जान कर मैंने उस युवती को धीरज बंधाया।

"वहां से लौट कर मैं फिर उस ब्राह्मण के पास आया। उसे सब कथा सुनाई और उसी ब्राह्मण की सहायता से उसकी लड़की बन कर रनिवास में रहने लगा। मुझे अपनी बेटी बताकर वह कुछ दिन के लिए राजा के पास छोड़ गया था। कुछ समय बाद मैं वहां से गायब हो गया और इस बार ब्राह्मण का होने वाला दामाद बन कर राजा के पास गया। ब्राह्मण ने राजा से लड़की मांगी। तभी पता लगा कि लड़की गायब है। राजा सन्नाटे में आ गये। ब्राह्मण बोला, 'महाराज, मैं तो इस नवयुवक को अपना दामाद मान चुका हूं। अब मेरी लड़की नहीं मिल

रही है। मैं भी आत्महत्या करूंगा।' इस प्रतिज्ञा से राजा और भी घबरा उठा। उसने ब्राह्मण की बहुत खुशामद की। अंत में ब्राह्मण ने कहा, 'अच्छा राजन्, मैं आपकी कन्या नवमालिका से ही इस लड़के का विवाह करके संतोष करूंगा।' राजा को लाचार होकर यह बात माननी पड़ी और मेरा विवाह इस प्रकार श्रावस्ती के राजा धर्मवर्धन की लड़की नवमालिका के साथ हो गया। राजा के कोई पुत्र नहीं था। उसका राजपाट भी मुझे ही मिला।

"फिर जब मुझे चम्पा के महाराज को सहायता देने की आवश्यकता का पता लगा तो सब सेना लेकर मैं यहां आ गया। यहां आपके दर्शन करके बड़ी प्रसन्नता हुई।"

अपनी यह आपबीती कहकर प्रमति चुप हो गया। राजवाहन ने प्रमति की बड़ाई की और फिर मित्रगुप्त की ओर देखकर बोले, "अच्छा, अब आप यहां पधारिए और अपनी रामकहानी कहिए।"

११. मित्रगुप्त की आपबीती

मित्रगुप्त अपना हाल सुनाते हुए कहने लगे—

"घूमते-फिरते मैं सुम्हदेश की राजनगरी दामलिप्ति में पहुंचा। वहां एक बाग में एक चिन्तित-वदन कलाकार वीणा बजा कर मन बहला रहा था। मैं चुपचाप उसके पास बैठ गया और अवसर

पाकर मैंने उसकी उदासी का कारण जानना चाहा। उसका नाम कोषदास था। उसने मुझे भला आदमी जानकर प्रेम से बैठाया और कहने लगा, 'मित्र, बात यह है कि सुम्हदेश के राजा तुंगधन्वा के कोई सन्तान नहीं थी। वह विन्ध्यवासिनी के इस मन्दिर में सन्तान-प्राप्ति के लिए आराधना करने लगे। एक दिन देवी ने उन्हें सपने में बताया कि तेरे एक पुत्र होगा और एक कन्या। यह पुत्र अपने बहनोई की कृपा पर जिन्दगी बितायगा। इस कन्या को चाहिए कि सातवें बरस से लेकर अपना ब्याह होने तक हर महीने मेरे सामने कन्दुक-नृत्य किया करे और योग्य पति की प्राप्ति के लिए मेरी पूजा करती रहे।'

"समय आने पर रानी मेदिनी के एक लड़का और एक लड़की हुई। लड़के का नाम भीमधन्वा और लड़की का नाम कंदुकवती रखा गया। आज वही कन्दुकवती देवी के सामने खेल दिखायगी। इसी राजकुमारी की सहेली चन्द्रसेना को मैं बहुत चाहता हूं; किन्तु राजकुमार भीमधन्वा मेरे काम में बाधा डालता है।

"वह आदमी इस प्रकार कह ही रहा था कि इतने में एक स्त्री उसके पास आकर बैठ गई। वह चन्द्रसेना ही थी। उनकी बातों से मैं समझ गया कि उन दोनों में सच्चा प्रेम है। मैंने उनकी हर तरह से सहायता करने का वचन दिया।

"इसके बाद हमें राजकुमारी का नाच देखने का न्यौता देकर वह चली गई। हम दोनों भी पीछे-पीछे

वहीं पहुंचे। मन्दिर के सामने एक ऊंचा-सा चबूतरा बना था। उसपर कीमती नग जड़े थे। वहां राजकुमारी खड़ी थी। उसका रूप देखकर मैं चकित रह गया।

"नृत्य का समय हो जाने पर राजकुमारी ने आगे की अंगुलियों से धरती को छुआ और फिर बड़ी शान के साथ तनिक झुक कर भगवती विन्ध्यवासिनी को प्रणाम किया। इसके बाद उसने एक गेंद उठा ली और फिर तो तरह-तरह के सुन्दर करतब दिखा कर वह देर तक खेलती रही। उन खेलों को देख कर मुझपर नशा-सा छाने लगा। वह खेल ही नहीं था, एक सच्चा कला-प्रदर्शन था। उसकी समाप्ति पर उसने देवी विन्ध्यवासिनी की पूजा की और सब सखी-सहेलियों को साथ लेकर लौट चली। जाते समय उसने मेरी ओर देखा और मेरा मन उसी के साथ चला गया। किन्तु थोड़े ही समय में भीमधन्वा को इन सब बातों का पता लग गया। वह बन वटी प्रेम दिखा कर मुझे महल में ले गया। वहां उसने अपने नौकर-चाकरों की सहायता से मुझे पकड़ लिया और समुद्र में फिकवा दिया। किन्तु भाग्य साथ दे रहा था। जिस ओर मैं बहा जा रहा था उसी ओर से एक जहाज चला आ रहा था। उसके नाविकों ने दया कर के मुझे बचा लिया। वे मुसलमान थे।

"हट्टा-कट्टा आदमी समझ कर वे लोग मुझे अंगूर की बेलें सींचने के लिए, गुलाम बनाने की बात सोचने लगे। लेकिन कुछ ही देर में एक दूसरे बड़े जहाज

ने हमारे जहाज पर हमला कर दिया। उस युद्ध में हमारे जहाज के मुसलमान हार गए। पर मैंने उन लोगों को दिलासा दिया और कहा कि यदि मुझे छोड़ दिया जाय तो मैं तुम्हें जिता सकता हूं। अपने आपको विपत्ति में समझ कर उन्होंने मुझे छोड़ दिया।

बंधन खुलते ही मैंने सींग के धनुष की मार से दुश्मनों को मार-मार कर गिराना आरम्भ कर दिया और अपना जहाज उनके जहाज से सटा दिया। कुछ ही देर में हमारे जहाज के साथियों ने दूसरे जहाज के नाविकों को बांध लिया। जब मैं उस जहाज के कप्तान को पकड़ने गया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह भीमधन्वा ही निकला। वह मुझे देख कर बहुत लज्जित हुआ। मेरी जंजीर से ही भीमधन्वा बांधा गया। आगे कुछ दूर चलने पर मालूम पड़ा कि जहाजों में ईंधन, मीठा पानी और अनाज समाप्त हो गया है। इस कारण बीच में एक टापू पर रुकना पड़ा। उतर कर मालूम हुआ कि वह टापू बहुत सुहावना है। पहाड़ी दृश्य, हरी-भरी घाटियां, मीठे पानी के झरने! देख कर रास्ते की थकान दूर हो गई। आगे बढ़ा तो क्या देखा कि एक प्राकृतिक तालाब बना हुआ है। उसमें कमल खिले हैं। जी भरकर स्नान किया और खूब दूधिया कमल ककड़ियां खाईं। किन्तु जब तालाब के बाहर निकला तो देखता क्या हूं कि सामने एक विकराल ब्रह्मराक्षस खड़ा है। वह बोला 'तू कौन है? कहां से आया है?' मैंने बेधड़क

होकर उसे सब कथा सुना दी और कहा, 'मैं ब्राह्मण हूं। तुम्हें आशीर्वाद देता हूं, भगवान् तुम्हारा मंगल करें।'

"वह राक्षस बोला, 'यह सब तो ठीक है, पर पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। अगर न दे सकोगे तो मैं तुम्हें खा जाऊंगा।'

"मैंने कहा, 'अच्छी बात है, पूछो।'

"इसके बाद हम दोनों के सवाल-जवाब हुए। वह प्रश्न पूछता और मैं उसका जवाब देता था :

कौन क्रूर है जग में?—अतिशय क्रूर हृदय है नारी।
गृही चाहता क्या?—प्रिय पत्नी गुणवंती हितकारी।
'काम' किसे कहते?—यह मन का वस है एक विकल्प।
कठिन कार्य का साधन क्या है?—बुद्धि-सहित संकल्प।

"इन चारों प्रश्नों के उत्तर में मैंने धूमिनी, गोमिनी, निम्बवती और नितम्बवती नारियों के उदाहरण दिए। मेरे उत्तर से ब्रह्मराक्षस को बहुत संतोष हुआ। उसने मेरी अच्छी आवभगत की।

"इतने में हम दोनों ने आकाश की ओर देखा कि एक राक्षस किसी नारी को पकड़ कर लिये जाता है। मैंने ब्रह्मराक्षस से उसे बचाने की प्रार्थना की। वह तुरन्त उससे भिड़ गया। युद्ध में वे दोनों मारे गये। इधर मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा जब मैंने देखा कि वह स्त्री कंदुकावती ही है। उसे लेकर मैं पहाड़ से नीचे आया और जहाज पर सवार हो गया। जब

हवा उल्टी दिशा में बहने लगी तब हमने जहाज का लंगर उठाया। जहाज फिर दामलिप्ती नगर में पहुंच गया। नगर में पहुंच कर देखा कि जनता रो-पीट रही है। पता लगा कि लड़का-लड़की के मर जाने पर राजा तुंग-धन्वा रानी के साथ उपवास करके प्राण छोड़ने के इरादे से गंगा के किनारे जा रहे हैं।

"यह सब सुनकर मैं सीधा महाराज के पास पहुंचा और सब हाल सुनाया। भीमधन्वा मेरे जहाज पर कैद था, कन्दुकावती भी मेरे साथ थी। मैंने दोनों को महाराज को सौंप दिया। इन्हें पाकर वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कन्दुकावती का विवाह मेरे साथ कर दिया। अब मेरे कहने से भीमधन्वा ने भी चन्द्रसेना का विवाह कोषदास के साथ होने में बाधा नहीं डाली।

"कुमार, इन सब कामों से छुट्टी पाते ही मुझे राजा सिंहवर्मा के संकट का पता लगा और मैं तुरन्त सहायता के लिए चल दिया। यहां आते ही आपके दर्शन हुए। मेरे लिए तो यह एक आनन्द मेला-सा लग रहा है।"

राजवाहन ने मित्रगुप्त की बड़ाई करते हुए मंत्रगुप्त की ओर देखा और उसकी आपबीती सुनने की इच्छा प्रकट की

१२. मन्त्रगुप्त की आपबीती

मन्त्रगुप्त कहने लगे, "राजकुमार, आपके इस तरह अचानक लोप हो जाने पर जब सब अलग-अलग

दिशाओं में [illegible] चले तो मैं भी आगे बढ़ा और चलते-चलते कलिंग राज की सीमा तक पहुंच गया। जिस समय मैं नगर के बाहर मरघट के पास पहुंचा, उस समय रात हो गई थी। लाचार हो कर वहीं एक पेड़ के नीचे सो रहा। रात बड़ी डरावनी थी, खूब हवा चल रही थी और कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। सवेरा हुआ, पर मेरी आंखों में नींद भरी हुई थी। और मैं खुमारी में पड़ा रहा। इतने में सुना कि एक नौकर और उसकी स्त्री किसी अघोरी की चर्चा कर रहे हैं। मैं उठकर उसके पीछे चल पड़ा। थोड़ी दूर पर क्या देखता हूं कि एक अघोरी बैठा है। वह हड्डियों की माला पहने था और उसकी सूरत डरावनी थी। उसके सामने अग्नि जल रही थी। वह मन्त्र बोल-बोल कर तरह-तरह की लकड़ियां, जौ, तिल आदि उसमें डालता जाता था। मैं पेड़ की आड़ से सब कुछ देखता रहा।

थोड़ी देर में उसने उस नौकर को राजा कर्दन की लड़की कनकलेखा को लाने की आज्ञा दी। नौकर ने ऐसा ही किया। उसे देखकर अघोरी बहुत प्रसन्न हुआ। वह उठा और उसकी बलि चढ़ाने के लिए एक तलवार रगड़-रगड़ कर तेज करने लगा। बेचारी राजकन्या बुरी तरह से सिर पीट रही थी; पर कौन सुनता था। लेकिन मुझसे यह काण्ड न देखा गया। जैसे ही उस अघोरी ने उसका सिर काटने के लिए तलवार उठाई मैं झपट कर सामने आ गया और उसके हाथ से तलवार छीन कर अघोरी को ही काट डाला। बाद में मुझे पता

लगा कि राजकन्या को लाने वाला आदमी राक्षस था तथा अघोरी के अनुचित कामों से दुखी था। वह मुझसे बोला, 'यह नीच इन्सान नहीं था, नरक का कीड़ा था। इसे आदमियों के बीच एक काला-कलूटा कौआ समझिए। आपने अच्छा किया जो इसे मार डाला। अब आप आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी क्या सेवा करूं?'

"मैंने उससे राजकन्या को उसके महल में पहुंचा आने को कहा। यह सुनकर राजकुमारी की आंखों से आंसुओं की धार बहने लगी। पर वे खुशी के आंसू थे। वह मधुर स्वर से मुझसे बोली, 'महानुभाव, आपने इस दासी को मौत के मुंह से बचाया है। अब इसे अकेली क्यों छोड़ रहे हैं? मैं आपके चरणों की पूजा किया करूंगी। आप भी मेरे साथ चलने की कृपा करें।' उसकी ऐसी मीठी-मीठी बातें सुन कर मैं विवश हो गया। मैंने राक्षस से कहा कि वह मुझे भी ले चले। फिर क्या था, राक्षस ने हम दोनों को पलक मारते-मारते महलों में पहुंचा दिया। बहुत दिनों तक वहां हम आनन्द-पूर्वक रहते रहे। किसी को कुछ पता नहीं लगा। एक बार राजा, उसका परिवार और सब नगर-निवासी समुद्र के किनारे आनन्द-विहार के लिए गये। वहां जाकर सब मस्त हो गये और तभी पड़ोसी आंध्र देश के राजा जयसिंह ने अचानक आक्रमण करके राजा-रानी और कनकलता को पकड़ लिया। मैं चिंता में पड गया कि क्या किया जाय?

कुछ समय बाद आंध्रदेश का एक ब्राह्मण मुझे मिला वह अपने देश की बहुत-सी बातें बताने लगा। उसने बतलाया कि आंध्रदेश का राजा जयसिंह कनकलता से विवाह करना चाहता है; किन्तु राजकुमारी किसी यक्ष के वश में है, इस कारण राजा कुछ नहीं कर पाता है। बस मुझे एक उपाय सूझा। मैंने जटाएं बनाईं और पहुंचे हुए साधु का रूप बना कर आंध्र देश पहुंचा। राजधानी में पहुंच कर मैंने कुछ चेले भी इकट्ठा कर लिये और एक तालाब के किनारे धूनी रमा कर बैठ गया। शिष्य-मण्डली मेरा यश फैलाने लगी और मेरे त्याग की बड़ाई भी होने लगी, यहां तक कि राजा के कानों तक मेरी करामातों की बातें पहुंच गईं। वह तो यक्ष को भगाना चाहते ही थे। वह भी मेरे पास आने लगे और मेरी पूजा करने लगे। एक दिन उन्होंने अपने मन की बात मेरे सामने रक्खी। मैंने राजा से अर्धरात्री में मंत्रों से शुद्ध किये हुए तालाब में स्नान करने को कहा और बतलाया कि ऐसा करने से वह सुन्दर हो जायगा। राजा मान गया। तीन दिन बाद ऐसा करना निश्चित हुआ। इस बीच मैंने एक बियाबान जगह से तालाब तक एक सुरंग बनाई। मैंने राजा से यह भी कहा कि साधु-संत एक स्थान पर बहुत दिनों तक नहीं रहते, इसलिए मैं अब यहां से चला जाऊंगा। राजा मेरे त्याग से बहुत प्रसन्न हुआ। मैं विदा लेकर जंगल में सुरंग वाले मार्ग से ठीक राजा के मुहूर्त्त

वाले समय में तालाब में घुसा । उधर जब राजा ने डुबकी लगाई तो मैंने भीतर-ही-भीतर उसे पकड़ लिया और मार डाला । जब मैं बाहर निकला तो अन्य राजकर्मचारियों ने मुझे मंत्र-बल से बदला हुआ राजा समझ कर मेरा आदर किया । मैं आदरपूर्वक महलों में ले जाया गया ।

"दूसरे दिन दरबार लगा। उस दिन मुझे राजमहल में कनकलता की पक्की सहेली शशांकसेना मिली । मैंने अकेले में बुला कर उससे बातचीत की। वह सब रहस्य समझ गई । बहुत प्रसन्न हुई । इधर कलिंग के राजा कर्दन को भी मैंने जेल से छुड़ा दिया । कलिंग-नरेश ने प्रसन्न होकर मेरा विवाह कनकलता से कर दिया। इस प्रकार मैं एक तरह से कलिंग के साथ-साथ आंध्रदेश का भी राजा हो गया ।

"अब जब मैं इतने बड़े देशों का राजा हो गया तब मुझे अंगराज के राज्य पर आक्रमण का समाचार मिला। मैं तुरन्त एक भारी सेना लेकर उनकी सहायता करने के लिए दौड़ा। यहां आकर आपके दर्शन हो गये । मुझे इससे बढ़कर प्रसन्नता और क्या हो सकती है ।"

राजकुमार यह कहानी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और विश्रुत की ओर ऐसे देखा, मानो कह रहे हों, "आइये अब आपकी बारी है ।'

१३. विश्रुत की आपबीती

विश्रुत अपना हाल सुनाते हुए बोले :

"मैं आपकी खोज करते-करते विन्ध्याचल के जंगलों में जा पहुंचा। वहां एक कुंए के पास एक बालक मुझे मिला। उसकी अवस्था आठ वर्ष की थी और वह बहुत मलिन हालत में था। मुझे देख कर बोला, 'मेरी मदद कीजिए। मेरे साथ एक बूढ़ा था। वह मुझे पानी पिलाने की कोशिश में इस कुंए में गिर पड़ा।' मैंने किसी तरह उसे निकाला। फिर फल तोड़ कर खिलाए, पानी पिलाया। इसके बाद बूढ़े ने अपनी कहानी सुनाई।"

'विदर्भ देश में महाराजा भोज के वंशज पुण्यवर्मा राज्य करते थे। वह बड़े योग्य और पुण्यात्मा थे। उनके बाद उनके पुत्र अनन्तवर्मा गद्दी पर बैठे। वह भी प्रभावशाली थे; किन्तु राजनीति कम जानते थे। वृद्ध मंत्री के कहने पर उन्होंने उस ओर ध्यान देने का वचन दिया; किन्तु विहारभद्र नामक चापलूस दरबारी उन्हें आनन्द, भोग और आराम की बातों की ओर ही लगाये रखता था। वह कहा करता था कि वृद्ध मंत्री, पुरोहित, पंडित आदि अपने स्वार्थ के लिए धर्म, पूजा, परोपकार करने का उपदेश देते हैं। राजा का मुख्य काम आराम और मौज करना है। राज-काज के झंझट मंत्रियों को देखने चाहिए। उसकी बातें सुन-सुन कर राजा आलसी और विलासी होते गए। यह देखकर वृद्ध मंत्री वसुरक्षित चिन्ता में पड़ गए, पर बहुत सोच-

विचार कर वह अलग जा बैठे।

'इधर अश्मक देश के राजा ने अपने वृद्ध मंत्री इन्द्रपालित के लड़के चन्द्रपालित के साथ कुछ कलाकार स्त्रियां तथा राजनीति के भेद जानने वाले अनेक भेदिये विदर्भ राज्य का ठीक-ठीक पता लगाने भेजे। चन्द्रपालित ने अनन्तवर्मा को बुरे मार्ग की ओर ले जाने में पूरी मदद की। राजा की देखा-देखी प्रजा भी उधर ही बढ़ी। चारों तरफ अराजकता फैल गई। मौका पाकर अश्मकराज वसन्तभानु ने भील राजा भानुवर्मा, मुरल के राजा वीरसेन, ऋचीक नरेश एकवीर, कोंकणराज कुमारगुप्त, नासिकपति नागपाल और कुन्तल-नरेश अवन्तिदेव से मिल कर राज्य पर आक्रमण कर अनन्तवर्मा को कैदी बना लिया। यही नहीं, बाद में चालाकी से सब राजाओं को लड़ा कर वह लूट के सारे माल का मालिक बन गया। अब राज्य में केवल स्वामिभक्त मंत्री वसुरक्षित ही सुरक्षित रह गए थे। उन्होंने एक चुनी हुई सेना इकट्ठी की।

''यह कहते-कहते वृद्ध ने लड़के की ओर इशारा कर बताया, 'यह लड़का अनन्तवर्मा का पुत्र है। इसका नाम भास्करवर्मा है। मंत्री वसुरक्षित इसे, इसकी बहन और मां महारानी वसुन्धरा को लेकर सेना के साथ चलते हुये रास्ते में मर गये। महारानी वसुन्धरा महाराज अनन्तवर्मा के भाई मित्रवर्मा के पास चली गई; पर मित्रवर्मा के मन में पाप आ गया। रानी ने तब मुझे बुला कर इस बच्चे को मुझे सौंप दिया और देख-

भाल करने की प्रार्थना की। अब मैं इस बच्चे को दुश्मनों से बचाए फिर रहा हूं। महारानी अबतक अपनी लड़की मंजुवादिनी के साथ शत्रु के चंगुल में है। आप कृपा कर कुछ उपाय कीजिये जिससे इस बालक, इसकी माता और बहन का उद्धार हो सके।'

"मैं सोचने लगा कि क्या किया जाय? इतने में एक शिकारी से पता लगा कि चण्डवर्मा का भाई प्रचण्ड-वर्मा माहिष्मती जा रहा है। वह मित्रवर्मा की भतीजी मंजुवादिनी से विवाह करना चाहता है। उस शिकारी से मैंने दोस्ती करली और एक षड्यन्त्र रचा, जिसमें मित्रवर्मा मारा गया। इसके बाद महारानी ने प्रचण्डवर्मा को माहिष्मती बुला भेजा। उन्होंने उसे लड़की और राज दोनों देने की बात कही। यह सब मेरे कहने के अनुसार हो रहा था। मैं भी अघोरी के भेस में भास्करवर्मा को लेकर भीख मांगने निकला। रानी अपने बेटे को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई। प्रचण्डवर्मा आ चुका था। मैं बाजीगर बन कर उसके सम्मुख तमाशा दिखाने गया। अनेक खेल दिखाने के अनन्तर मैंने मौका पाकर उसको मार डाला और भीड़-भड़क्के में भाग निकला। रानी के लड़के भास्करवर्मा के मारे जाने की बात मैं पहले ही फैला चुका था। अब मैंने रानी की सहायता से उसको जीवित करने का षड्यन्त्र रचा और एक सुरंग में से होकर राजकुमार के साथ देवी के मन्दिर में प्रकट हुआ। जनता हैरान रह गई। मैंने अपने आप को देवी का भक्त प्रसिद्ध किया और राजकुमार को

देवी भवानी का पुत्र। रानी सब कुछ जानती थी। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने मंजुवादिनी का विवाह मुझसे कर दिया।

"इसके बाद मैंने राज्य की व्यवस्था ठीक करने की चेष्टा की। सबसे पहले मैंने बुद्धिमान और पंडित नागरिक आर्यकेतु को अपने गुट में मिलाया। प्रजा को इस बात पर विश्वास था ही कि राजकुमार को देवी ने अपना पुत्र बना लिया है। मैंने अश्मकराज के कर्मचारियों में भी फूट डलवा दी। उनमें से बहुत से मेरे साथ हो गये। इसपर अश्मकराज ने हमपर चढ़ाई कर दी। उस युद्ध में मैंने उसे मार डाला। इस प्रकार अश्मकराज्य भी बरार में मिला लिया गया। जनता मेरे इस कार्य से बहुत प्रसन्न थी। जब भास्कर-वर्मा को गद्दी पर बैठा दिया गया तब मुझे चैन आया। मैं इस देश से विदा होना चाहता था; किन्तु बन्धु भास्करवर्मा ने मेरा बहुत-बहुत उपकार माना और वह किसी भी हालत में मुझे छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। इतना ही नहीं उसने उड़ीसा का पूरा राज्य मुझे सौंप दिया। मैंने उसका भी सब प्रबन्ध नये सिरे से किया। इतने में अचानक हमें सिंहवर्मा ने सहायता के कार्य से अंगदेश बुलाया। मैं सेना लेकर यहां आया तो आपके दर्शनों का भी भारी लाभ हुआ। मैंने पिछले जन्म में अवश्य पुण्य किये थे।"

१४. उपस .ार

इस समय चम्प नगरी में अप .ारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त और विश्रुत इकट्ठे हो गये थे। राजकुमार राजवाहन यहां थे ही। उधर पाटलिपुत्र में सोमदत्त युवराज बनकर शासन-कार्य चला रहे थे। उन्हें भी बुला लिया गया। इस प्रकार नौ कुमार इकट्ठे हो गये। केवल ुष्पो.द्भव इन लोगों के साथ नहीं थे। ये नौ राज-पुत्र मिलकर चम्पा में जी भर कर आनन्दोत्सव मनाने लगे।

इसी बीच अचानक एक दिन महाराज राजहंस का पाटलिपुत्र से पत्र आया। महाराज को राजकुमार-सहित नौ राज ुत्रों के इकट्ठे होने का समाचार मिल चुका था। अतः उन्होंने सबको तुरन्त आने के सम्बन्ध में लिखा। महाराज के आदेश को उन लोगों ने बड़े आदर से शिरोधार्य किया और तुरन्त चल देने का निश्चय किया।

इसके बाद सब राजकुमारों ने अपने-अपने देशों की व्यवस्था की और योग्य क[illegible]ों को अच्छे-अच्छे पद दिये। एक दिन शुभ मुहूर्त में सब कुमारों ने मालव की ओर प्रस्थान किया। यद्यपि मालव-राज बड़े शक्तिशाली थे, तथापि इन सबने उन्हें शीघ्र ही हरा दिया। राजवाहन ने अवन्ति ुन्दरी को साथ लिया और पुष्पोद्भव को छुड़ाया। वह मालवा के मंत्री की कैद में थे। सब पाटलिपुत्र पहुंचे। सबने मिलकर म .राज राजहंस और महारानी वसुमति के चरण छुए। उनके आनन्द

का पारावार न रहा। दस-के-दस पुत्र उन्हें मिल गये।

उन लोगों ने फिर देश-देशान्तरों को जीता। यथासमय गुरु वामदेव की आज्ञा से महाराज ने युवराज राजवाहन का राज्यतिलक किया और सब राज-काज उनको सौंप कर अपना समय धार्मिक कार्यों में लगाने लगे। सब कुमार भी राजवाहन की आज्ञा लेकर अपने-अपने राज्यों को चले गए; पर उनका आना जाना बराबर बना रहा।

इस प्रकार उन्होंने अच्छी तरह पृथ्वी पर राज्य किया। उनमें आपस में एका था, इसीलिए उन्होंने ऐसे सुख उठाये जो देवताओं को भी मिलने कठिन थे।

●

'संस्कृत साहित्य-सौरभ'

की

पुस्तकें

१. कादम्बरी

२. उत्तररामचरित

३. वेणी-संहार

४. शकुन्तला

५. मृच्छकटिक

६. मुद्राराक्षस

७. नलोदय

८. रघुवंश

९. नागानन्द

१०. मालविकाग्निमित्र

११. स्वप्नवासवदत्ता

१२. हर्ष-चरित

१३. किरातार्जुनीय

१४. दशकुमार-चरित : भाग १

१५. दशकुमार-चरित : भाग २

१६. विक्रमोर्वशी

१७. मेघदूत

मालतीमाधव

मूल्य प्रत्येक का छः आना

१५

छः आना

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१६

कालिदास-कृत

विक्रमोर्वशी

●

श्री विष्णु प्रभाकर

द्वारा

कथासार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

●

१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५५
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

संस्कृत-सा ित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट र चनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें और इस कार्य को संस्कृत-प्रेमी श्री [illegible] से तभी प्रारम्भ भी करा दिया था। उन्होंने कई ग्रन्थों का कथासार हमारे लिए कर दिया था। हिन्दी के पाठकों की सेवा में उस तथा कुछ अन्य सामग्री को स म्पादित करके उपस्थित किया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

कालिदास के तीन नाटक प्रसिद्ध हैं मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी और शकुंतला। इनमें से पहले और तीसरे नाटक का कथासार हम इस माला में प्रस्तुत कर चुके हैं। विक्रमोर्वशी कालक्रम से मालविकाग्निमित्र के बाद लिखा गया माना जाता है। इस नाटक या त्रोटक में चन्द्रवंश के प्रतापी महाराज पुरुरवा और देवलोक की अप्सरा उर्वशी के प्रेम और वियोग का वर्णन है। इस कथा का वर्णन वेद और ब्राह्मण-ग्रंथों में आया है। आर्यों के प्राचीन इतिहास पर इससे अच्छा प्रकाश पड़ता है। पुरुरवा और उर्वशी के पुत्र आयु से ही आर्यों की चन्द्रवंशी शाखा आगे चली है।

इसी प्राचीन कथा को लेकर कवि ने इस नाटक की रचना की है। कवि की अद्भुत कल्पना-शक्ति ने इस साधारण-सी कथा में वह रस पैदा किया है कि पाठक आनन्द से विभोर हो उठता है। क्या रस, क्या भाषा-सौंदर्य, क्या संगीत सभी दृष्टियों से यह एक सफल रचना है। संगीत इस नाटक की विशेषता है। यह नाटक शकुंतला के समान महान रचना नहीं है; लेकिन पात्रों की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म मनोभावनाओं को संगीत-विज्ञान के साथ प्रकट करने में जो सफलता कवि को मिली है, वह भी साधारण नहीं है।

जैसा कि इस माला की दूसरी पुस्तकों की भूमिका में लिखा जा चुका है, कालिदास के समय और जन्म-स्थान के बारे में बहुत मतभेद है। इनका समय विक्रमी सम्वत् की नवम शताब्दी से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक माना जाता है। पर वह कभी हुए हों, कहीं हुए हों, उनका नाम अमर है और उनका स्थान वाल्मीकि और व्यास की परम्परा में है।

—सम्पादक

विक्रमोर्वशी

: १ :

एक बार देवलोक की परम सुन्दरी अप्सरा उर्वशी अपनी सखियों के साथ कुबेर के भवन से लौट रही थी। मार्ग में केशी दैत्य ने उन्हें देख लिया और तब उसे उसकी सखी चित्रलेखा सहित वह बीच रास्ते से ही पकड़ कर ले गया। यह देखकर दूसरी अप्सराएं सहायता के लिए पुकारने लगीं, "आर्यो! जो कोई भी देवताओं का मित्र हो और आकाश में आ-जा सके, वह आकर हमारी रक्षा करे।" उसी समय प्रतिष्ठान देश के राजा पुरुरवा भगवान सूर्य की उपासना करके उधर से ही लौट रहे थे। उन्होंने यह करुण पुकार सुनी तो तुरन्त अप्सराओं के पास जा पहुंचे। उन्हें ढाढ़स बंधाया और जिस ओर वह दुष्ट दैत्य उर्वशी को ले गया था, उसी ओर अपना रथ हांकने की आज्ञा दी। अप्सराएं जानती थीं कि पुरुरवा चन्द्रवंश के प्रतापी राजा हैं और जब-जब देवताओं की विजय के लिए युद्ध करना होता है तब-तब इन्द्र इन्हीं को, बड़े आदर

के साथ बुला कर अपना सेनापति बनाते हैं। इस बात से उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ और वे उत्सुकता से उनके लौटने की राह देखने लगीं।

उधर राजा पुरूरवा ने बहुत शीघ्र ही राक्षसों को मार भगाया और उर्वशी को लेकर वह अप्सराओं की ओर लौट चले। लेकिन रास्ते में जब उर्वशी को होश आया और उसे पता लगा कि वह राक्षसों की कैद से छूट गई है, तो वह समझी कि यह काम इन्द्र का है। परन्तु चित्रलेखा ने उसे बताया कि वह राजा पुरूरवा की कृपा से मुक्त हुई है। यह सुनकर उर्वशी ने सहसा राजा की ओर देखा, उसका मन पुलक उठा। राजा भी इस अनोखे रूप को देखकर मन ही मन उसे सराहने लगे।

अप्सराएं उर्वशी को फिर से अपने बीच में पाकर बड़ी प्रसन्न हुईं और गद्‌गद् होकर राजा के लिए मंगल कामना करने लगीं, "महाराज सैंकड़ों कल्पों तक पृथ्वी का पालन करते रहें।" इसी समय गन्धर्वराज चित्ररथ वहां आ पहुंचे। उन्होंने बताया कि जब इन्द्र को नारद से इस दुर्घटना का पता लगा, तो उन्होंने गन्धर्वों की सेना को आज्ञा दी, "तुरन्त जाकर उर्वशी को छुड़ा लाओ।" वे चले लेकिन मार्ग में ही चारण मिल गये, जो

राजा पुरुरवा की विजय के गीत गा रहे थे। इसलिए वह भी उधर चले आये। पुरुरवा और चित्ररथ पुराने मित्र थे। बड़े प्रेम से मिले। चित्ररथ ने उनसे कहा, "अब आप उर्वशी को लेकर हमारे साथ देवराज इन्द्र के पास चलिए। सचमुच आपने उनका बड़ा भारी उपकार किया है।" लेकिन विनयी राजा ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इसे इन्द्र की कृपा ही माना। बोले, "मित्र! इस समय तो मैं देवराज इन्द्र के दर्शन नहीं कर सकूंगा। इसलिए आप ही इन्हें स्वामी के पास पहुंचा आइए।"

चलते समय लाज के कारण उर्वशी राजा से विदा नहीं मांग सकी। उसकी आज्ञा से चित्रलेखा को ही यह काम करना पड़ा, "महाराज! उर्वशी कहती है कि महाराज की आज्ञा से मैं उनकी कीर्ति को अपनी सखी बना कर इन्द्रलोक ले जाना चाहती हूं।" राजा ने उत्तर दिया, "जाइये परन्तु फिर दर्शन अवश्य दीजिये।'

उर्वशी जा रही थी, पर उसका मन उसे पीछे खींच रहा था। मानो उसकी सहायता करने के लिए ही उसकी वैजयन्ती की माला लता में उलझ गई। उसने चित्रलेखा से सहायता की प्रार्थना की और अपने आप

पीछे मुड़कर राजा की ओर देखने लगी। चित्रलेखा सब कुछ समझती थी। बोली, "यह तो छूटती नहीं दिखाई देती, फिर भी कोशिश कर देखती हूं।" उर्वशी ने हंसते हुए कहा, "प्यारी सखी। अपने ये शब्द याद रखना। भूलना मत।"

राजा का मन भी उधर ही लगा हुआ था। जबतक वे सब उड़ न गई, तबतक वह उधर ही देखते रहे। उसके बाद बरबस रथ पर चढ़कर वह भी अपनी राजधानी की ओर लौट गये।

: २ :

महाराज राजधानी लौट तो आये; पर मन उनका किसी काम में नहीं लगता था। वह अनमने-से रहते थे। उनकी रानी ने भी, जो काशीनरेश की कन्या थी, इस उदासी को देखा और अपनी दासी को आज्ञा दी कि वह राजा के मित्र विदूषक माणवक से इस उदासी का कारण पूछकर आये। दासी का नाम निपुणिका था। वह अपने काम में भी निपुण थी। उसने बहुत शीघ्र इस बात का पता लगा लिया कि महाराज की इस उदासी का कारण उर्वशी है। विदूषक के पेट में

राजा के गुप्त प्रेम की बातें भला कैसे पच सकती थीं। यही नहीं, रानी का भला बनने के लिए उसने यह भी कहा कि वह राजा को इस मृगतृष्णा से बचाने के लिए कोशिश करते-करते थक गया है। यह समाचार देने के लिए निपुणिका तुरन्त महारानी के पास चली गई और विदूषक डरता-डरता महाराज के पास पहुंचा। तीसरे पहर का समय था। राजकाज से छुट्टी पाकर महाराज विश्राम के लिए जा रहे थे। मन उनका उदास था ही। विदूषक परिहासादि से अनेक प्रकार उनका मन बहलाने की कोशिश करने लगा, पर सब व्यर्थ हुआ। प्रमद वन में भी उनका मन नहीं लगा। जी उलटा भारी हो आया। उस समय वसन्त ऋतु थी। आम के पेड़ों में कोंपलें फूट आई थीं। कुरबक और अशोक के फूल खिल रहे थे। भौंरों के उड़ने से जगह-जगह फूल बिखरे पड़े थे; लेकिन उर्वशी की सुन्दरता ने उनपर कुछ ऐसा जादू कर दिया था कि उनकी आंखों को फूलों के भार से झुकी हुई लताएं और कोमल पौधे भी अच्छे नहीं लगते थे। इसलिए उन्होंने विदूषक से कहा, "कोई ऐसा उपाय सोचो कि मेरे मन की साध पूरी हो सके।"

विदूषक ऐसा उपाय सोचने का नाटक कर

ही रहा था कि अच्छे शकुन होने लगे और चित्रलेखा के साथ उर्वशी ने वहां प्रवेश किया। उन्होंने माया के वस्त्र ओढ़ रखे थे, इसलिए उन्हें कोई देख नहीं सकता था, वे सबको देख सकती थीं। जब प्रमद वन में उतर कर उन्होंने राजा को बैठे देखा तो चित्रलेखा बोली, "सखी! जैसे नया चांद चांदनी की राह देखता है वैसे ही ये भी तेरे आने की बाट जोह रहे हैं।" उर्वशी को उस दिन राजा पहले से भी सुन्दर लगे।

लेकिन उन्होंने अपने आपको प्रगट नहीं किया। महाराज के पास खड़े होकर उनकी बातें सुनने लगीं। विदूषक तब उन्हें अपने सोचे हुए उपाय के बारे में बता रहा था। बोला, "या तो आप सो जाइये, जिससे सपने में उर्वशी से भेंट हो सके। या फिर चित्र-फलक पर उसका चित्र बनाइये और उसे एकटक देखते रहिए।" राजा ने उत्तर दिया कि ये दोनों ही बातें नहीं हो सकतीं। मन इतना दुखी है कि नींद आ ही नहीं सकती। आंखों में बार-बार आंसू आ जाने के कारण चित्र का पूरा होना भी सम्भव नहीं है।

इसी तरह की बातें सुनकर उर्वशी को विश्वास हो गया कि महाराज उसी के प्रेम के कारण इतने दुखी

हैं; पर वह अभी प्रगट नहीं होना चाहती थी। इसलिए उसने भोजपत्र पर महाराज की शंकाओं के उत्तर में एक प्रेमपत्र लिखा और उनके सामने फेंक दिया। महाराज ने उस पत्र को पढ़ा तो पुलक उठे। उन्हें लगा जैसे वे दोनों आमने-सामने खड़े होकर बातें कर रहे हैं। कहीं वह पत्र उनकी उंगलियों के पसीने से पुछ न जाये, इस डर से उसे उन्होंने विदूषक को सौंप दिया। उर्वशी को यह सब देख-सुन कर बड़ा सन्तोष हुआ; पर वह अब भी सामने आने में झिझक रही थी। इसलिए पहले उसने चित्रलेखा को भेजा। पर जब महाराज के मुंह से उसने सुना कि दोनों ओर प्रेम एक-जैसा ही बढ़ा हुआ है तो वह भी प्रगट हो गई। आगे बढ़कर उसने महाराज का जय-जयकार किया। महाराज उर्वशी को देखकर बड़े प्रसन्न हुए; लेकिन अभी वे दो बातें भी नहीं कर पाये थे कि उन्होंने एक देवदूत का स्वर सुना। वह कह रहा था, "चित्रलेखा! उर्वशी को शीघ्र ले आओ। भरत मुनि ने तुम लोगों को आठों रसों से पूर्ण जिस नाटक की शिक्षा दे रखी है, उसी का सुन्दर अभिनय देवराज इन्द्र और लोक-पाल देखना चाहते हैं।"

यह सुनकर चित्रलेखा ने उर्वशी से कहा, "तुमने

देवदूत के वचन सुने । अब महाराज से विदा लो ।"
लेकिन उर्वशी इतनी दुखी हो रही थी कि बोल न
सकी । चित्रलेखा ने ही उसकी ओर से निवेदन किया,
"महाराज, उर्वशी प्रार्थना करती है कि मैं पराधीन
हूं । जाने के लिए महाराज की आज्ञा चाहती हूं, जिससे
देवताओं का अपराध करने से बच सकूं ।"

महाराज भी दुखी हो रहे थे । बड़ी कठिनता से
बोल सके, "भला मैं आपके स्वामी की आज्ञा का कैसे
विरोध कर सकता हूं, लेकिन मुझे भूलिएगा नहीं ।"

महाराज की ओर बार-बार देखती हुई उर्वशी
अपनी सखी के साथ वहां से चली गई । उसके जाने
के बाद विदूषक को पता लगा कि महाराज ने उसे
उर्वशी का जो पत्र रखने को दिया था, वह कहीं उड़
गया है । वह डरने लगा कि कहीं महाराज उसे मांग
न बैठें । यही हुआ भी । पत्र न पाकर महाराज बड़े
क्रुद्ध हुए और तुरन्त उसे ढूंढ़ने की आज्ञा दी । यही
नहीं वह स्वयं भी उसे ढूंढ़ने लगे ।

इसी समय महारानी अपनी दासियों के साथ उधर
ही आ रही थी । उन्हें उर्वशी के प्रेम का पता लग
गया था । वह अपने कानों से महाराज की बातें सुन-

कर इस बात की सच्चाई को परखना चाहती थी। मार्ग में आते समय उन्हें उर्वशी का वही पत्र उड़ता हुआ मिल गया। उसे पढ़ने पर सब बातें उनकी समझ में आ गईं। उस पत्र को लेकर जब वह महाराज के पास पहुंची तो वे दोनों बड़ी व्यग्रता से उसे खोज रहे थे। महाराज कह रहे थे कि मैं तो सब प्रकार से लुट गया। यह सुनकर महारानी एकाएक आगे बढ़ी और बोली, "आर्यपुत्र! घबराइये नहीं। वह भोजपत्र यह रहा!"

महारानी को और उन्हीं के हाथ में उस पत्र को देखकर महाराज और भी घबरा उठे; लेकिन किसी तरह अपने को संभाल कर उन्होंने महारानी का स्वागत किया और कहा, "मैं इसे नहीं खोज रहा था, देवी। मुझे तो किसी और ही वस्तु की तलाश थी।" विदूषक ने भी अपने विनोद से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न किया, लेकिन वह क्यों माननेवाली थीं। बोली, "मैं ऐसे समय में आपके काम में बाधा डालने आ गई। मैंने अपराध किया। लीजिये मैं चली जाती हूं।" और वह गुस्से में भरकर लौट चलीं। महाराज पीछे-पीछे मनाने के लिए दौड़े। पैर तक पकड़े, पर महारानी इतनी भोली नहीं थीं कि महाराज की इन चिकनी-

चुपड़ी बातों में आ जाती। लेकिन पतिव्रता होने के कारण उन्होंने कोई कड़ा बर्ताव भी नहीं किया। ऐसा करती तो पछताना पड़ता। बस वह चली गई। महाराज भी अधीर होकर स्नान-भोजन के लिए चले गये। वह महारानी को अब भी पहले के समान ही प्यार करते थे; लेकिन जब वह हाथ-पैर जोड़ने पर भी नहीं मानी तो वह भी क्रुद्ध हो उठे।

: ३ :

देवसभा में भरत मुनि ने लक्ष्मी-स्वयंवर नाम का जो नाटक खेला था, उसके गीत स्वयं सरस्वती देवी ने बनाये थे। उसमें रसों का परिपाक इतना सुन्दर हुआ था कि देखते समय पूरी-की-पूरी सभा मगन हो उठती थी। लेकिन उस नाटक में उर्वशी ने बोलने में एक बड़ी भूल कर दी। जिस समय वारुणी बनी हुई मेनका ने, लक्ष्मी बनी हुई उर्वशी से पूछा, "सखी! यहां पर तीनों लोकों के एक से एक सुन्दर पुरुष, लोक-पाल और स्वयं विष्णु भगवान आये हुए हैं, इनमें तुम्हें कौन सबसे अधिक अच्छा लगता है?" उस समय उसे कहना चाहिए था 'पुरुषोत्तम'; पर उसके मुंह से निकल

गया 'पुरुरवा'। इसपर भरत मुनि ने उसे शाप दिया, "तूने मेरे सिखाए पाठ के अनुसार काम नहीं किया है, इसलिए तुझे यह दंड दिया जाता है कि तू स्वर्ग में नहीं रहने पावेगी।"

लेकिन नाटक के समाप्त हो जाने पर जब उर्वशी लज्जा से सिर नीचा किये खड़ी थी, तो सबके मन की बात जाननेवाले इन्द्र उसके पास गये और बोले, "जिसे तुम प्रेम करती हो, वह राजर्षि रणक्षेत्र में सदा मेरी सहायता करनेवाला है। कुछ उसका प्रिय भी करना ही चाहिए। इसलिए, जबतक वह तुम्हारी सन्तान का मुंह न देखे, तबतक तुम उसके साथ रह सकती हो।"

इधर काशीराज की कन्या महारानी ने मान छोड़कर एक व्रत करना शुरू किया और उसे सफल करने के लिए महाराज को बुला भेजा। कंचुकी यह सन्देश लेकर जब महाराज के पास पहुंचा तो सन्ध्या हो चली थी। राजद्वार बड़ा सुहावना लग रहा था। नींद में अलसाये हुए मोर ऐसे लगते थे जैसे किसी कुशल मूर्तिकार ने उन्हें पत्थर में अंकित कर दिया हो। जगह जगह संध्या के पूजन की तैयारी हो रही थी। दीप

सजाये जा रहे थे। अनेक दासियां दीपक लिये महाराज के चारों ओर चली आ रही थीं। इसी समय कंचुकी ने आगे बढ़कर महाराज की जय-जयकार की और कहा, "देव, देवी निवेदन करती हैं कि चन्द्रमा मणिहर्म्य-भवन में अच्छी तरह दिखाई देगा। इसलिए मेरी इच्छा है कि महाराज के साथ मैं वहीं से चन्द्रमा और रोहिणी का मिलन देखूं।" महाराज ने उत्तर दिया, "देवी से कहना कि जो वह कहेंगी वही मैं करूंगा।"

यह कहकर वह विदूषक के साथ मणिहर्म्य-भवन की ओर चल पड़े। चन्द्रमा उदय हो रहा था। उसे प्रणाम करके वे वहीं बैठ गये और उर्वशी के बारे में बातें करने लगे। उसी समय माया के वस्त्र ओढ़े उर्वशी भी चित्रलेखा के साथ उसी भवन की छत पर उतरी और उनकी बातें सुनने लगी; लेकिन जब वह प्रगट होने का विचार कर रही थी, तभी महारानी के आने की सूचना मिली। वह पूजा की सामग्री लिये और व्रत की वेशभूषा में अति सुन्दर लग रही थी। महाराज ने सोचा कि उस दिन मेरे मनाने पर भी जो रूठ कर चली गई थी, उसी का पछतावा महारानी को हो रहा है। व्रत के बहाने यह मान छोड़ कर मुझपर

प्रसन्न हो गई हैं।

महारानी ने आगे बढ़कर महाराज की जय-जयकार की और कहा, "मैं आर्यपुत्र को साथ लेकर एक विशेष व्रत करना चाहती हूं, इसलिए प्रार्थना है कि आप मेरे लिए कुछ देर कष्ट सहने की कृपा करें।" महाराज ने उत्तर में ऐसे प्रिय वचन कहे कि जिन्हें सुनकर महारानी मुस्करा उठी। उन्होंने सबसे पहले गन्ध-फूलादि से चन्द्रमा की किरणों की पूजा की, फिर पूजा के लड्डू विदूषक को देकर महाराज की पूजा की। उसके बाद बोली, "आज मैं रोहिणी और चन्द्रमा को साक्षी करके आर्यपुत्र को प्रसन्न कर रही हूं। आज से आर्यपुत्र जिस किसी स्त्री की इच्छा करेंगे और जो भी स्त्री आर्यपुत्र की पत्नी बनना चाहेगी, उसके साथ मैं सदा प्रेम करूंगी।"

यह सुनकर उर्वशी को बड़ा सन्तोष हुआ। महाराज बोले, "देवी! मुझे किसी दूसरे को दे दो या अपना दास बना कर रखो; पर तुम मुझे जो दूर समझ बैठी हो वह ठीक नहीं है।" महारानी ने उत्तर दिया, "दूर हो या न हो, पर मैंने जो व्रत करने का निश्चय किया था वह पूरा हो चुका है।"

यह कहकर वह दास-दासियों के साथ वहां से चली गई। महाराज ने रोकना चाहा; पर व्रत के कारण वह रुकी नहीं। उनके जाने के बाद महाराज फिर उर्वशी की याद करने लगे। उदार-हृदय पतिव्रता महारानी की कृपा से अब उनके मिलने में जो रुकावट थी वह भी दूर हो चुकी थी। उर्वशी ने, जो अबतक सबकुछ देख-सुन रही थी, इस सुन्दर अवसर से लाभ उठाया और वह प्रगट हो गई। उसने चुपचाप पीछे से आकर महाराज की आंखें मींच लीं। महाराज ने उसको तुरन्त पहचान लिया और अपने ही आसन पर बैठा लिया। तब उर्वशी ने अपनी सखी से कहा, "सखी ! देवी ने महाराज को मुझे दे दिया है, इसलिए मैं इनकी विवाहिता स्त्री के समान ही इनके पास बैठी हूं। तुम मुझे दुराचारिणी मत समझ बैठना।"

चित्रलेखा ने भी महाराज से अपनी सखी की भली प्रकार देखभाल करने की प्रार्थना की, जिससे वह स्वर्ग जाने के लिए घबरा न उठे। फिर सबसे मिल-भेंट कर वह स्वर्ग लौट गई।

इस प्रकार महाराज का मनोरथ पूरा हुआ। खुशी-खुशी वह भी विदूषक और उर्वशी के साथ वहां से अपने महल की ओर चले गये।

: ४ :

उर्वशी के आने के बाद महाराज पुरुरवा ने राज-काज मंत्रियों को सौंप दिया और स्वयं गंधमादन पर्वत पर चले गये। उर्वशी साथ ही थी। वहां वे बहुत दिन तक आनन्द मनाते रहे। एक दिन उर्वशी मंदाकिनी के तट पर बालू के पहाड़ बना बनाकर खेल रही थी कि अचानक उसने देखा—महाराज एक विद्याधर की परम सुन्दरी बेटी की ओर एकटक देख रहे हैं। बस वह इसी बात पर रूठ गई और रूठी भी ऐसी कि महाराज के बार-बार मनाने पर भी नहीं मानी। उन्हें छोड़ कर चली गई। वहां से चलकर वह कुमार-वन में आई। इस वन में स्त्रियों को आने की आज्ञा नहीं थी। ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर भगवान कार्त्तिकेय यहां रहते थे। उन्होंने यह नियम बना दिया था कि जो भी स्त्री यहां आयेगी वह लता बन जायगी। इस-लिए जैसे ही उर्वशी ने उस वन में प्रवेश किया, वह लता बन गई।

इधर महाराज उसके वियोग में पागल ही हो गये और अपने मन की व्यथा प्रगट करते हुए इधर-उधर घूमने लगे। कभी वह समझते कि कोई राक्षस उर्वशी

को उठाये लिये जा रहा है। बस वह उसे ललकारते; लेकिन तभी उन्हें पता लगता कि जिसे वह राक्षस समझे बैठे थे वह तो पानी से भरा हुआ बादल है। उन्होंने इन्द्रधनुष को गलती से राक्षस का धनुष समझ लिया है। ये बाण नहीं बरस रहे हैं, बूंदें टपक रही हैं और वह जो कसौटी पर सोने की रेखा के समान चमक रही है, वह भी उर्वशी नहीं है, बिजली है।

कभी सोचते, कहीं क्रोध में आकर वह अपने दैवी प्रभाव से छिप तो नहीं गई या कहीं स्वर्ग तो नहीं चली गई। कभी हरी घास पर पड़ी हुई बीरबहूटियों को देखकर यह समझते कि ये उसके ओठों के रंग से लाल हुए आंसुओं की बूंदें हैं। अवश्य वह इधर से ही गई है। कभी वह मोर को देख कर उससे उर्वशी का पता पूछते, "अरे मोर! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि अगर घूमते-फिरते तुमने मेरी पत्नी को देखा हो तो मुझे बता दो।"

लेकिन मोर उत्तर न देकर नाचने लगता। महाराज उसके पास से हटकर कोयल के पास जाते। पक्षियों में कोयल सबसे चतुर समझी जाती है। उसके आगे घुटने टेककर वह कहते, "हे मीठा बोलने वाली

सुन्दर कोयल ! यदि तुमने इधर-उधर घूमती हुई उर्वशी को देखा हो तो बता दो। तुम तो रूठी हुई स्त्रियों का मान दूर करनेवाली हो। तुम या तो उसे मेरे पास ले आओ या झटपट मुझे ही उसके पास पहुंचा दो। क्या कहा तुमने ? वह मुझसे क्यों रूठ गई है। मुझे तो एक भी बात ऐसी याद नहीं आती कि जिस-पर वह रूठी हो। अरे, स्त्रियां तो वैसे ही अपने पतियों पर शासन जमाया करती हैं। यह जरूरी नहीं कि पति कोई अपराध ही करे तभी वे क्रोध करेंगी।"

लेकिन कोयल भी इन बातों का क्या जवाब देती ! वह अपने काम में लगी रहती। दूसरे का दुख लोग कम समझते हैं। राजा कहते, "अच्छा बैठी रहो सुख से ! हम ही यहां से चले जाते हैं।"

फिर सहसा उन्हें दक्खिन की ओर बिछुओं की सी झनझन सुनाई देती। लेकिन पता लगता वह तो राजहंसों की कूक है जो बादलों की अंधियारी देख कर मानसरोवर जाने को उतावले हो रहे हैं। वह उनके पास जाकर कहते, "तुम मानसरोवर बाद में जाना। ये जो तुमने कमलनाल संभाली हैं, इन्हें भी अभी छोड़ दो। पहले तुम मुझे उर्वशी का समाचार

बनाओ। सज्जन लोग अपने मित्रों की सहायता करना अपने स्वार्थ से बढ़कर अच्छा समझते हैं। हे हंस! तुम तो ऐसे ही चलते हो, जैसे उर्वशी चलती है। तुमने उसकी चाल कहां से चुराई। अरे, तुम तो उड़ गये। (हंस कर) तुम समझ गये कि मैं चोरों को दण्ड देने-वाला राजा हूं। अच्छा चलूं, कहीं और खोजूं...।"

फिर वह चकवे के पास जा पहुंचते। उससे वही प्रश्न करते, लेकिन उन्हें लगता जैसे चकवा उनसे पूछ रहा है—"तुम कौन हो?" वह कहते, "अरे, तुम मुझे नहीं जानते? सूर्य मेरे नाना और चन्द्रमा मेरे दादा हैं। उर्वशी और धरती ने अपने आप मुझे अपना स्वामी बनाया है। मैं वही पुरूरवा हूं।" लेकिन चकवा भी चुप रहता। महाराज वहां से हटकर कमल पर मंडराते हुए भौरों से पूछने लगते। पर वे भी क्या जवाब देते! फिर उन्हें हाथी दिखाई दे जाता। उसके पास जाकर वह पूछते, "हे मतवाले हाथी! तुम दूर तक देख सकते हो। क्या तुमने सदा जवान रहनेवाली उर्वशी को देखा है। तुम मेरे समान बलवान हो। मैं राजाओं का स्वामी हूं। तुम गजों के स्वामी हो। तुम दिन-रात अपना दान यानी मद बहाया करते हो, मेरे यहां भी दिन-रात दान दिया जाता है। तुमसे मुझे

बड़ा स्नेह हो गया है । अच्छा, सुखी रहो । हम तो जा रहे हैं ।"

और फिर उनको दिखाई दे जाता एक सुहावना पर्वत । उसी से पूछने लगते, "हे पर्वतों के स्वामी ! क्या तुमने मुझसे बिछुड़ी हुई सुन्दरी उर्वशी को कहीं इस वन में देखा है ।" उन्हें ऐसा लगता जैसे पर्वतराज ने कुछ उत्तर दिया है । उन्हें खुशी होती; पर तभी मालूम होता कि वह पर्वतराज का उत्तर नहीं था, बल्कि पहाड़ की गुफा में टकरा कर निकलनेवाली उन्हीं के शब्दों की गूंज थी ।

यहां से हटे तो नदी दिखाई दे गई । उसी से उर्वशी की तुलना करने लगे । लेकिन जब वह भी कुछ नहीं बोली तो हिरन के पास जा पहुंचे । उसने भी उनकी बातें अनसुनी करके दूसरी ओर मुंह फेर लिया । ठीक ही है, जब खोटे दिन आते हैं तो सभी दुरदुराने लगते हैं । लेकिन तभी उन्होंने लाल अशोक के पेड़ को देखा । उससे भी वही प्रश्न किया और जब वह हवा में हिलने लगा तो समझे कि वह मना कर रहा है—उसने उर्वशी को नहीं देखा ।

इसी प्रकार पागलों की तरह प्रलाप करते हुए जब

वह यहां से मुड़े तो उन्हें एक पत्थर की दरार में लाल मणि-सा कुछ दिखाई दिया। सोचने लगे कि न तो यह शेर से मारे गये हाथी का मांस हो सकता है और न आग की चिनगारी। मांस इतना नहीं चमकता और चूंकि अभी भारी वर्षा होकर चुकी है, इसलिए आग के रहने का कोई सवाल ही नहीं उठता। यह तो अवश्य लाल अशोक के समान लाल मणि है। इसे देख कर मेरा मन ललचा रहा है।

यह सोचकर वह आगे बढ़े और मणि को निकाल लिया। लेकिन फिर ध्यान आया कि जब उर्वशी ही नहीं है तो मणि का क्या होगा! इसलिए उसे गिरा दिया। उसी समय नेपथ्य में से किसी की वाणी सुनाई दी, "वत्स! इसे ले लो, ले लो, यह मणि प्रियजनों को मिलानेवाली है और पार्वती के चरणों की लाली से बनी है। जो इसे अपने पास रखता है उसे वह शीघ्र ही प्रिय से मिलवा देती है।"

यह वाणी सुनकर महाराज चकित रह गये। उन्हें जान पड़ा कि मानो किसी मुनि ने यह कृपा की है। उन्होंने उस अज्ञात मुनि को धन्यवाद दिया और मणि को उठा लिया। इसी समय उनकी दृष्टि बिना

फूलवाली एक लता पर पड़ी। न जाने क्यों उनका मन उछल पड़ा। उन्हें सुख मिला। वह उन्हें उर्वशी के समान दिखाई पड़ी और जैसे ही उन्होंने उसे छुआ, उर्वशी सचमुच वहां आगई; पर उनकी आंखें बन्द थीं। उसी तरह कुछ देर बोलते रहे। जब आंखें खोलीं और उर्वशी को देखा तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उर्वशी भी रोने लगी और उन्हें धीरज बंधाने लगी। कुछ देर बाद जब महाराज की मूर्च्छा दूर हुई तो उन्हें कार्त्तिकेय के श्राप के कारण उर्वशी के लता बन जाने के रहस्य का पता लगा। यह भी पता लगा कि पार्वती के चरणों की लाली से पैदा होने वाली मणि से ही इस शाप से मुक्ति मिली है।

उर्वशी उनसे बार-बार क्षमा मांगने लगी, "मुझे क्षमा कर दीजिये, क्योंकि मैंने ही क्रोध करके आपको इतना कष्ट पहुंचाया।" महाराज बोले, "कल्याणी! तुम क्षमा क्यों मांगती हो! तुम्हें देखते ही मेरी आत्मा तक प्रसन्न हो गई है।" और फिर उन्होंने उसे वह मणि दिखाई, जिसके कारण उसका श्राप दूर हो गया था। उर्वशी ने उस मणि को सिर पर धारण किया तो उसके प्रकाश में उसका मुख अरुण-किरणों से चमकते हुए कमल के समान सुहावना लगने लगा।

इसी समय उर्वशी ने याद दिलाया, "हे प्रिय बोलने वाले! आप बहुत दिनों से प्रतिष्ठान पुरी से बाहर हैं। आपकी प्रजा इसके लिए मुझे कोस रही होगी। इसलिए आइये अब लौट चलें।"

महाराज ने उत्तर दिया, "जैसा तुम चाहो।" और फिर दोनों लौट पड़े।

: ५ :

नन्दन वन आदि देवताओं के वनों में घूमकर महाराज पुरुरवा फिर अपने नगर में लौट आये। नागरिकों ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया और वह प्रसन्न होकर राज करने लगे। सन्तान को छोड़ कर उन्हें अब और किसी बात की कमी नहीं थी। इन्हीं दिनों एक दिन एक सेवक महारानी के माथे की मणि ताड़ की पिटारी में रखे ला रहा था कि इतने में एक गिद्ध झपटा और उसे मांस का टुकड़ा समझकर उठा कर उड़ गया। यह समाचार पाकर महाराज आसन छोड़ कर दौड़ पड़े। पक्षी अभी दिखाई दे रहा था। उन्होंने अपना धनुषबाण लाने की आज्ञा दी।

लेकिन जबतक धनुष आया तबतक वह पक्षी

वाण की पहुंच से बाहर निकल चुका था और ऐसा लगने लगा था मानो रात के समय घने बादलों के दल के साथ मंगल तारा चमक रहा हो। यह देखकर महा-राज ने नगर में यह घोषणा करवाने की आज्ञा दी कि जब यह चोर पक्षी सन्ध्या को अपने घोंसले में पहुंचे तो इसकी खोज की जाय।

यह वही मणि थी, जिसके कारण उर्वशी और महाराज का मिलन हुआ था। इसलिए महाराज उसका विशेष आदर करते थे। वह यह बात विदूषक को बता ही रहे थे कि कंचुकी ने आकर महाराज की जय-जय-कार की। उसने कहा, "आपके क्रोध ने बाण बनकर इस पक्षी को मार डाला और इस मणि के साथ यह धरती पर गिर पड़ा।"

महाराज ने उस मणि को आग में शुद्ध करके पेटी में रखने की आज्ञा दी और यह जानने के लिए कि बाण किसका है उसपर अंकित नाम पढ़ने लगे। पढ़कर वह सोच में पड़ गये। उसपर लिखा हुआ था—यह बाण पुरुरवा और उर्वशी के धनुर्धारी पुत्र का है। उसका नाम आयु है और वह शत्रुओं के प्राण खींचनेवाला है।

विदूषक यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने

महाराज को बधाई दी; पर वह तो कुछ समझ ही नहीं पा रहे थे। यह पुत्र कैसे पैदा हुआ। वह तो कुछ जानते ही नहीं। शायद उर्वशी ने दैवी-शक्ति से इस बात को छिपा रखा हो। पर उसने पुत्र को क्यों छिपा रखा?

वह इसी उधेड़बुन में थे कि च्यवन ऋषि के आश्रम से एक कुमार को लिये किसी तपस्विनी के आने का समाचार मिला। महाराज ने उन्हें वहीं बुला भेजा और कुमार को देखते ही उनकी आंखें भर आईं। हृदय में प्रेम उमड़ पड़ा और उनका मन करने लगा कि उसे कसकर छाती से लगा लें। पर ऊपर से वह शान्त ही बने रहे। उन्होंने तापसी को प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर तापसी ने कुमार से कहा, "बेटा, अपने पिताजी को प्रणाम करो।"

कुमार ने ऐसा ही किया। महाराज ने उसे गद्-गद् होकर आशीर्वाद दिया और तब तापसी बोली, "महाराज। जब यह पुत्र पैदा हुआ तभी कुछ सोच-कर उर्वशी इसे मेरे पास छोड़ आई थी। क्षत्रिय-कुमार के जितने संस्कार होते हैं वे सब भगवान च्यवन ने करा दिये हैं। विद्याध्ययन के बाद धनुष चलाना भी सिखा दिया गया है; लेकिन आज जब यह फूल और

समिधा आदि लाने के लिए ऋषिकुमारों के साथ जा रहा था तो इसने आश्रम के नियमों के विरुद्ध काम कर डाला।"

विदूषक ने घबरा कर पूछा, "क्या कर डाला ?"

तापसी बोली, "एक गिद्ध मांस का टुकड़ा लिए हुए पेड़ पर बैठा था। उसपर लक्ष्य बांध कर इसने वाण चला दिया। जब भगवान च्यवन ने यह सुना तो उन्होंने उर्वशी की यह धरोहर उसे सौंप आने की आज्ञा दी। इसीलिए मैं उर्वशी से मिलने आई हूं।"

महाराज ने तुरन्त उर्वशी को बुला भेजा और पुत्र को गले से लगाकर प्यार करने लगे। उर्वशी ने आते ही दूर से उसे देखा तो सोच में पड़ गई; पर तापसी को उसने पहचान लिया। अब तो वह सबकुछ समझ गई। पिता के कहने पर जब पुत्र ने माता को प्रणाम किया तो उसने पुत्र को छाती से चिपका लिया। तापसी ने उसके स्वामी के सामने उसका पुत्र उसे सौंपते हुए कहा, "ठीक से पढ़-लिख कर अब यह कुमार कवच धारण करने योग्य हो गया है, इसलिए तुम्हारे स्वामी के सामने ही तुम्हारी धरोहर तुम्हें सौंप रही हूं। और अब जाना भी चाहती हूं। आश्रम का बहुत-सा काम रुका पड़ा है।"

जाते समय कुमार भी साथ जाने के लिए मचल उठा; पर जब सबने समझाय तो वह आश्रम-जैसी सरलता से तापसी से बोला, "तो आप बड़े-बड़े पंखों वाले मेरे उस मणिकण्ठ नाम के मोर को भेज देना। वह मेरी गोद में सोकर मेरे हाथों से अपना सिर खुजलाये जाने का आनन्द लिया करता था।"

तापसी हंस पड़ी और ऐसा ही करने का वचन देकर चली गई। महाराज पुत्र पाकर बड़े प्रसन्न हुए परन्तु उर्वशी रोने लगी। यह देखकर महाराज घबरा उठे और इस विषाद का कारण पूछने लगे। उर्वशी बोली, "बहुत दिन हुए, आपसे प्रेम करने पर भरत मुनि ने मुझे शाप दिया था। उस शाप से मैं बहुत घबरा गई थी। तब देवराज इन्द्र ने मुझे आज्ञा दी थी कि जब हमारे प्यारे मित्र राजा तुमसे उत्पन्न हुए पुत्र का मुंह देख लें तब तुम फिर मेरे पास लौट आना। आपसे विछोह होने के डर से ही मैं इस कुमार को पैदा होते ही च्यवन ऋषि के आश्रम में पढ़ाने-लिखाने के बहाने छोड़ आई थी। आज उन्होंने इसे पिता की सेवा करने के योग्य समझकर लौटा दिया है। बस आज तक ही मैं महाराज के साथ रह सकती थी।"

यह कथा सुनकर सबको बड़ा दुःख हुआ। महाराज

तो मूर्च्छित हो गये। जब जागे तो उन्होंने तुरन्त ही पुत्र को राज्य सौंप कर तपोवन में जाकर रहने की इच्छा प्रगट की। लेकिन इसी समय नारद मुनि ने वहां प्रवेश किया। आकाश से उतरते हुए पीली जटा वाले, कन्धे पर चन्द्रमा की कला के समान उजला जनेऊ और गले में मोतियों की माला पहने, वह ऐसे लगते थे जैसे सुनहरी शाखाओं वाला कोई चलता-फिरता कल्पवृक्ष चला आ रहा हो। पूजा-अभिवादन के बाद उन्होंने कहा कि मैं देवराज इन्द्र का सन्देशा लेकर आया हूं। वह अपनी दैवी शक्ति से सबके मन की बातें जाननेवाले हैं। उन्होंने जब देखा कि आप बन जाने की तैयारी कर रहे हैं तो उन्होंने कहलाया है—"तीनों कालों को जाननेवाले मुनियों ने भविष्यवाणी की है कि देवताओं और दानवों में भयंकर युद्ध होनेवाला है। युद्ध-विद्या में कुशल आप हम लोगों की सदा सहायता करते ही रहें इसलिए आप शस्त्र न छोड़ें। उर्वशी जीवन भर आपके साथ रहेगी।"

देवराज इन्द्र का यह सन्देशा सुनकर उर्वशी और पुरूरवा दोनों बहुत प्रसन्न हुए। इन्द्र ने कुमार आयु के युवराज बनने के उत्सव के लिए भी सामग्री भेजी थी। उसी से रम्भा ने आयु का अभिषेक किया। अभिषेक

के बाद कुमार ने सबको प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद पाया। लेकिन बड़ी महारानी वहां नहीं थी। इसलिए उर्वशी ने आयु से कहा, "चलो बेटा। बड़ी मां को प्रणाम कर आओ।" और वह उसे लेकर बड़ी महारानी के पास चली। महाराज बोले, "ठहरो, हम सब लोग साथ ही देवी के पास चलते हैं।" लेकिन चलने से पहले नारद मुनि ने उनसे पूछा, "हे राजन्। इन्द्र आपकी और कौन-सी इच्छा पूरी करें।"

राजा बोले, "इन्द्र की प्रसन्नता से बढ़कर और मुझे क्या चाहिए। फिर भी मैं चाहता हूं कि जो लक्ष्मी और सरस्वती सदा एक-दूसरे से रूठी रहती हैं, जिनका मिलकर रहना बड़ा कठिन है, वे दोनों, सज्जनों के कल्याण के लिए सदा एकसाथ रहने लगें। सब आपत्तियां दूर हो जांय, सब फलें-फूलें, सबके मनोरथ पूरे हों और सब कहीं सुख ही सुख फैल जाय।

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१७

कालिदास-कृत

मेघदूत

●

श्री विष्णु प्रभाकर

द्वारा

कथासार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

●

१९५९

सत्साहित्य - प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

●

दूसरी बार १९५६
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें, परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिन्दी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला की कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा है हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चन्द महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

[illegible]मिका

[illegible] के काव्य ग्रंथों में ऋतुसंहार, [illegible]मारसम्भव, रघुवंश और मेघदूत विशेष प्रसिद्ध हैं। रघुवंश का सार पाठकों तक पहुँच चुका है। कुमार-संभव भी शीघ्र प्रकाशित होगा।

मेघदूत खण्ड-काव्य है। [illegible] के एक यक्ष को किसी अपराध पर देश-निकाले का दण्ड दिया जाता है। वह दक्षिण भारत में देवगिरि पर जाकर रहता है। वहीं से वह बादल (मेघ) को दूत बनाकर अपना संदेश अपनी पत्नी के पास भेजता है। इस खण्ड-काव्य के दो भाग हैं। पूर्व-मेघ में देवगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन है और उत्तर-मेघ में अलकापुरी का।

कविता बड़ी मनोहारी है। पूरी रचना सुमधुर मन्दाक्रान्ता छन्द में है। प्रकृति का जितना मनोरम चित्रण इस खण्ड-काव्य में हुआ है उतना शायद ही कहीं हुआ हो। पूर्व-मेघ में तो आरम्भ से लेकर अंत तक यही है। ऋतु, नदी, पर्वत सभी के परम सुन्दर और रमणीय चित्रों से पुस्तक भरी पड़ी है। एक ओर प्राकृतिक सुन्दरताओं का चित्रण है तो दूसरी ओर बाहरी और भीतरी, दोनों संसारों का सम्बन्ध भी दिखाया गया है। मनुष्य के मनोभावों और पशु-पक्षी जगत् की मनोहर चेष्टाओं का वर्णन भी कवि की कुशल लेखनी से छूटा नहीं है।

का[illegible]लदास जिन उपमाओं के लिए प्रसिद्ध हैं वे भी इस खण्ड-काव्य में बिखरी पड़ी हैं। भारत के तत्कालीन भूगोल पर भी यह काव्य अच्छा प्रकाश डालता है। कवि को प्रत्येक स्थान की स्थानीय [illegible]षताओं का यथार्थ ज्ञान था ऐसा इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है।

—संपादक

मेघदूत

पूर्वमेघ

उत्तर दिशा में हिमालय पर्वत के ऊपर यक्षों के राजा कुबेर की राजधानी अलकापुरी है। वहां पर एक यक्ष राजा की सेवा में रहता था; पर उसका मन अपनी स्त्री में लगा रहता था। इसी बेसुधी में एक दिन उससे कुछ भूल हो गई। बस कुबेर को क्रोध आ गया और उन्होंने उस यक्ष को एक साल के लिए देश से निकल जाने का दण्ड दे दिया। इस शाप के कारण उसका सब राग-रंग समाप्त हो गया। क्योंकि वह अपनी पत्नी को साथ नहीं ले जा सकता था। विरह के ये दिन काटने के लिए वह दक्षिण में रामगिरि नाम के पर्वत पर उन आश्रमों में रहने लगा, जिनमें त्रेतायुग में श्री रामचन्द्र और सीताजी वनवास का समय काटने के लिए ठहरे थे। यहां के कुण्ड और तालाब सीताजी के स्नान करने के कारण पवित्र हो चुके थे और घनी छाया वाले बहुत से पेड़ वहां लहरा रहे थे।

वहां रहता हुआ वह यक्ष धीरे-धीरे इतना दुर्बल हो गया कि उसके हाथ के सोने के कंगन ढीले पड़ गये। फिर भी किसी तरह रोते-[illegible] उसने आठ महीने बिता दिये। अ[illegible]खर [illegible]ढ़ का पहला दिन आ पहुंचा। उस दिन उसने देखा कि सामने की पहा[illegible] की चोटी से लिपटा हुआ बादल ऐसा लग रहा है मानो कोई हाथी अपने सिर की टक्कर से मिट्टी के टीले को गिराने का खेल कर रहा हो। मन में प्रेम जगाने वाले उस बादल को देखक[illegible] कुबेर का वह सेवक, आंखों में आंसू भरे बहुत देर तक स्थिर खड़ा रहा और सोचता रहा। बादलों को देखकर सुखी लोगों का मन भी [illegible]वाडोल हो जाता है, फिर वह तो दुखी था। घर से दूर था। उस बादल को देखकर वह सोचने लगा कि अब आषाढ़ बीत जायगा और सावन आ जायगा। तब मेरी स्त्री की क्या दशा होगी! मैं वहां नहीं जा सकता; लेकिन इन [illegible] के हाथ अपना कुशल-सम[illegible]र तो भेज ही सकता हूं। इससे उसको ढाढ़स बंधेगा। वह सुखी होगी। बस, यह सोचकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद सबसे पहले उसने फूलों से बादल की पूजा की और प्रेम-भरी वाणी से कुशल-मंगल पूछ कर उसका स्वागत किया।

भला सो। ये कहां तो धुएं, आग, जल और हवा के मेल से बना हुआ वह बादल, कहां वह संदेशा जिसे बहुत ही चतुर और बुद्धिमान लोग ला और ले जा सकते हैं। लेकिन उस यक्ष को तो अपने तन-मन की सुधि थी ही नहीं। वह इन बातों पर विचार कैसे करता ? वह तो बस अपना संदेशा भेजने के लिए बादल के आगे गिड़गिड़ाने लगा। उसकी बड़ाई करते हुए वह बोला, "संसार में बादलों के दो ऊंचे कुल प्रसिद्ध हैं पुष्कर और आवर्तक। आपने उन्हीं ऊंचे कुलों में जन्म लिया है। आप स्वयं इन्द्र के दूत हैं। आप जैसा चाहें वैसा रूप बना सकते हैं। इन्हीं गुणों के कारण मैं आपके आगे हाथ फैला रहा हूं। गुणी के आगे हाथ फैला कर निराश हो जाना अच्छा है; लेकिन नीच व्यक्ति से मनचाहा फल पाना भी अच्छा नहीं है।

"हे मेघ, तुम दुखियों को शरण देनेवाले हो, और कुबेर के क्रोध के कारण अपने घर से बिछुड़ कर मैं बहुत दुखी हो रहा हूं। इसलिए तुम मेरा संदेशा मेरी पत्नी के पास पहुंचा दो। इसके लिए तुम्हें अलकापुरी नाम की यक्षों की बस्ती तक जाना होगा। वहां यक्ष लोग बड़े ठाठ-बाट से रहते हैं। बस्ती के बाहर के उद्यान में शिवजी की मूर्ति है। उसके ललाट में जो

चन्द्रमा जुड़ा हुआ है उसकी चांदनी से उस नगरी के ऊंचे-ऊंचे महलों में सदा उजाला रहा करता है।

"जब तुम हवा के पंखों पर सवार होकर ऊपर चढ़ोगे तो तुम्हें देख कर उन स्त्रियों को बड़ा ढाढ़स बँधेगा, जिनके पति परदेस गये हुए हैं। हे बादल, ऐसी कोई जगह नहीं है जहां तुम न पहुंच सको। इसलिए तुम अपनी पतिव्रता भाभी को जरूर ढूंढ़ लोगे। वह बैठी हुई मेरे लौटने के दिन गिन रही होगी। जो बिछुड़ जाते हैं वे मिलने की आशा के भरोसे ही तो जीते रहते हैं।

"देखो, सगुन भी सब अच्छे हो रहे हैं। तुम्हारा साथी वायु तुम्हें धीरे-धीरे आगे बढ़ा रहा है। बाईं ओर अपनी आन का पक्का यह चातक अपनी मीठी बोली बोल रहा है। तुम्हारा सलोना-सुहावना रूप देखकर बगुलिया भी पंखा झलने के लिए अभी उड़ कर आती होगी। जो धरती को उपजाऊ बनाने वाला है वही कानों को प्यारा लगनेवाला तुम्हारा गरजना सुन-कर मानसरोवर को जानेवाले राजहंस, अपनी चोंचों में कमल की डंठल लिये, कैलाश पर्वत तक तुम्हारे साथ-साथ उड़ेंगे। हे बादल, तुम जिस पहाड़ से चिपके हुए हो, उसपर जगह-जगह रामचन्द्रजी के पैरों के

निशान बने हुए हैं। उन निशानों को सारा संसार पूजता है। तुम जब-जब इससे मिलने आते हो तब-तब बहुत दिनों में मिलने के कारण यह अपना प्रेम गरम-गरम आँसू बहा कर प्रकट करता है।

"अच्छा, अब मैं पहले तुम्हें वह रास्ता बता दूं जिसपर जाने में तुम्हें कष्ट नहीं होगा। उसके बाद सन्देशा दूंगा। देखो, जब चलते-चलते तुम थक जाओ तो रास्ते में आनेवाली पहाड़ की चोटियों पर ठहरते जाना और जब पानी की जरूरत हो तो झरनों का जल पी लेना। जब तुम इस पहाड़ी से ऊपर उड़ोगे तो सिद्धों की भोली-भाली स्त्रियाँ अचम्भे में भर कर तुम्हारी ओर देखेंगी। उन्हें ऐसा जान पड़ेगा मानो हवा पहाड़ की चोटी को उड़ाये लिये जा रही है। इस प्रकार ठाठ से उड़ते हुए तुम उत्तर की ओर घूम जाना।

"वह, जो सामने रत्नों की तरह चमकता हुआ इन्द्रधनुष का एक टुकड़ा दिखाई दे रहा है, उससे तुम्हारा सांवला शरीर ऐसा सुन्दर हो गया है जैसे मोर-मुकट पहने हुए ग्वाले के वेश में नन्द-नन्दन आकर खड़े हो गये हों। खेती का होना या न होना सब तुम्हारे ऊपर निर्भर है, इसलिए किसानों की भोली-भाली

स्त्रियां तुम्हारी ओर बड़े प्रेम और आदर से देखेंगी। वहाँ मालदेश के उन खेतों पर, जो अभी जोते गये हैं और जिनमें से सोंधी-सोंधी सुगन्ध उठ रही होगी, बरस कर तुम पश्चिम की ओर घूमना और झटपट उत्तर की ओर बढ़ जाना। जब तुम आम्रकूट के जंगलों में मूसलाधार जल बरसा चुकोगे तो वह तुम्हारा उपकार मानकर, बड़े प्रेम और आदर से मित्र के समान तुम्हें अपनी चोटी पर ठहरायेगा। वह पके हुए फलों से लदे आम के पेड़ों से घिरा होने के कारण पीला-पीला लगेगा। थोड़ी देर ठहरकर तुम आगे बढ़ना। जल बरसा देने से तुम्हारा बदन हलका हो जायगा और तुम्हारी चाल बढ़ जायगी। वहां से आगे विन्ध्याचल के पथरीले पठार पर बहुत-सी धाराओं में फैली हुई रेवा नदी मिलेगी। ऊपर से वह तुम्हें ऐसी दिखाई देगी जैसे किसी बड़े हाथी के शरीर पर भभूत से चित्रकारी की गई हो। वहां बरस कर और उसका जल पीकर तब तुम आगे बढ़ना। जल पीकर जब तुम भारी हो जाओगे तो हवा तुम्हें इधर-उधर झुला नहीं सकेगी। जो भरे-पूरे हैं उनका सभी आदर करते हैं। मैं जानता हूं मेरे काम के लिए तुम बिना रुके जल्दी जाना चाहोगे। फिर भी मैं समझता हूं कि

कुटज के फूलों से लदे उन पहाड़ों पर तुम्हें ठहरना ही होगा, क्योंकि वहां के मोर आंखों में खुशी के आंसू भरे अपनी प्यारी कूक से तुम्हारा स्वागत करेंगे। पर मुझे यह भी आशा है कि जैसे भी होगा तुम वहां से जल्दी-से-जल्दी चल दोगे।

"कुछ आगे चलकर तुम दशार्ण देश में पहुंच जाओगे। वहां के उपवन फूले हुए केवड़ों के कारण उजले दिखाई देंगे। वहां के गांवों के मन्दिर पक्षियों के घोंसलों से भरे मिलेंगे और वहां के जंगल पकी हुई काली जामनों से लदे हुए होंगे। वहां कुछ दिन हंस भी रहेंगे। इस देश की राजधानी विदिशा है। वहां तुम सुहावनी और नाचती हुई लहरों वाली वेत्रवती नदी के निकट 'नीच' नाम की पहाड़ी पर थकावट मिटाने के लिए उतर जाना। वहां पर फूले हुए कदम्ब के पेड़ ऐसे लगेंगे, जैसे वे तुमसे मिलकर पुलक उठे हों। कुछ देर थकावट मिटा कर और नदी के तट पर उपवनों में जो जूही की कलियां खिली हुई हैं, उन्हें सींचते हुए और मालिनों से कुछ जान-पहचान करते हुए आगे बढ़ जाना।

"यद्यपि तुम्हें फेर पड़ जाएगा, क्योंकि तुम्हें उत्तर को जाना है, फिर भी तुम उज्जैनी के राजभवनों को

देखना मत भूलना। उस ओर जाते हुए रास्ते में निर्विन्ध्या नदी का रस भी लेना। उसकी लहरों पर पक्षी पांतें बनाकर उड़ रहे होंगे और वह ऐसे सुन्दर ढंग से रुक-रुक कर बह रही होगी कि उसमें पड़ी भंवर तुम्हें नाभि-जैसी दिखाई देगी। जल बरसा कर तुम उसे भर देना। यहां से आगे बढ़ कर तुम्हें अवन्ति देश मिलेगा। वहां तुम धन-धान्य से भरी हुई उस विशाला नगरी को देखना, जहां गांव के बड़े-बूढ़े लोग महाराज उदयन की कथा खूब अच्छी तरह जानते हैं। यह उज्जयिनी नगरी ऐसी लगती है मानो पुण्यात्मा लोग अपने कुछ पुण्य के बदले स्वर्ग का एक चमकीला भाग अपने साथ लेकर धरती पर उतर आये हों। यह नगरी शिप्रा नदी के तट पर बसी हुई है। यहां के बाज़ारों में कहीं तो बीच में रत्न-जड़ित मोतियों की मालाएं होंगी, कहीं करोड़ों शंख, सीपियां और चमकीले नीलम बिछे दिखाई देंगे। उन्हें देखकर यही जान पड़ेगा कि समुद्र के सब रत्न निकाल कर यहीं ला रखे हैं। वहां के जानकार लोग बाहर से आये हुए अपने नातेदारों को उदयन और वासवदत्ता की कथा सुना रहे होंगे कि कैसे यहां पर वत्स देश के राजा उदयन ने उज्जयिनी के

महाराज चंडप्रद्योत की प्यारी बेटी वासवदत्ता को हरा था। यहीं पर उनका बनाया हुआ ताड़ के वृक्षों का सुनहरा उपवन था। यहीं पर नलगिरि नाम वाला हाथी खूंटा उखाड़ कर पागल हुआ इधर-उधर घूमता-फिरता था। वहां के मोर तुम्हें अपना समझ कर नाच-गान से तुम्हारा स्वागत-सत्कार करेंगे। फूलों की सुगन्ध से महकते हुए वहां के भवनों की सजावट देखकर तुम अपनी थकावट दूर कर लेना और फिर तीनों लोकों के स्वामी चण्डीश्वर महाकाल के पवित्र मन्दिर की ओर जाना। वहां शिव के गण तुम्हें अपने स्वामी के नीले कंठ के समान नीला देखकर तुम्हारा बड़ा आदर करेंगे। यदि तुम उस मन्दिर में सांझ से पहले पहुंच जाओ तो आरती होने तक रुक जाना और अपने गर्जन का नगाड़ा बजाने लगना। सांझ की पूजा हो चुकने पर जिस समय महाकाल ताण्डव नृत्य करने लगें, उस समय तुम सांझ की लाली लेकर उन पेड़ों पर छा जाना, जो उनकी ऊंची उठी हुई बांह के समान खड़े होंगे। तब ऐसा लगेगा जैसे शिवजी ने हाथी की खाल ओढ़ ली है। यह देखकर पार्वतीजी डर जायंगी; पर फिर तुम्हें पहचान कर उनका डर दूर हो जायगा और वह शिव में तुम्हारी इतनी भक्ति देख

कर बड़ी खुश होंगी। जब बार-बार चमक‑े से ु म्हारी साथिन िजल। थक जाय तो तुम किसी ऐसे मकान के छज्जे पर रात बिता देना, जहां पर कबूतर सोए हुए हों। फिर दिन निकलते ही वहां से चल देना। क्योंकि जो अपने मित्रों का काम करने का निश्चय कर चुका है वह ‑ालस नहीं कर सकता।

"उज्जयिनी से आगे बढ़कर तुम्हें निर्मल जल वाली गंभीरा नदी मिलेगी। तुम्हारे सांवले सलोने शरीर की परछाईं उसमें दिखाई देगी। तुम उसका ।नरार मत कर बैठना। उसका जल पीना। फिर वहां से तुम देवगिरि पहाड़ की ओर जाना। इसी देवगिरि पर देवताओं की सेना के सेनापति स्कन्द भगवान रहते हैं। इसाल‍ वहां तुम फूल बरसाने वाले बादल बनकर उनपर ‑ाकाश-गंगा के जल में भीगे हुए फूल बरसाना। इस प्रकार उनका स्नान हो जायगा। उन्हें तुम ऐसा-वैसा देवता न समझना। इन्द्र की सेना‑ों को बचाने के लिए उनका जन्म हुआ है। वहां पहुंच कर तुम इतने जोर से गरजना कि पर्वतों की गुफाएं गूंज उठें। उस गूंज को ‑ुनकर स्वामी कार्तिकेय का मोर नाच उठेगा। उसकी आंखों के कोने शिव के मस्तक पर विराजमान चन्द्रमा की चमक से ‑मकते रहते हैं। स्कन्द

भगवान की पूजा करने के बाद जब तुम आगे बढ़ोगे तो तुम्हें चर्मण्वती नदी मिलेगी। उसका आदर करने के लिए तुम नीचे उतर जाना, क्योंकि वह राजा रन्तिदेव के यज्ञ की कीर्ति बनकर बह रही है। इस नदी को पार करके तुम दशपुर की ओर बढ़ना और वहां से ब्रह्मावर्त देश पर छाया करते हुए कुरुक्षेत्र पहुंच जाना। कौरव-पाण्डवों के घरेलू युद्ध के कारण यह आजतक बदनाम है। यहीं पर गाण्डीवधारी अर्जुन ने अपने शत्रुओं के मुख पर उसी प्रकार अनगिनत वाण बरसाये थे जैसे तुम कमलों पर अपनी जलधारा बरसाते हो। इसी कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी बहती है। कौरव-पाण्डव दोनों को समान प्रेम करनेवाले बलरामजी उसका जल पीते थे। तुम भी अगर इसका जल पी लोगे तो बाहर से काले होने पर भी तुम्हारा मन उजला हो जायगा।

कुरुक्षेत्र से आगे बढ़कर तुम कनखल जाना। वहां पर तुम्हें महाराज सगर के साठ हज़ार पुत्रों को मुक्ति देनेवाली हिमालय की गोद से उतरती हुई गंगाजी मिलेंगी। यदि तिरछे होकर तुम उनका जल पीना चाहोगे, तो तुम्हारी चलती हुई छाया गंगाजी की धारा में पड़कर ऐसी लगेगी जैसे प्रयाग पहुंचने से पहले ही गंगाजी में यमुनाजी मिल गई हों। वहां से आगे

तुम हिमालय पर्वत की उस चोटी पर बैठ कर थकावट मिटाना, जहां से गंगाजी निकली हैं। उसकी शिलाओं पर कस्तूरी मृग बैठे रहते हैं और उसके शिखर पर सदा बर्फ जमी रहती है। उसपर बैठे हुए तुम ऐसे दिखाई दोगे जैसे महादेवजी के श्वेतवर्ण के सांड के सींगों पर मिट्टी के टीलों पर टक्कर मारने से कीचड़ जम गया हो। हे बादल, आंधी चलने पर देवदार पेड़ों की रगड़ से जंगल में आग लग जाय तो तुम धुंआधार पानी बरसा कर उस आग को बुझा देना, क्योंकि भले लोगों के पास जो कुछ होता है वह दीन-दुखियों का दुख मिटाने के लिए होता है। देखो, जब शरभ जाति के हिरन दूर होने पर भी तुमसे लड़ने के लिए मचल-मचल कर उछलें और अपने हाथ-पैर तुड़वाने के लिए तुम पर सींग चलाने को झपटें, तो तुम धुंआधार ओले बरसा कर उन्हें भगा देना। वहीं एक शिला पर शिवजी के पैर की छाप बनी हुई है। सिद्ध लोग सदा उसकी पूजा करते रहते हैं। तुम भी भक्तिभाव से झुककर उसकी पूजा कर लेना, क्योंकि उसके दर्शन-मात्र से श्रद्धालु लोगों के पाप धुल जाते हैं और शरीर छोड़ने पर वे शिवजी के गण हो जाते हैं। वहां पर जब पोले बांसों में हवा भरने लगती है तो उनमें

से बांसुरी के समान मीठे-मीठे स्वर निकलने लगते हैं और किन्नरियां उनमें अपना स्वर मिलाकर त्रिपुर-विजय का गीत गाने लगती हैं। वहां जब तुम अपनी गरज से पहाड़ की गुफाओं को गुंजा कर मृदंग के समान शब्द करने लगोगे, तो भगवान शंकर के संगीत के सब अंग पूरे हो जायंगे।

"हिमालय पर्वत के आस-पास जितने सुन्दर और सुहावने स्थान हैं, उन सबको देखकर तुम क्रौंचरंध्र में से होकर उत्तर की ओर जाना। इसी मार्ग से होकर हंस मानसरोवर की ओर जाते हैं। इसी को अपने बाण से छेद कर परशुराम अमर हो गये हैं। इस संकरे मार्ग से होकर और कुछ ऊंचे उठकर तुम कैलाश पहुंच जाओगे। अपने बल के घमण्ड में आकर रावण ने इसकी चोटियों को हिला डाला था। हे बादल, तुम चिकने घुटे हुए अंजन के समान काले हो और कैलाश तुरन्त काटे हुए हाथी-दांत के समान गोरा है। इसलिए जब तुम उसके ऊपर पहुंचोगे तो ऐसे मनोहर लगोगे जैसे बलरामजी के कन्धों पर पड़े हुए चमत्कार काले वस्त्र। आंखें तुम्हें एकटक देखती ही रह जायंगी।

"उस कैलाश पर जब भगवान शंकर सांपों के गहने उतार कर पार्वतीजी के साथ घूम रहे हों, तो उस

समय तुम बरसना मत, बल्कि आगे बढ़कर सीढ़ी के समान बन जाना जिससे उन्हें ऊपर चढ़ने में सुविधा हो। हे मित्र ! वहां रहनेवाली अप्सराएं बड़ी विनोद-प्रिय हैं। वे अपने नग-जड़े कंगनों की नोक तुम्हारे बदन में चुभो कर तुममें से पानी की धाराएं निकालेंगी और तुम्हें फौवारा बना लेंगी। उनसे छुटकारा पाने के लिए तुम जोर से गरज कर उन्हें डरा देना। देखो, वहां पहुंच कर तुम पहले तो सुनहरे कमलों वाले मानसरोवर का जल पीना, फिर थोड़ी देर ऐरावत का मन बहलाना। फिर कल्पद्रुम के कोमल पत्तों को हिलाना। इस प्रकार तरह-तरह के खेल करते हुए तुम जी भर कर कैलाश पर घूमना। उसी कैलाश की गोद में अलकापुरी बसी हुई है। वहां से निकली हुई गंगा ऐसी लगती है मानो अलका नगरी-रूपी नारी के बदन पर से सरकी हुई साड़ी हो। ऐसी अलका को देखकर तुम पहचान न पाओ यह नहीं हो सकता। उसके उंचे-ऊंचे महलों पर वर्षा ऋतु में बरसते हुए बादल ऐसे छाए रहते हैं जैसे स्त्रियों के सिर पर मोती गुथे हुए जूड़े।"

उत्तर मेघ

"हे बादल ! अलकापुरी के ऊंचे-ऊंचे भवन सब बातों में तुम्हारे-जैसे हैं। तुम्हारे साथ बिजली है, तो उन महलों में नारियां रहती हैं। तुम्हारे पास इन्द्र-धनुष है, तो उन महलों में रंगबिरंगी तसवीरें लटकी हुई हैं। तुम मीठे स्वर में गम्भीर गर्जन कर सकते हो तो महलों में भी संगीत के समय मृदंग बजते हैं, तुम्हारे भीतर नीला जल है, जिससे तुम कान्तिमान हो, तो वह महल नीलमादि रत्नों से जड़े रहने के कारण कान्तिमान हैं। तुम ऊंचे पर हो, तो वहां के भवन भी आकाश को चूमते हैं।

"देखो मित्र, वहां की कुलवधुएं हाथों में कमल के गहने पहनती हैं। चोटियों में, जूड़े में, कानों पर और मांग में तरह-तरह के फूल लगाती हैं। मुंह पर फूलों का पराग मलती हैं। वहां पर बारहों महीना फूलनेवाले ऐसे बहुत से पेड़ हैं, जिनपर मस्त भौरे गुनगुनाते रहते हैं। हमेशा खिलने वाले कमल और कमलिनियों को हंस घेरे रहते हैं। वहां सदा चमकदार पंखों वाले पालतू मोर सिर ऊंचा किये हुए रात-दिन बोलते रहते हैं। वहां की रातें सदा पूर्णिमा के प्रकाश

से चमकने के कारण बड़ी प्यारी और मनभावनी लगती हैं। वहां के रहनेवाले यक्षों की आंखों में हमेशा आनन्द के आंसू ही आते हैं। बस वह प्रेम में ही रूठते हैं और कभी कोई किसी से नहीं बिछुड़ता। वे लोग सदा जवान रहते हैं। वहां की कन्याएं बड़ी सुन्दर हैं। वे अपनी मुट्ठियों में रत्न लेकर और उनको सुनहरी बालुका में डालकर छिपाने और ढूंढ़ने का खेल खेला करती हैं।

"हे बादल! तुम्हारे-जैसे बहुत से मेघ हवा के झोंकों के साथ उन ऊंचे-ऊंचे महलों के ऊपरी खण्डों में घुस जाते हैं और दीवारों पर टंगे हुए चित्रों को अपनी फुआरों से भिगो कर मिटा देते हैं और इसके बाद भय के मारे झरोखों की जालियों में से छितरा-छितरा कर निकल भागते हैं। धुएं का रूप बनाने में वे बड़े चतुर हैं। वहां के लोग बड़े विलासी हैं। वहां सिंगार की सारी सामग्री अकेले कल्पवृक्ष से मिल जाती है। वहां के सांवले घोड़े अपने रंग और अपनी चाल के सामने सूरज के घोड़ों को भी कुछ नहीं समझते। वहां के हाथी पहाड़-जैसे डील-डौल वाले हैं। वे उसी प्रकार मद बहाते हैं जिस प्रकार तुम जल बरसाते हो। वहां के योद्धा ऐसे लड़ाके हैं कि उन्होंने अपने सब गहने

उतार दिये हैं और उन घावों के निशानों को ही गहने समझ लिया है, जो उन्होंने रावण से युद्ध करते समय उसकी चन्द्रहास नाम की तलवार से खाये थे। वहीं पर कुबेर के मित्र शिवजी भी रहते हैं।

"उसी अलकापुरी में कुबेर के उत्तर की ओर मेरा घर है। उसका द्वार इन्द्रधनुष के समान सुन्दर और गोल है। ऐसा वह मेरा घर तुम्हें दूर से ही दिखाई पड़ेगा। उसी के पास एक छोटा-सा कल्पवृक्ष है। उसे मेरी पत्नी ने पुत्र के समान पाला है। फूलों के बोझ से वह इतना झुका हुआ होगा कि नीचे खड़े होकर कोई भी, हाथ से ही, उन फूलों को तोड़ सकता है। जब तुम घर के भीतर जाओगे तो तुम्हें एक बावड़ी मिलेगी। उसकी सीढ़ियों पर नीलम जड़ा हुआ है। उसमें वैदूर्य मणि की नालवाले अनेक सुनहरे कमल खिले होंगे। उसके जल में रहने वाले हंस इतने सुखी हैं कि तुम्हें देखकर भी वे मानसरोवर, जो इतना पास है, जाना नहीं चाहेंगे।

"उस बावड़ी के तट पर एक बनावटी पहाड़ है। उसकी चोटी [illegible] की बनी हुई है। चारों ओर से सुनहरे केलों से घिरे रहने के कारण उसकी छवि देखते ही बनती है। मित्र, वह पर्वत मेरी पत्नी को बड़ा प्यारा है। इसलिए जब तुम्हें बिजली के साथ

देखता हूं तो मेरा मन उदास हो जाता है और मुझे उस पहाड़ की याद आ जाती है। यह सब अकेला होने के कारण ही होता है। उस बनावटी पहाड़ पर कुरबक के पेड़ों से घिरा हुआ माधवी मण्डप है। उसके पास दो पेड़ हैं, एक लाल अशोक का, दूसरा मौलसिरी का।

"उन दोनों पेड़ों के बीच में एक चौकी है, जो नये बांस के समान चमकीली मणियों से बनी हुई है। उस चौकी के ऊपर स्फटिक की एक चौकोर पटिया रखी हुई है। उस पटिया पर एक सोने की छड़ रखी हुई है। तुम्हारा मित्र मोर प्रतिदिन सांझ को उसप आकर बैठता है और मेरी पत्नी उसे अपने उन हाथों से ताल दे-दे कर नचाती है, जिनमें उसने घूंघरूवाले कड़े पहने होते हैं।

"हे साधु ! यदि तुम मेरे बताये हुए इन चिह्नों को भली भांति ध्यान में रखोगे और द्वार पर शंख और पद्म के बने हुये चित्र देख लोगे, तो तुम मेरा घर अवश्य पहचान लोगे। अब वहां मेरे न रहने से बड़ा सूना-सूना और उदास-सा दिखाई देता होगा। सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल उदास हो ही जाता है। देखो, यदि तुम जल्दी से मेरे घर में जाना चाहो

तो हाथी के बच्चे के समान छोटे बन जाना और खेल के लिए बनाई हुई पहाड़ी की सुहावनी चोटी पर जा बैठना। फिर अपनी बिजली की आंख जुगनुओं की तरह रुक-रुक कर चमकाना और मेरे घर के भीतर झांकना। वहां जो तुम्हें दुबली-पतली, नन्हें-नन्हें दांतों वाली, लाल ओंठ और पतली कमर वाली तथा डरी हुई हिरनी के समान आंखों वाली युवती दिखाई दे, उसे ही मेरी पत्नी समझना। वह बड़ी सुन्दर है मानो ब्रह्मा की सबसे बढ़िया कारीगरी हो। लेकिन मेरे वहां न रहने के कारण उसका रूप बदल गया होगा। वह पाले से मारी हुई कमलिनी के समान लगती होगी। दिन-रात रोते रहने के कारण उसके नेत्र सूज गये होंगे। चिंता के कारण गालों पर हाथ धरने से और बालों के मुंह पर आ जाने से, उसका अधूरा दिखाई देनेवाला मुँह बादल से ढके चन्द्र के समान धुँधला और उदास दिखाई दे रहा होगा। देखो बादल, या तो तुम उसे मेरी कल्याण-कामना के लिए देवताओं की पूजा करते हुए देखोगे या वह कल्पना से मेरा चित्र बनाती होगी, अथवा पिंजड़े में बैठी हुई मृदुभाषी मैना से कुछ बातचीत करती होगी। या भैया ! वह मैले वस्त्र धारण किये हुए अपनी गोद में वीणा रखे मेरे नाम

के गीतों को गाने की चेष्टा करती होगी। उस समय वह अपने आंसुओं से भीगी हुई वीणा को जैसे-तैसे पोंछ लेगी; पर मेरी याद आ जाने से वह ऐसी बेसुध हो जायगी कि सधे हुए स्वरों के उतार-चढ़ाव को भी बार-बार भूल रही होगी। या फिर मेरे जुदा होने के दिन से ही वह प्रतिदिन देहली पर जो फूल रखती रही होगी, उन्हें धरती पर फैला कर यह हिसाब लगा रही होगी कि अब मेरे आने के कितने दिन शेष रह गये हैं।

"हे मित्र! दिन तो गृहस्थी के झंझटों में फंसे रहने के कारण किसी-न-किसी प्रकार कट जाता होगा; परन्तु रात बिताना उसके लिए बड़ा कठिन काम होता होगा। इसलिए तुम मेरा संदेशा सुना कर उसे सुखी करने के लिए आधी रात के समय मेरे घर के झरोखों पर बैठकर उसे देखना। उस समय वह उनींदी-सी धरती पर पड़ी होगी। उसकी सखियां उसके पास होंगी। संसार में सभी स्त्रियां अपनी सखियों के दुख में कभी उनका साथ नहीं छोड़तीं। इसलिए थोड़ी देर पलंग के पास खिड़की पर बैठकर राह देखना। जब वे सो जायं तभी तुम मेरी पत्नी के पास जाना। वह बहुत दुखी होगी। कहीं धरती पर एक

पड़ी होगी और आंसू बहा रही होगी। उसकी वह दशा देखकर तुम भी रोये बिना न रह सकोगे। दूसरों का दुख देखकर कौन ऐसा कोमल हृदयवाला है, जो करुणा से भीग न जाय।

"हे मेघ! तुम्हारे पहुंचने पर उसका बायां नेत्र फड़कने लगेगा। लेकिन उस समय यदि वह सो रही हो, तो तुम मौन होकर वहीं बैठ जाना। उसे जगाना मत। हां, यदि एक पहर ठहरने पर भी वह आंखें न खोले, तो तुम अपने जल से शीतल की गई पवन चला कर उसे जगाना। जब वह झरोखे से एकटक तुम्हें देखे, तो तुम बिजली छिपा लेना और उससे बातें करना। तुम उससे कहना, 'हे सौभाग्यवती! मैं तुम्हारे पति का प्रिय मित्र मेघ हूं। तुम्हारे पास उनका सन्देश लेकर आया हूं।' यह सुनकर वह तुम्हारी ओर मुंह करके बड़े चाव, बड़ी प्रसन्नता और बड़े आदर से मेरा सन्देश उसी प्रकार सुनेगी, जैसे सीताजी ने हनुमानजी की बातें सुनी थीं। हे प्रिय मित्र! तुम उससे कहना, 'तुम्हारा पति रामगिरि के आश्रमों में सकुशल है और तुम्हारा कुशल जानना चाहता है। अगर अचानक विपत्ति आगई हो, उनसे यही कहना ठीक होता है। उससे कहना कि ब्रह्मा ने उसका मार्ग

रोक रखा है। वह तुझसे मिल नहीं सकता। तेरे वियोग में वह बहुत दुखी है और वह समझता है कि तुम भी वैसी ही दुखी होगी, वैसी ही दुबली हो गई होगी, वैसे ही रोती होगी। वह निरन्तर तुम्हारी याद करता है। वह तुम्हारा चित्र बनाना चाहता है; लेकिन आंखों में आंसू आ जाने के कारण कुछ नहीं हो पाता। वह मन-ही-मन यह कामना किया करता है कि किसी प्रकार रात के लम्बे-लम्बे तीन पहर क्षण के समान छोटे हो जायं, पर सब प्रार्थना बेकार हो जाती है।

"तुम उससे कहना, मेरा जी बैठा जा रहा है। फिर भी सोच-विचार कर मैं संतोष कर लेता हूँ। तुम भी बहुत दुखी न होना। दुख या सुख सदा नहीं रहते। वे तो पहिये के चक्कर के समान ऊपर-नीचे होते रहते । देखो, अगली देवउठनी एकादशी को जब विष्णु भगवान शेषनाग की शैया से उठेंगे तब मेरा शाप भी बीत जायगा। इसलिए इन बचे हुए चार महीनों को किसी प्रकार आंख मूद कर बिता डालो। उसके बाद तो हम मिलेंगे ही। लोगों के कहने से तुम मेरे प्रेम में सन्देह न करना। न जाने लोग यह कैसे कहते हैं कि विरह में प्रेम कम हो जाता है। सच्ची बात तो यह है

कि जब मनचाही वस्तु नहीं मिलती तभी उसको पाने की चाह बढ़ती है और ढेर सारा प्रेम इकट्ठा हो जाता है।

"देखो बादल! अपनी दुखी भाभी को इस प्रकार दिलासा देकर, उसकी कुशल जानकर और पहचान लेकर तुम मेरे पास लौट आना और मेरे प्राणों की रक्षा करना। क्यों प्यारे भाई! तुम मेरा यह काम करोगे न? मेरे ऐसे पूछने से यह न समझ बैठना कि मैं तुमसे 'हां' भरवाने पर ही तुम्हें इस काम के योग्य समझूंगा। नहीं, मैं जानता हूं कि जब पपीहे तुमसे जल मांगते हैं तो बिना उत्तर दिये तुम उन्हें जल दे देते हो। भले आदमियों की यही रीति है कि जब कोई उनसे कुछ मांगता है तो वे मुंह से कुछ नहीं कहते। बस उसका काम पूरा कर देते हैं। हे मेघ! अगर्चे मेरी प्रार्थना अनुचित है, पर चाहे मित्रता के नाते, चाहे मुझपर तरस खाकर तुम पहले मेरा काम कर देना। फिर अपना बरसाती-रूप लेकर जहां इच्छा हो वहां घूमना। मैं यही कामना करता हूं कि तुम्हारी बिजली तुमसे कभी अलग न हो।"

यक्ष की ये बातें सुनकर इच्छानुसार रूप बदलने-वाला वह बादल रामगिरि से चल दिया। कभी पर्वतों

पर, कभी नदियों के पास, कभी नगरों में विश्राम करता हुआ थोड़े ही दिनों में अलकापुरी जा पहुंचा। बताए हुए चिन्हों को देखकर उसने यक्ष का सोने के समान चमकता हुआ घर खोज लिया। अन्दर जाकर उसने देखा कि यक्ष की स्त्री बेचारी धरती पर पड़ी हुई है। यह देखकर सबका भला चाहनेवाले उस भले मेघ ने उसके प्राण बचाने के लिए उसके प्यारे पति का मधुर सन्देश उसे सुना डाला। अपने प्यारे पति का कुशल-समाचार पाकर यक्ष की पत्नी भी फूली न समाई। उसे बड़ा सुख मिला। सच है, अच्छे लोगों से काम करने को कहा जाय तो वह अवश्य पूरा होता है।

इधर यक्षों के राजा कुबेर ने भी इस सन्देश की बात सुनी। तब उनके मन में बड़ी दया उपजी। उनका क्रोध उतर गया और उन्होंने अपना शाप लौटा कर उन दोनों को फिर मिला दिया।

इस मिलन से उनके सब दुख दूर हो गये और वे फिर पहले की तरह प्रसन्नता से रहने लगे। यही नहीं कुबेर ने भी उनके लिए ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि फिर कभी दुख उनके पास आकर फटका तक नहीं।

●

परिशिष्ट

मेघदूत में वर्णित प्राचीन कथाओं और स्थलों का परिचय

रामगिरि	—	चित्रकूट पर्वत
मालदेश	—	रीवां राज्य का वह प्रदेश, जो नर्मदा के उद्गम से लेकर विन्ध्याचल के पास तक फैला हुआ है।
आम्रकूट	—	अमरकंटक पर्वत। यह विन्ध्य प्रदेश के रीवां राज्य में है। सोन और नर्मदा का उद्गम इसी पर्वत में है।
रेवा	—	नर्मदा नदी।
दशार्ण देश	—	विन्ध्याचल के पूर्व और दक्षिण का वह प्रदेश, जिसमें धसान नदी बहती है।
विदिशा	—	भेलसा। बेतवा के किनारे बसा है।
वेत्रवती	—	बेतवा नदी। मालवा से निकल कर कालपी के पास यमुना में मिल जाती है।
नीच	—	विन्ध्याचल की एक प्रशाखा।
निर्विन्ध्या नदी	—	विन्ध्याचल पहाड़ से निकलने वाली एक नदी।
विशाला नगरी	—	विशाला, उज्जैनी या उज्जयिनी एक ही इतिहास प्रसिद्ध और पवित्र नगरी के नाम हैं। मालवा-प्रदेश में यह शिप्रा के तट पर बसी है। मालवा को ही अवन्ति देश कहते थे।
महाराज उदयन	—	वत्स देश के राजा। वीणा बजाने में निपुण थे। अवन्ति के राजा चण्डप्रद्योत ने इन्हें धोके से कैद कर लिया था और अपनी कन्या वासवदत्ता का शिक्षक बनाया था। एक दिन उसीको लेकर यह निकल भागे थे। दोनों में प्रेम था और वास्तव में

		[illegible] प्रद्योत स्वयं यही चाहते थे कि दोनों का विवाह हो। इस कथा को लेकर कवियों ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।
वत्स देश	—	काशी के पश्चिम में प्रयाग के चारों ओर का प्रदेश। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी।
गंभीरा	—	चम्बल नदी की एक शाखा।
[illegible]	—	चम्बल नदी। इन्दौर राज्य के एक पर्वत से निकल कर यमुना में मिल जाती है।
राजा रन्तिदेव	—	चन्द्रवंश के प्रसिद्ध दानी राजा।
दशपुर	—	मध्यभारत का मन्दसौर नगर।
ब्रह्मावर्त	—	प्राचीन उत्तर भारत का वह प्रदेश, जो सरस्वती और दृष्टवती (वर्तमान घग्घर) नदियों के बीच में था। इस प्रदेश में कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शूरसेन देश थे।
कुरुक्षेत्र	—	महाभारत के युद्ध के लिए प्रसिद्ध है। यह स्थान आजकल दिल्ली के पास पंजाब के करनाल जिले में स्थित है। प्राचीन काल में कुरु नाम के राजा ने इस स्थल में हल चलाया था, इसलिए यह कुरुक्षेत्र कहलाता है।
बलराम	—	श्रीकृष्ण के बड़े भाई, जो महाभारत युद्ध में किसी ओर से नहीं लड़े थे। दुर्योधन इनका शिष्य था।
राजा सगर	—	सूर्यवंश के एक प्रतापी राजा। इनके साठ हजार पुत्रों को कपिल मुनि ने भस्म कर दिया था। इन्हीं का उद्धार करने के लिए सगर के प्रपौत्र महाराज भगीरथ कठिन तपस्या करने के बाद गंगा को धरती पर लाये थे।

त्रिपुर-विजय — तारकासुर एक असुर था। उसके तीन पुत्र थे। उन्होंने घोर तपस्या करके ब्रह्मा से यह वर पाया था कि हम तीनों तीन पुरों में रह कर पूजित हों। हम जब एक साथ मिल जायं तब जो एक साथ तीनों पुरों का नाश कर दे, उसी के हाथ से हमारी मौत हो। मयदानव ने इनके लिए स्वर्ग में सोने का, अन्तरिक्ष में चांदी का और धरती पर लोहे का लोक बनाया। जब इन्होंने शक्ति के मद में देवताओं पर घोर अत्याचार करने शुरू किये तब महादेवजी ने इनको मार डाला था। उन्होंने सब देवताओं का आधा-आधा बल लिया, विश्वकर्मा ने उनके लिए रथ बनाया, ब्रह्मा उनके सारथी बने और तब उन्होंने एक बाण से तीनों पुरों को भस्म कर दिया।

क्रौंचरंध्र — एक पर्वत जिसपर क्रौंच दैत्य रहता था। इसे कार्तिकेय ने मार डाला था। क्रौंचरंध्र इसी पर्वत के एक छेद को कहते हैं। कहते हैं जब क्रौंच पर्वत को फाड़ने पर कार्तिकेय को अभिमान हो गया तब परशुरामजी ने उनका अभिमान चूर करने के लिए क्रौंच पर्वत में ऐसा बाण मारा जो उसे बींधता हुआ पार हो गया। उसी सूराख को क्रौंचरंध्र कहते हैं।

अलकापुरी — हिमालय पर्वत पर बसी हुई पुराण-प्रसिद्ध कुबेर की नगरी।

'मंडल' की दूसरी लोकप्रिय पुस्तक-माला

समाज-विकास-माला

१. बद्रीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. निषाद और शबरी
११. गांव सुखी, हम सुखी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. बापू की बातें
१८. द्वारका
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तन्दुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलाश-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी मेहता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामकृष्ण परमहंस
५२. कब्रों का विलाप

सं ृत-सा ित्य-सौरभ
१८

भवभूति-कृत

मा ती-मा व

●

श्री विष्णु प्रभाकर
द्वारा
कथासार

●

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
संपादित

●

१९५५
सत्सा त्य-प्रका न

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५५
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें और इस कार्य को संस्कृत-प्रेमी श्री हरदयालसिंहजी से तभी प्रारम्भ भी करा दिया था। उन्होंने कई ग्रन्थों का कथासार हमारे लिए कर दिया था। हिन्दी के पाठकों की सेवा में उस तथा कुछ अन्य सामग्री को सम्पादित करके उपस्थित किया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

संस्कृत के नाटककारों में यदि कोई कालिदास की बराबरी करता है तो वह भवभूति ही है। उन्होंने तीन रस को लेकर तीन नाटक लिखे। 'उत्तर-राम-चरित' में उन्होंने करुण-रस का, 'महावीर-चरित' में वीर रस का और 'मालती-माधव' में शृंगार रस का स्रोत बहाया है। कालिदास यदि 'प्रसाद' गुण के लिए प्रसिद्ध है तो भवभूति 'ध्वनि' के लिए। मधुर छन्द गूंथने में तो वह अद्वितीय है। उनकी कविता हर दृष्टि से ऊंची श्रेणी की है। और जैसा कि उन्होंने स्वयं उस नाटक की प्रस्तावना में लिखा है, 'नाटक लिखने से उन्हें नैसर्गिक प्रेम था।'

इस नाटक की कथा बिल्कुल काल्पनिक है पर तत्कालीन धर्मनीति समाजनीति और राजनीति पर अच्छा प्रकाश डालती है। यह प्रेम कहानी है परन्तु इसका प्रेम असंयत नहीं है, वरन् गम्भीर और प्रौढ़ है। उसमें पवित्रता है, गदलापन नहीं। राजा का आदर्श, प्रजा को उसकी आलोचना करने का अधिकार, स्त्रियों का तत्कालीन राजनीति में भाग लेना आदि-आदि बातों पर कवि ने बड़ी खूबी से प्रकाश डाला है। उसका प्रकृति वर्णन बड़ा मनोहर है।

भवभूति का जन्म दक्षिण में विदर्भ देश के पद्मपुर गांव में हुआ था। इनके दादा का नाम भट्टगोपाल, पिता का नीलकण्ठ, और माता का जातुकर्णी था। यह कश्यप गोत्रीय यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा के पण्डित थे। इनके नाटकों पर इनके पाण्डित्य की छाप है। लेकिन साथ ही इनमें विद्रोह का स्वर प्रमुख है। इन नाटकों का अभिनय राजसभा में न होकर उज्जयनी में, महाकाल की यात्रा के समय इकट्ठी हुई, जनता के सामने हुआ था। इन्हें राजाश्रय शायद नहीं मिला। इनके नाटकों की आलोचना से पता लगता है कि तत्कालीन विद्वानों में भी उनका आदर नहीं था। पर कुछ भी हो यह विश्व साहित्य के एक महान नाटककार हैं और रहेंगे। पंडितों का अनुमान है कि यह आठवीं शताब्दी के शुरू में हुए थे।

—सम्पादक

मालती-माधव

: १ :

विदर्भ-राज के मंत्री देवरात, पद्मावती-राज के मंत्री भूरिवसु और बौद्ध-संन्यासिनी कामन्दकी बचपन में देश-देश के अनेक विद्यार्थियों के साथ एक विद्यापीठ में एक संग पढ़ा करते थे। उनमें आपस में बड़ा प्यार था। भूरिवसु और देवरात में तो इतना प्यार था कि कामन्दकी और उनकी मुख्य शिष्या सौदामिनी के सामने उन दोनों ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि उनमें से किसी एक के पुत्र तथा दूसरे के पुत्री होगी तो दोनों का आपस में विवाह कर दिया जायगा। समय आने पर देवरात के माधव नाम का एक पुत्र तथा भूरिवसु के मालती नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। परन्तु उनके पिताओं की प्रतिज्ञा के अनुसार उनका विवाह होता दिखाई नहीं दिया। कामन्दकी इस बात से बड़ी चिन्तित हुई। विशेष कर इसलिए कि पद्मावती के राजा का साला नन्दन मालती से विवाह करना चाहता था। महाराज भी यही चाहते थे और उनके कहने पर मंत्री भूरिवसु भी इस विवाह के लिए तैयार हो गये थे। ऊपर से इस प्रकार सब कुछ ठीक दिखाई देता था, परन्तु

अन्दर से भूरिवसु अपनी प्रतिज्ञा को भूले नहीं थे। वह चाहते थे कि मालती का विवाह माधव से ही हो। और यह काम उन्होंने बचपन की अपनी सखी बौद्ध-संन्यासिनी कामन्दकी को सौंप दिया था। वह मालती से बहुत प्रसन्न थी, क्योंकि वह बहुत ही योग्य, चतुर और सुन्दर थी। इसलिए सब कुछ भूलकर वह इसी काम के पीछे पड़ी हुई थी। उन दिनों कुण्डलपुर से माधव भी न्याय पढ़ने वहीं आये हुए थे। इस बात से लाभ उठाकर उन्होंने अपनी शिष्या अवलोकिता की सहायता से माधव और मालती में परस्पर प्रेम पैदा हो, एक ऐसी योजना बनाई।

इस योजना के अनुसार मदन-महोत्सव के अवसर पर मालती और माधव ने एक-दूसरे को देखा और दोनों एक-दूसरे की ओर खिंचे। माधव वीर और सुन्दर तो थे ही, हार गूथने में भी बड़े कुशल थे। उद्यान में घूमते-घूमते जब वह थक गये तो उन्होंने मौलसिरी के उन फूलों की, जो डाल से टूट कर गिर गये थे, एक सुन्दर माला तैयार की। उसी माला को मालती की सखी लवंगिका उनसे मांग कर ले गई। बोली, "महा-भाग, धागा एकसा होने के कारण फूलों की गूंथन एकसी हुई है। इसलिए यह हार बहुत ही सुन्दर दिखाई देता

है। हमारी राजकुमारी इसे अपने कंठ में पहनने के लिए बहुत ही उत्सुक हैं।"

लवंगिका ने जब इस प्रकार अनुरोध किया तो माधव ने वह हार अपने गले से निकाल कर उसे दे दिया। मालती ने वह हार मांग कर ही अपना प्रेम प्रकट नहीं किया, बल्कि उसने माधव का एक सुन्दर चित्र भी बनाया। उसी चित्र को लवंगिका ने बौद्ध-विहार की दासी मन्दारिका को दे दिया। बात यह थी कि माधव का सेवक कलहंस मन्दारिका से प्रेम करता था। उसने मन्दारिका के पास अपने स्वामी का चित्र देखा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसे लेकर माधव के पास पहुंचा। माधव तब उद्यान में बैठे अपने बाल-सखा मकरन्द को मालती से मिलने की कथा सुना रहे थे। उस चित्र को देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि मालती के मन में भी अनुराग पैदा हो गया है। इस पर मकरन्द ने माधव से कहा, "जिसके लिए तुम बेचैन हो रहे हो, उस मालती का चित्र भी तुम इस चित्रपट पर उतार दो।"

माधव ने ऐसा ही किया। इसी समय कलहंस को ढूंढती हुई मन्दारिका वहां आ पहुंची। उसे चित्र की तलाश थी। आते ही उसने कहा, "कलहंस, तुम बड़े चोर

हो, भला तुमसे किसने कहा था कि इसे यहां ले आना। हमारा चित्रपट हमें दे दो, नहीं तो अच्छा न होगा।"

पर जब उसने उस चित्रपट पर मालती का भी चित्र देखा तो वह भी बहुत प्रसन्न हुई और तुरन्त उसे लेकर लवंगिका के पास चली गई। दोपहर हो चला था। माधव भी मकरन्द के साथ घर की ओर चल पड़े। मन उनका बड़ा उदास था। कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। कोमल शरीर जैसे मुरझा गया हो। मकरन्द ने सबकुछ देखा और मन-ही-मन सोचा—ऐसे अवसर पर भगवती कामन्दकी के सिवा हमारी रक्षा और कौन कर सकता है।

वह केवल सोचकर ही नहीं रह गया, उसने इन सब बातों की पूरी सूचना भगवती कामन्दकी को पहुंचा दी और उन्होंने मालती का हाल जानने के लिए अवलोकिता को भेजा। मालती तब लवंगिका के साथ ऊपर अटारी पर बैठी हुई माधव की ही चर्चा कर रही थी। इसी समय लवंगिका ने मन्दारिका का लाया हुआ चित्रपट उसे दिखाया। उस पर अपना चित्र देखकर मालती बड़ी प्रसन्न हुई, परन्तु माधव के मिलने की उसे कोई आशा नहीं थी। इसलिए वह दुखी भी बहुत हुई। उसका जी घबराने लगा। माता-पिता की आज्ञा के बिना

किसी से प्रेम करके वह अपने कुल को कैसे कलंकित कर सकती थी। माधव से प्रेम करने का यही तो अर्थ होता था। नहीं, अपने कुल का अपमान करके वह माधव को पाने की आशा नहीं करेगी ...।

वह इसी प्रकार सोच-विचार में मग्न थी कि कामन्दकी और अवलोकिता ने वहाँ प्रवेश किया। भगवती को सब बातों की सूचना मिल चुकी थी। वह बड़ी प्रसन्न थीं। विवाह में मुख्य बात वर-वधू का आपस का प्रेम ही तो होता है। अंगिरा ऋषि ने भी कहा है कि जिस पर मन और नेत्रों का अनुराग हो, उसीके साथ विवाह करने में विशेष उन्नति होती है। लेकिन इन सब बातों को उन्होंने मन ही में रखा। ऊपर से वह बड़ी दुखी दिखाई दी और मालती के बारे में चिन्ता प्रकट करने लगी। यह बात सब जगह फैल चुकी थी कि महाराज के अनुरोध पर मंत्री भूरिवसु ने मालती का विवाह नन्दन से करने का निश्चय कर लिया है। कामन्दकी बोली, "न जाने क्या सोचकर भूरिवसु ने ऐसा गुणहीन वर चुना है। शायद वह राजा को प्रसन्न करना चाहते हैं।" लवंगिका ने कहा, "यदि ऐसा न होता तो बूढ़े और गन्दे नन्दन को अपनी बेटी देने को वह क्यों राजी हो जाते!"

मालती को इन बातों से और भी दुख पहुंचा। वह पुकार उठी––हाय, उसका भाग्य ही फूट गया है। उसके पिता ने महाराज को सन्तुष्ट करना ही उचित समझा, उसकी कोई चिन्ता नहीं की। यह देखकर सखी के दुख से दुखी लवंगिका ने भगवती से सहायता की प्रार्थना की, पर वह बोलीं, "मैं यहां क्या कर सकती हूं। अपनी पुत्री पर पिता का पूर्ण अधिकार है। हां, वधू और वर अपने आप कुछ करें तो मनचाही बात हो सकती है। पुराने ज़माने में ऐसी अनेक घटनाएं हुई हैं। अपनी इच्छा से ही विश्वामित्र की बेटी शकुन्तला ने दुष्यन्त से, देवलोक की अप्सरा उर्वशी ने पुरुरवा से और उज्जयिनी के राजा चंडमहासेन की बेटी वासवदत्ता ने कौशाम्बी के राजा उदयन से विवाह किया था, पर ऐसा करने के लिए साहस चाहिए।"

ये बातें हो ही रही थीं कि अवलोकिता बोल उठी, "भगवती, देर हो गई। माधव की तबियत बहुत खराब है। उनका समाचार लेना चाहिए।"

माधव का नाम सुनकर मालती और लवंगिका उनका परिचय जानने को उत्सुक हो उठीं। लवंगिका बोली, "माता, आप बार-बार 'माधव-माधव' कहा करती हैं। वह कौन है? मालूम होता है कि आप

उन्हें बहुत प्यार करती हैं।" भगवती कामन्दकी ने माधव और उनके पिता का परिचय देते हुए कहा, "मालती के पिता भूरिवसु माधव के पिता देवरात को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। आजकल अपने बचपन के साथी मकरन्द के साथ जो न्यायशास्त्र पढ़ते हैं, वही माधव देवरात के पुत्र हैं।" यह परिचय पाकर मालती बड़ी प्रसन्न हुई, लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये—क्या वह फिर उन्हें देख सकेगी ?

: २ :

इधर मालती दुखी थी, उधर माधव के मन में टीसें उठा करती थीं, पर भगवती कामन्दकी चुपचाप अपने काम में लगी हुई थी। उस दिन कृष्ण चतुर्दशी थी। शास्त्र में लिखा है कि इस दिन अपने हाथों से फूल चुनकर शंकर की पूजा की जाय तो सौभाग्य अटल रहता है। इसीलिए भगवती कामन्दकी की आज्ञानुसार मालती की माता ने उसे और लवंगिका को शिवालय के पास की वाटिका में भेजा। माधव पहले से ही वहां बैठे थे। इस योजना के साथ-साथ एक और योजना वहां चल रही थी। भगवती का विचार था कि माधव के बाल-सखा। मकरन्द का विवाह

नन्दन की बहन मदयन्तिका से हो जाय तो बहुत अच्छा होगा। इस काम के लिए उन्होंने मदयन्तिका की सखी बुद्धरक्षिता को नियत किया था। इसलिए उस दिन मदयन्तिका भी दर्शनों के लिए शिवालय जा रही थी।

मालती बड़ी उदास थी। उसे बार-बार माधव की याद आती थी। लवंगिका प्रकृति, पुष्प और पक्षियों का वर्णन करके उसका मन बहलाने लगी। भगवती कामन्दकी भी साथ थी और माधव भी पास ही था। वह उन सबको देख सुन सकता था। जब मालती फूल चुनते-चुनते थक गई तो भगवती के कहने पर वे सब बैठ गईं और भगवती उन्हें माधव की कथा सुनाने लगी कि वह मालती से प्रेम करने लगा है। उसकी दशा बराबर गिरती जा रही है। वह अपने प्राण हथेली पर लिये फिरता है। न जाने कब कैसा साहस कर बैठे इत्यादि, इत्यादि....।

ये बातें सुनकर माधव बड़ा प्रसन्न हुआ, परन्तु मालती बहुत भयभीत और व्याकुल हो उठी। इसके उत्तर में लवंगिका ने कहा, "मालती की दशा भी ऐसी ही है। किसी कला में उसका जी नहीं लगता। दिन भर गाल पर हाथ धरे बैठी रहती है। जबसे माधव को देखा है, शरीर की जलन बढ़ती ही जाती है। हम लोग

सब कुछ करती हैं। चांदनी में टंगा चन्द्रहार इसे पहनाती हैं, शरीर पर कदलीफल से चन्दन का लेप करती हैं, पर यह तड़पती रहती है। रो-रोकर कहती है, "विधाता, मैं तो मरना चाहती थी। जी के क्या करूं ?" इसका दुःख कैसे दूर हो ? कुछ नहीं सूझता। आप ही कुछ उपाय करिये।"

माल्ती की ऐसी दशा है, यह जानकर भगवती कामन्दकी भी बड़ी दुखी हुई; लेकिन वह कुछ उपाय सुझाती कि इतने में पास ही कहीं कोलाहल मचने लगा। उन्होंने सुना, कोई पुकार रहा था, "भागो, भागो, एक भयानक शेर एकाएक लोहे के कटघरे से निकल भागा है। कटार के समान दांतों से हड्डियां कटकटाता हुआ, गुफा जैसा मुंह वाये वह इधर-उधर दौड़ रहा है। एक ही चपेट में मनुष्य, बैल और घोड़ों को मार कर और उनका रक्त-मांस गले में भर कर, वह अपने घोर गर्जन-तर्जन से आकाश को कंपा रहा है . . . भागो, भागो, अपने प्राण बचाओ।"

इसी समय बुद्धरक्षिता भी दौड़ती हुई वहां आई। वह बुरी तरह घबरा रही थी और कह रही थी, "बचाओ, बचाओ। नन्दन की बहन मदयन्तिका शेर के पंजे में फंस गई है। जो उसे बचाने गये उन्हें भी शेर

ने मार डाला। अब शीघ्र कोई आओ और उस बेचारी को बचाओ।"

यह समाचार पाकर मालती घबरा उठी, लेकिन माधव एकदम कुंज से बाहर निकल आए और मदयन्तिका की रक्षा करने के लिए बुद्धरक्षिता के साथ चले गए। उन्हें देखकर पहले तो मालती बड़ी प्रसन्न हुई, फिर उसका मन शंका से भर उठा कि कहीं उन्हें कुछ हो न जाय। लेकिन इधर माधव शेर तक पहुंच पाते इससे पूर्व ही मकरन्द ने किसी गिरे हुए मनुष्य का धनुष उठा लिया और वह उस भयानक शेर की ओर लपका। शेर भी उस पर झपटा, लेकिन मकरन्द ने तुरन्त उसे मार डाला। यह देखकर सब लोग 'धन्य, धन्य' कर उठे। पर इस युद्ध में उसके भी कम चोट नहीं लगी थी। कुछ क्षण तो वह तलवार के सहारे खड़ा रहा, फिर बेहोश होकर गिर पड़ा। मदयन्तिका ने उसे गिरते देखा तो घबरा उठी और उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगी। माधव और कामन्दकी आदि भी उसीकी ओर लपके, पर वहां पहुंचते-पहुंचते माधव स्वयं बेहोश हो गये। अब तो सब-की-सब उनके उपचार में लग गईं। कामन्दकी ने अपने कमण्डल से दोनों पर जल छिड़का। शेष सब अपने आंचल से हवा

करने लगीं। काफी देर बाद जब उन्हें होश आया तो चारों ओर हर्ष की लहर दौड़ गई। सबने एक दूसरे को पहचाना और प्रेम भरी दृष्टि से देखा। बुद्धरक्षिता ने भी उचित अवसर जान कर मदयन्तिका को बताया कि वह उससे जिनकी चर्चा करती रही है वह मकरन्द यही हैं। माधव भी एक प्रकार से मालती से वचनबद्ध हो गये, लेकिन इसी समय एक पुरुष वहां आया। उसने मदयन्तिका से कहा, "बेटी, तेरे बड़े भाई नन्दन ने सन्देश भेजा है कि आज महाराज हमारे घर पधारे थे। उन्होंने मेरा विवाह मालती के साथ करने का निश्चय किया है। उसीके सम्बन्ध में आज आनन्द उत्सव मनाने का विचार है। इसलिए तुम चलकर मन्दिर को सजाने का प्रबन्ध करो।"

मदयन्तिका यह सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई, लेकिन मालती और माधव दोनों उदास हो उठे। दुःख तो औरों को भी हुआ, पर ऊपर से उन्होंने मदयन्तिका को बधाई दी और वह बुद्धरक्षिता के साथ, मकरन्द की ओर देखती हुई, अपने महल में चली गई। उसके जाने के बाद माधव और भी दुखी हो उठे। मालती से विवाह होने की आशा जाती रही। कार्य के आरम्भ में ही विधाता उल्टे पड़ गये। मालती का दुख अब

वह कैसे महेंगे ?... उसकी यह दशा देखकर भगवती कामन्दकी ने उन्हें समझाया कि उन्हें अभी आशा नहीं छोड़नी चाहिए। अमात्य भूरिवसु ने महाराज से जो कुछ कहा है उसके विषय में भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने मकरन्द से कहा, "मैं भी इस ओर से असावधान नहीं हूं। कुछ भी क्यों न हो, मेरी जान पर ही क्यों न आ बने, मैं यही प्रयत्न करती रहूंगी कि मालती का विवाह माधव के साथ हो।"

इस प्रकार भगवती कामंदकी उन सबको समझा रही थी कि उन्हें महारानी का सन्देश मिला, "मालती को लेकर अभी आओ।" वह तुरन्त जाने के लिए उठी। तब मालती की मूक वेदना और भी तीव्र हो आई। वह सोचने लगी—अब जी के क्या करूं। पिता की निर्दयता तो सीमा को पार कर गई है। विधाता ने जो चाहा वही हुआ। अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? किसे दोष दूं ?

उसके जाने के बाद माधव ने निराश होकर मन-ही-मन श्मशान में महामांस बेचने का निश्चय किया और फिर मकरन्द को साथ लेकर वह स्नान करने के लिए पारा और सिन्धु के संगम पर चले गये।

: ३ :

जिस समय माधव हाथ में तलवार लेकर श्मशान में महामांस बेचने पहुँचे तो सन्ध्या बीत चुकी थी। उसी समय भयानक रूप धरे कपालकुण्डला भी वहां आई। पहले तो उसने कौतुक से माधव को देखा, फिर उधर से ध्यान हटा लिया। पास ही कराला देवी का मठ था। वहां उसका गुरू अघोरघन्ट मंत्रसिद्धि को पूर्ण करने के लिए विशेष रूप से, देवी की पूजा करने जा रहा था। वह उसी के लिए सामान इकट्ठा कर रही थी। मंत्र-साधना से पहले बलि चढ़ाने के लिए एक कन्या की आवश्यकता थी। उसीको लाने के लिए वह शहर चली गई। माधव मालती को याद करते हुए वहीं घूमते रहे। इधर-उधर घूमते-फिरते पिशाचों की भीड़ के कारण श्मशान की भयंकरता और भी बढ़ गई थी। कुछ नाच रहे थे। कुछ वैसे ही शोर मचा रहे थे। माधव उन्हें पुकार-पुकार कर कहने लगे, "अरे भूत-पिशाचो, डाकनियो आओ, आओ, मैं महा-मांस बेच रहा हूं। यह पूजा के योग्य पुरुष का मांस है। बिना शस्त्र के काटा गया है। आओ, इसे लो।"

इस पर कोलाहल और भी बढ़ गया। उनके वीभत्स कामों से श्मशान की भयंकरता और भी

भयानक हो उठी। उनकी वेषभूषा और उनकी बातचीत करने की रीति ऐसी डरावनी थी कि दिल दहल उठता था, फिर भी माधव की पुकार सुनकर वे सब डर गए और शीघ्र ही वहां से भाग गये। माधव भी घूमते-घूमते श्मशान के दूसरे किनारे पर पहुंच गये। तभी एकाएक उन्होंने सुना, कोई करुण स्वर में पुकार रहा था, "हाय, निर्दय पिता, जिसे भेंट देकर आप महाराज को प्रसन्न करने वाले थे वह तुम्हारी बेटी अब मुसीबत में फंस गई है।"

माधव को लगा, जैसे यह स्वर जाना पहचाना है। उसे सुनकर उनका दिल फटने लगा। वह कांप उठे—यही सामने तो कराला देवी का मन्दिर है। हो न हो, यहीं से यह स्वर आ रहा है। देखना चाहिए।

वह तेजी से उधर ही चल पड़े। वहां अघोरघंट और कपालकुंडला दोनों देवी के ध्यान में मग्न बैठे थे। मालती बलिदान के सारे चिन्ह धारण किये एक कोने में खड़ी थी और पुकार रही थी, "हाय मां, मालती तुमको प्राणों से अधिक प्यारी थी, पर अब क्या होगा। भगवती [illegible] की, आपको संसारी दुखों से क्या मतलब था; पर आप मुझे कितना प्यार करती रहीं। वही प्यार अब आपको सताएगा। हाय प्यारी

सखी लवंगिका, अब इस जन्म में तुमसे मिलना नहीं हो सकता ।"

तभी माधव वहां पहुंच गये। उन्होंने देखा—कपालकुंडला और अघोरघंट देवी की आरती उतार चुके हैं। अघोरघंट अपनी अभिमंत्रित तलवार मालती के गले पर रख रहा है और कपालकुंडला उससे कह रही है, "तेरा काल आ पहुंचा है। जो कोई तेरा प्रिय हो, उसे याद करले ।"

मालती माधव का स्मरण करने लगी और अघोरघंट ने तलवार उठाई कि तभी एकाएक खड्ग खींचकर माधव उनके बीच में जा कूदे। उन्होंने ललकारा, "रे दुष्ट, पीछे हट, खबरदार जो आगे पैर रखा! यदि ऐसा किया तो जीता नहीं रहेगा ।"

माधव को देखकर मालती पुकार उठी, "महाराज, मुझे बचाओ, मुझे इन दोनों से बचाओ ।"

माधव ने मालती को ढाढ़स बंधाया और स्वयं कापालिक से जा भिड़े। दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। कपालकुंडला अघोरघंट को उत्साहित करती थी और मालती माधव को। वे दोनों भी उन दोनों को अपनी-अपनी जय का विश्वास दिलाते थे और दूने उत्साह से एक-दूसरे पर आक्रमण करते थे।

इधर यह युद्ध चल रहा था उधर मालती को खोजने वालों ने देवी के मन्दिर को घेर लिया। भगवती कामन्दकी ने अमात्य भूरिवसु को बता दिया था कि मालती जैसी सुन्दरी कन्या को अघोरघंट के सिवा और कोई नहीं ले जा सकता। वह अवश्य उसे कराला देवी की भेंट चढ़ायेगा। कपालकुंडला ने यह देखकर तुरन्त अघोरघंट को सूचना दी। वह दुष्ट तनिक भी नहीं घबराया। माधव को तो डर ही क्या था। उन्होंने मालती को आये हुए आदमियों को सौंप दिया और खुले युद्ध में सबके सामने ही अघोरघंट को मार डाला। यह देखकर कपालकुण्डला क्रोध से पागल हो उठी और उसने माधव को ललकारा, लेकिन माधव ने स्त्रीवध का पाप लेने से इन्कार कर दिया। इस पर वह बदला लेने को और भी आतुर हो उठी।

ऐसा करने का अवसर भी उसे तुरन्त मिल गया। विवाह मंडप में जाने से पहले मालती कामंदकी की आज्ञा से नगर देवी का दर्शन करने गई। माधव तब मकरंद के साथ वहीं छिपे बैठे थे। उनके सेवक कलहंस ने उन्हें मालती के आने की सूचना दी। वह बड़े ठाठ-बाट से आ रही थी। मंगल बाजे बज रहे थे। पैरों में पैंजनी पहने हथनियों पर चढ़ी हुई, सजी-धजी गणिकायें

मधुर-मंगल-गान कर रही थीं । चीन देश के रंग-बिरंगे वस्त्रों को देखकर ऐसा लगता था, मानो ढेर सारे इन्द्रधनुष उग आये हों; लेकिन इस सारे ऐश्वर्य के बीच कोमल वदन वाली मालती वेदना के कारण एकदम दुबली हो गई थी । रंग उसका पीला पड़ गया था, मानों ऊपर के फूलों से लदी किसी लता को भीतर से कीड़े ने खा लिया हो ।

हथिनी से उतर कर वह भगवती कामन्दकी और लवंगिका के साथ मन्दिर की ओर चली । तभी महाराज के भेजे आभूषण लिये प्रतिहारी वहां आई। भगवती कामन्दकी ने मालती और लवंगिका को मंदिर में भेज दिया और आप गहनों को परखने के बहाने बाहर ही ठहर गई । अन्दर मालती की बुरी दशा थी । उसका हृदय स्थिर नहीं था। वह लवंगिका से बहकी-बहकी बातें कर रही थी । माधव और मकरंद भी सब कुछ देख-सुन रहे थे । वे भी उसके दुःख से बड़े दुखी हुए और जब मालती आत्महत्या की आज्ञा मांगने के लिए लवंगिका के चरणों पर गिर पड़ी तब तो प्रेम की हद हो गई। इसी समय लवंगिका के संकेत पर माधव उसके स्थान पर खड़े हुए । मालती बारबार प्रार्थना करने लगी, "सखि, मेरी बात मान ले, देर न कर।

तू मेरी बात पर ध्यान क्यों नहीं देती ?"

उसके बार-बार ऐसा कहने पर माधव ने कहा, "जैसा तेरा मन हो, वैसा कर।"

मालती उस स्वर को न पहचान सकी। वह प्रसन्न होकर उठी और वह माला, जो उसने एक दिन माधव से मंगवाई थी, लवंगिका के गले में पहनाने चली; पर जैसे ही दृष्टि उठाई, उसने माधव को पहचान लिया। एकदम कांपकर पीछे हट गई। बदन से पसीना छूटने लगा। मुंह से निकला, "अरे, लवंगिका ने मुझे बड़ा धोखा दिया।"

तभी कलहंस और भगवती कामन्दकी आदि सब लोग वहां आ गये और बड़े स्नेह से आंखों में आंसू भर कर भगवती ने माधव से कहा, "पुत्र,सारे मांडलिक राजा जिसके चरणों में मस्तक झुका कर धन्य होते हैं उसी प्रधानमंत्री भूरिवसु की यह इकलौती पुत्री मालती मैं तुम्हें सौंपती हूं।"

फिर मकरन्द से बोली, "लो, यह आभूषण पहन कर तुम मालती बन जाओ और पूर्व योजना के अनुसार मेरे साथ चल कर नन्दन से विवाह करा लो।"

जब मकरन्द मालती का वेश धारण करके आ गया तो जाने से पूर्व मालती-माधव से कहा, "इस मठ

के पिछवाड़े एक बगीचा है। गुप्त द्वार से निकल कर तुम उसीमें चले जाओ। अवलोकिता व्याह का सब सामान लिये बैठी है। वहीं तुम्हारा व्याह होगा और जबतक मदयन्तिका और मकरन्द न आ जायं, तबतक वहीं ठहरना।"

: ४ :

मालती वेशधारी मकरन्द की शादी नन्दन से ठीक-ठीक हो गई। किसी को कुछ पता नहीं लगा, परन्तु मकरन्द ने उसे पास नहीं आने दिया। जब उसने बल-प्रयोग करना चाहा तो एक ऐसी लात जमाई कि वर महाशय रो पड़े। फिर गालियां देते हुए वहां से भाग गये। मदयन्तिका को जब इस बात का पता लगा तो उसे बड़ा दुख हुआ और मालती को समझाने के लिए वह उसके पास आई। वह मालती को ही अपराधी समझती थी, पर लवंगिका और बुद्धरक्षिता ने उसे ऐसी पट्टी पढ़ाई कि वह अपने भाई को दोषी मानने लगी। फिर भी उसने कहा, "मेरे भाई ने जो कड़ी बात कही, वह भी बेसिर-पैर की नहीं है। सारे शहर में मालती-माधव के प्रेम की चर्चा हो रही है।"

इस पर बात आगे बढ़ी और उस चर्चा में मकरन्द का नाम भी आ गया। मदयन्तिका धीरे-धीरे

सब कुछ भूलकर मकरन्द की याद में आत्म-विभोर हो उठी और मन की सब बातें कह बैठी। उसने यहां तक कह दिया, "जबसे उस वीर ने अपने प्राण संकट में डालकर मुझे शेर के पंजे से छुड़ाया है, तबसे मैं उनकी हो चुकी हूं।"

इसी समय बाहर नौबत बजने लगी। मदयन्तिका घबरा उठी, "अरे, क्या आधी रात हो गई। मैं अब जाती हूं और भैया को समझाती हूं कि वह मालती को मना ले।"

लेकिन जैसे ही वह उठी, मकरन्द ने अपने आपको प्रकट कर दिया। एक बार तो मदयन्तिका घबरा गई, फिर उसे बड़ी खुशी हुई और वह उसके साथ खिड़की के रास्ते वहीं चली गई, जहां मालती और माधव थे।

उधर मालती-माधव, अवलोकिता के साथ उन्हीं की चर्चा कर रहे थे। इसी समय उन्होंने किसी के आने की आवाज सुनी। शीघ्र ही बुद्धरक्षिता, लवंगिका, मदयन्तिका और कलहंस ने घबराये हुए वहां प्रवेश किया। उन्होंने माधव से कहा, "महाराज, अपने मित्र की रक्षा करो। यहां से कुछ दूर पर वह पहरेदारों के साथ अकेले युद्ध कर रहे हैं। जल्दी जाकर उनकी सहायता करो।"

कलहंस बोला, "प ,रदार यदि थोड़े होते तो चिन्ता करने की कोई बात नहीं थी, परन्तु हमारे इधर आते ही उन लोगों का बड़ा शोर मुन पड़ा । ऐसा लगता है कि उन लोगों की सहायता के लिए और बहुत से लोग आ गये हैं ।"

माधव ने शान्ति से उनकी बातें सुनी । उन्होंने म यान्तिका का स्वागत किया और कहा, "यहां अच्छी तरह बैठो । मकरन्द अकेले हैं, इस बात से तुम तनिक भी न घबराओ । उनके सामने कितने ही पुरुष क्यों न आवें, वे उनका बाल बांका भी नहीं कर सकते । फिर भी मेरे जाने में कुछ देर नहीं है ।"

यह कहकर वह कलहंस के साथ चले गये । उनके जाने के बाद मालती ने बुद्धरक्षिता और अवलोकिता को कामन्दकी के पास भेज दिया । फिर लवंगिका को माधव के पास जाने को कहा, "बहन लवंगिका, आर्य त्र से मेरी ओर से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करना कि वह जो मुझ पर दया करते हैं, तो बहुत समझ-बूझ कर युद्ध करें ।"

उन सबके जाने के बाद भी उसकी चिन्ता कम नहीं हुई । मदयान्तिका को छोड़कर वह बाहर जाकर लवंगिका की राह देखने लगी । वह कुछ ही दूर गई होगी कि एकाएक कपाल ण्डला ने उसे ललकारा ।

वह घबरा कर चिल्ला उठी, पर वहां उसकी पुकार सुनने वाला कौन था ? कपालकुंडला बोली, "अब बता मेरे गुरु को मारने वाला वह तेरा माधव कहां है ? आज मैं तुझे खूब मजा चखाऊंगी। चल तो जरा फिर देखना, तुझे कैसा तिल-तिल काट कर हलाल करती हूं।"

इस तरह धमकाती हुई कपालकुंडला मालती को लेकर चली गई। तभी मदयन्तिका उसे पुकारती हुई वहां आई। लेकिन मालती अब वहां कहां थी ! लौटती हुई लवंगिका ही उसे मिली। उसने बताया कि महाराज को सब बातों का पता लग गया है। वह बड़े क्रुद्ध हो रहे हैं। उन्होंने स्वयं सैनिकों को भेजा है और आप महल से उनका युद्ध देख रहे हैं। उधर नगर के लोग माधव और मकरन्द का नाम ले-लेकर रो रहे हैं।

यह सुनकर मदयन्तिका बड़ी दुखी हुई और फिर वे दोनों इधर-उधर मालती को ढूढने लगीं। उधर माधव और मकरन्द ने महाराज के सैनिकों को ज़रा-सी देर में मार भगाया। महाराज उनका युद्ध कौशल देखकर बड़े प्रसन्न हुए। जब वे दोनों उनके पास गये तो वे बड़े प्यार से उन्हें देखने लगे और जब उन्हें उनका परिचय मिला तब तो उन्होंने दोनों का बड़ा आदर किया। मंत्री से बोले, "कहिये, ऐसे सुन्दर और गुणवान मह-

मानों को पाकर आपकी इच्छा पूरी हुई या नहीं ।"

इस प्रकार आदर पाकर महाराज की सज्जनता को सराहते हुए वे दोनों वहां लौटे जहां मालती आदि को छोड़ गये थे । लेकिन वहां कोई भी नहीं था । उन्होंने सोचा कि शायद वे इधर-उधर चली गई हैं । इसलिए वे उन्हें खोजते हुए आगे बढ़े । तभी मदयन्तिका और लवंगिका भी उधर आ गईं, लेकिन मालती का किसी को कहीं पता नहीं लगा । मकरन्द को छोड़कर वे सब घबराने लगे । मकरन्द ने कहा, "बिना जाने पूछे इस तरह नहीं घबराना चाहिए । हो सकता है, वह भगवती कामन्दकी के पास चली गई हो ।"

वे उधर ही चल पड़े ।

: ५ :

भगवती कामन्दकी की एक और शिष्या थी सौदामिनी । वह उनकी सखी के समान थी और श्री पर्वत पर रहती थी । जब वह पद्मावती आई तो माधव घर-बार छोड़कर मकरन्द के साथ मालती को खोजते हुए पहाड़ों की घाटियों, कन्दराओं और गहन वनों में मारे-मारे फिर रहे थे । उन्हीं को समझाने के लिए वह उन्हें इधर-उधर खोजने लगी । उसी वन के दूसरे भाग में माधव ठण्डी सांसें भरते हुए घूम रहे थे । मकरन्द

उनका मन बहलाने के लिए कभी सुन्दर हंसों की ओर उनका ध्यान खींचता था, कभी कुंज, लता, नदी और वनश्री की शोभा वर्णन करता था, पर माधव का दुख बढ़ता ही जाता था, यहां तक कि वह रोते-रोते बेसुध हो गये। अब तो मकरन्द का हृदय भी फटने लगा। वह उनकी देह पर हाथ फेर-फेर कर रोने लगा। परन्तु वर्षा आ जाने के कारण माधव की मूर्छा दूर हो गई और वह फिर मालती को सन्देशा भेजने के लिए बिजली और बादलों के पीछे पागलों की तरह दौड़ने लगे। फिर पर्वत और वन के जीव-जन्तुओं से पूछने लगे कि क्या उन्होंने कहीं मालती को देखा है। लेकिन किसी ने उनकी बात नहीं सुनी। तब उन्हें होश आया—मैं भी कैसा पागल हूं, जो इस वनचर से इस प्रकार बातें करने लगा जिस प्रकार मुझे मकरन्द से करनी चाहिए थी। कहां यह पशु, कहां वह सहृदय!

बस वह मकरन्द की ऐसी याद करने लगे जैसे वह कहीं दूर हो, पर वह तो पास ही था। सामने आकर बोला, "भाई, तुम्हारा जन्म का साथी अभागा मकरन्द तो आपके पास ही है।

उसे गले लगाकर माधव फिर मूर्छित हो गये। मकरन्द ने उन्हें होश में लाने के बड़े प्रयत्न किये, पर

जब वह नहीं जागे तो रोता-कलपता वह भी पाटलावती नदी में कूद कर मरने को तैयार हो गया। तभी सौदामिनी ने उसे पकड़ लिया और वकुलमाला दिखा कर [illegible] कि मालती जीवित है। वहां से वह शीघ्र माधव के पास लौटे। उनकी मूर्छा टूट चुकी थी और उसके लिए वह हाथ जोड़ कर वायु को धन्यवाद दे रहे थे। तभी सौदामिनी ने उनकी अंजलि में वकुलमाला डाल दी। उसे देख कर वह अचरज, हर्ष और उन्माद से कांप उठे और उन्होंने समझा कि मालती कहीं पास ही है। वह उसको ढूंढने लगे। जब वह वहां नहीं मिली तो उन्हें फिर मूर्छा आने लगी, पर तभी सौदामिनी ने आगे बढ़कर उन्हें मालती के जीवित होने का समाचार सुनाया। उन्होंने यह भी बताया कि कैसे माधव के अघोरघंट का वध करने के बाद ...

अघोरघंट का नाम सुनते ही माधव सबकुछ समझ गये कि कपालकुण्डला ने मालती को चुरा कर उनसे बदला लेने का अपना प्रण पूरा किया है। उन्हें बड़ा दुख हुआ, पर सौदामिनी ने कहा, "मैंने उसका सब काम बिगाड़ दिया है। तुम दुखी मत होओ।" और वह माधव को लेकर आकाश मार्ग से वहां से चली गई।

सौदामिनी ने अपना परिचय नहीं दिया था, इस-

लिए मकरन्द को अभी पूरी तरह विश्वास नहीं आया। वह सब समाचार सुनाने के लिए भगवती कामन्दकी को ढूंढने चला गया। वह भी लवंगिका और मदयन्तिका के साथ मालती की याद में रोती-कलपती वन में घूम रही थी। वे इतनी विकल थीं कि तीनों मरने को तैयार हो गईं। इसके लिए वे मधुमती में कूदने चलीं, पर तभी उन्होंने मकरन्द का स्वर सुना और यह भी सुना कि मालती का मरना सुन कर भूरिवसु भी चिता में जलकर मरने को तैयार है। यही नहीं, दो क्षण बाद उन्होंने स्वयं मालती का स्वर भी सुना। वह पिता को पुकार रही थी। उस स्वर को सुनकर सब चौंक उठे और दूसरे ही क्षण उन्होंने हर्ष से विभोर होकर देखा कि मूर्छित मालती को संभाले हुए माधव आ रहे हैं। पिता की याद में मालती की बुरी दशा हो रही थी। दोनों एक-दूसरे के स्नेह के कारण, प्राण देने पर तुले हुए थे। उसकी यह दशा देखकर वे सब मूर्छित हो गये, लेकिन शीघ्र ही जाग उठे। मालती की मूर्छा भी खुल गई। तभी ऊपर से सौदामिनी का स्वर सुनाई दिया कि मेरे कहने पर अमात्य भूरिवसु ने आग में जलने का विचार छोड़ दिया है।

ये बातें सुनकर सब प्रसन्न हो उठे। सब एक-

दूसरे से ललक कर मिले। माधव ने सबको मालती के खो जाने की सच्ची घटना सुनाई और तभी सौदामिनी ने आकर भगवती कामन्दकी को प्रणाम किया, "भगवती कामन्दकी, चिरकाल की सखी और शिष्या सौदामिनी आपके चरण-कमलों में विनीतभाव से प्रणाम करती है।"

कामन्दकी ने उन्हें छाती से चिपका कर उनकी बड़ी प्रशंसा की। मालती बोली, "ये धन्य हैं। इन्होंने मां कामन्दकी का पक्ष लेकर कपालकुण्डला की खूब दुर्दशा की। मुझे अपने आश्रम में ले गई। बेटी की तरह मुझे ढाढस बंधाया। फिर मुझसे मौलसिरी की माला लेकर उसके सहारे तुम सबको मरने से बचाया. . .।"

सौदामिनी मन-ही-मन इस प्रशंसा से बड़ी लजाई, पर प्रकट में उन्होंने कहा, "भगवती, पद्मावती के महाराज ने मंत्री भूरिवसु के सामने नन्दन की राय से यह पत्र माधव के लिए स्वयं लिख कर भेजा है।"

देवी कामन्दकी ने उस पत्र को पढ़ा। उसमें महाराज ने मकरन्द और मदयन्तिका तथा माधव और मालती के विवाह की स्वीकृति दी थी और उनका स्वागत किया था।

अब तो सबके मन कमल खिल उठे। सब शंकाएं दूर हो गईं। सबके मनोरथ पूरे हुए। सौदामिनी

बोली, "इसमें सबसे अच्छी बात तो यह हुई कि अमात्य भूरिवसु और देवरात ने अपने बच्चों के विवाह की जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हुई।"

जब सब लोगों को इस रहस्य का पता लगा तो वे बड़े चकित और प्रसन्न हुए। भगवती कामन्दकी बोली, "वत्स माधव, सब कुछ ठीक हो गया। बोलो, अब और क्या चाहते हो?"

माधव ने उत्तर दिया, "इससे बढ़कर और क्या हो सकता है, तो भी आपके प्रसाद से सन्त प्रसन्न हों, पापियों का अन्त हो। राजा लोग धार्मिक, न्यायकारी, उपकार करने वाले और दुख-दरिद्रता को दूर करके जीवन देने वाले हों। वर्षा समय पर हो, जिससे खूब अनाज पैदा हो। बुरे चरित्र सुधर जायें, पवित्र भावों का उदय हो। सब कहीं सुराज हो और प्रजा सुखी हो।"

●

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१९

माघ-कृत

शिशुपाल-वध

श्री सुशील

द्वारा

कथासार

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

१९५५

सस्ता साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५५
मूल्य
छ: आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान् सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें और इस कार्य को संस्कृत-प्रेमी श्री [illegible]जी से तभी प्रारम्भ भी करा दिया था। उन्होंने कई ग्रन्थों का कथासार हमारे लिए कर दिया था। हिन्दी के पाठकों की सेवा में उस तथा कुछ अन्य सामग्री को सम्पादित करके उपस्थित किया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'शिशुपाल वध' संस्कृत साहित्य के तीन प्रसिद्ध महाकाव्यों में से एक है। पंडित लोग विशेष रूप से इसका अध्ययन करते हैं। इसी महाकाव्य के लेखक हैं माघ। कालिदास उपमाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, भारवि अर्थ-गौरव के लिए और दंडी पदलालित्य के लिए। लेकिन माघ में ये तीनों गुण पाये जाते हैं। उन्होंने केवल एक ही ग्रंथ लिखा है, लेकिन उसी एक के कारण वह अमर हैं। 'शिशुपाल वध' की कथा बड़ी साधारण है; पर कवि ने अपनी प्रतिभा से उसमें अद्भुत चमत्कार पैदा कर दिया है। उनका ऋतुवर्णन, अलंकारों का प्रयोग, प्रकृति निरीक्षण शक्ति तथा वाक्चातुरी सब अद्भुत हैं।

दूसरे महाकवियों की भांति उनके जीवन के बारे में भी बहुत कम मालूम है। जो कुछ कवि ने स्वयं लिखा है उससे तो यही पता लगता है कि उनके पिता दत्तक सर्वाश्रय थे। वे विद्वान् तो थे ही, अतिशय दानी भी थे। उनके दादा सुप्रभदेव महाराज वर्मल के महामात्य थे।

विद्वानों ने महाराज वर्मल का समय विक्रमी संवत् ६८२ निश्चित किया है। इसके अनुसार माघ ईस्वी सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और ईस्वी आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रहे होंगे। दूसरे प्रमाणों से भी अभी तक यही सिद्ध हुआ है। राजा भोज और इनको लेकर भी एक कथा प्रचलित है, पर वह सही नहीं है। सही इतना ही है कि माघ की जन्मभूमि भिन्नमाल (वर्तमान श्रीमाल) आजकल राजस्थान और गुजरात की सीमा पर है। वह प्रतिष्ठित धनाढ्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। वह शिक्षित थे, दानी थे, वैभवशाली थे, विद्वान थे और थे विनोदप्रिय। इन सब गुणों की छाप 'शिशुपालवध' पर है।

सम्पादक

शिशुपाल-वध

: १ :

एक बार श्रीकृष्ण अपने पिता वसुदेवजी के घर [illegible] कर रहे थे कि उसी समय उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र नारदमुनि को आकाश से उतरते हुए देखा। एकाएक वह उन्हें पहचान न सके। सोचने लगे कि यह चारों ओर फैला हुआ तेज क्या है जो आकाश से सीधा नीचे की ओर गिरता चला आ रहा है! पहले तो उन्होंने उसे 'तेज पुंज' समझा। फिर जब पास आ गया तो देखा कि वह कोई 'शरीरधारी' है; और पास आया तो उसके अंग साफ दिखाई देने लगे। वह समझ गये कि यह तो कोई 'पुरुष' है। अन्त में स्पष्ट हो गया कि वह नारद हैं।

नारद की जटाएं कमल के केसर की तरह भूरे रंग की थीं। उनका रंग शरत् ऋतु के चन्द्रमा के समान गोरा था। वह ऐसे दिखाई दे रहे थे जैसे वर्फीले स्थानों पर उगी हुई और पुरानी पड़ जाने के कारण पीली बेलों से शोभित हिमालय। वे काले रंग की मृगछाला ओढ़े हुए थे, जिसे भूरे रंग की मूंज की

मेखला से बांध रखा था। जनेऊ सुनहले रंग का था। गले में स्फटिक की माला थी और वह अपनी 'महती' नाम की वीणा को बारम्बार देख रहे थे।

उन्हें पहचान कर श्रीकृष्णजी अपने आसन से उठ खड़े हुए और विधिपूर्वक पूजा करके उन्हें बड़े आदर के साथ बिठाया। महर्षि ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया और अपने कमण्डल में लेकर उनपर जल छिड़कने लगे। उस जल को श्रीकृष्ण ने सिर झुका कर ग्रहण किया। वह सारे तीर्थों का जल था। महर्षि नारद ने श्रीकृष्ण की बड़ी प्रशंसा की। इसके बाद श्रीकृष्ण बोले, "आपका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। आपका आना मेरे लिए गौरव का कारण है। यद्यपि आपको किसी बात की चाह नहीं है, फिर भी क्या मैं आपके आने का कारण जान सकता हूं?"

इस पर महर्षि नारद पुनः श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले, "मैं इन्द्र का सन्देशा लेकर आया हूं, उसे सुनिये। दिति का हिरण्यकशिपु नाम का एक पुत्र था। उसने सब देवताओं को पराजित कर दिया था। वह तीनों लोकों में इच्छानुसार घूमता था। आपने तब नृसिंह रूप धारण करके उसका वध किया था। उसके बाद वही दैत्य रावण के रूप में पैदा

हुआ। वह बड़ा साहसी था और उसने शिवजी से वर पाया था। वह बार-बार देवताओं को पराजित करता, उन्हें लूटता और तरह-तरह से परेशान करता था। इन्द्र उसके डर से पहाड़ों में छिपा रहता। विष्णु का चक्र, वरुण का नागपाश अस्त्र, कोई उसका बाल बांका न कर सका। उसने कुबेर का पुष्पक विमान छीन लिया। उसने यम के भैंसे के सींग उखाड़ डाले। यही नहीं, उसने गणेशजी का भी एक दांत उखाड़ दिया था। चन्द्र, वायु, अग्नि सब उसके सेवक थे। वही रावण यह जानकर भी कि आपने ही रामरूप में जन्म लिया है, सीता-हरण करने मे नहीं चूका। तब आपने समुद्र पर पुल बाँध कर उसे मारा था।

वही रावण अब शिशुपाल के रूप में पैदा हुआ है। बचपन में उसके चार हाथ और तीन नेत्र थे। वह बड़ा तेजस्वी और राजाओं से कर लेने वाला है। उसे अपने बल का बड़ा घमण्ड है। उसी घमण्ड के कारण वह दुनिया को परेशान कर रहा है। उसे आप मार डालें।"

यह कथा कह कर जब नारदजी जाने के लिए उठे तो श्रीकृष्ण ने कहा, "नारदजी, ऐसा ही करूँगा।"

: २ :

श्रीकृष्ण शिशुपाल पर आक्रमण करने के लिए जाना ही चाहते थे कि राजसूय-यज्ञ में आने के लिए उन्हें महाराज युधिष्ठिर का निमंत्रण मिला। वह संशय में पड़ गये कि किधर जाऊँ। अन्त में इस बात का निश्चय करने के लिए वह अपने चाचा उद्धव और बड़े भाई बलराम के साथ सभा-भवन में पहुँचे। उन्होंने अपने संशय को उनके सामने रखते हुए कहा, "युधिष्ठिर के सब दिशाओं को जीतने वाले भीम, अर्जुन आदि भाई हैं। वह हमारे बिना भी यज्ञ कर सकते हैं। लेकिन हमें बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। पण्डितों ने बढ़ते हुए रोग और शत्रु को एक जैसा माना है। मैं इस बात से दुःखी नहीं हूँ कि शिशुपाल ने मेरे साथ बुरा वर्ताव किया है, किन्तु वह सबको पीड़ा देता है, यह बात मुझे बहुत दुःख पहुँचाती है। मेरा यही विचार है। अब आप अपनी राय दें।"

यह कहकर श्रीकृष्ण बैठ गये। उनके बाद शिशुपाल के अपकारों को याद करते हुए और उसके दुःख से अपने होठों को कंपाते हुए बलराम उठे। क्रोध के कारण उनका शरीर लाल हो उठा था और उस

पर पसीने की बूंदें चमक आई थीं। उन्होंने कहा, "मेरी राय में कृष्ण ने जो कुछ कहा है उसीके अनुसार शीघ्र काम करना चाहिए। उन्होंने संक्षेप में बहुत कुछ कहा है। उसका अर्थ बड़ा गहरा है। तेजस्वी पुरुष शत्रुओं को जड़मूल से [illegible] बिना उन्नति नहीं करते। सूरज अंधेरे को बिल्कुल मिटा देता है। जबतक एक भी शत्रु बाकी है, मनुष्य को सुख नहीं मिलता।"

फिर उसके अपकारों को गिनाते हुए उन्होंने कहा, "जो शत्रु बार-बार बड़े-बड़े अपराध करता है, उसे कौन क्षमा कर सकता है? वह क्रुद्ध है। उससे सन्धि की बात करना उसे और भी क्रुद्ध करना है। इसलिए आप इन्द्रप्रस्थ न जायं, बल्कि शिशुपाल पर आक्रमण करें। सभी अपना स्वार्थ साधते हैं। युधिष्ठिर यज्ञ करें, इन्द्र स्वर्ग का पालन करें, सूरज जगत् को तपाता रहे और हम शत्रुओं का नाश करें।"

बलराम की ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने उद्धव को बोलने का इशारा किया। उद्धव उठे और शान्त भाव से बृहस्पति के समान बोले, "आप शिशुपाल को अशक्त समझ कर उसका अपमान न करें। ऐसा न समझें कि वह अकेला है, इसलिए आसानी से जीता जा सकता है। वह अकेला नहीं है। बाणासुर, काल-

यवन, शाल्व, रुक्मि, द्रुम आदि अनेक राजा उसके साथ हैं। जैसे छोटी-सी नदी महानदी के साथ मिलकर समुद्र पहुँच जाती है, उसी तरह छोटा-सा मनुष्य बड़ी सहायता पाकर अपना काम सिद्ध कर लेता है। आपके आक्रमण करते ही उसके मित्र और आपके शत्रु सब उसकी ओर हो जायंगे। इस प्रकार उत्तेजित होकर वे राजसूय-यज्ञ में विघ्न डालेंगे। और आप सबसे पहले युधिष्ठिर के शत्रु बन जायंगे। युधिष्ठिर ने आपको इसलिए बुलाया है कि आपके कंधे बहुत बोझ उठा सकते हैं। शत्रु को तो बाद में वश में किया जा सकता है, परन्तु मित्र का मन एक बार खराब हो जाय तो सब कुछ उसका चाहा करने पर भी वह कठिनता से ठीक होता है। आपने अपनी बुआ से यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं तुम्हारे पुत्र के सौ अपराध क्षमा करूंगा।' अभी वह पूरे नहीं हुए हैं, इसलिए भी आपको रुकना चाहिए। तबतक आप गुप्तचरों से उसकी शक्ति का पता लगावें। आपके गुप्तचर आपकी ओर के राजाओं को आपका सन्देश देकर युधिष्ठिर की राजधानी में पहुँचा देंगे। वहाँ युधिष्ठिर आपके प्रति विशेष भक्ति प्रकट करेंगे ही। यह देखकर शत्रु राजा आपसे और भी शत्रुता करने लगेंगे। इस प्रकार

आपको अपनी ओर से युद्ध करने की जरूरत ही नहीं रहेगी, और जब युद्ध शुरू हो जायगा तो वे दुर्बल पक्ष वाले आपके प्रताप की आग में पतंगों की तरह जल मरेंगे।"

उद्धव की ये अर्थ-भरी बातें सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए और अपने आसन से उठकर खड़े हो गये।

: ३ :

इसके बाद युद्ध का विचार त्याग कर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ की ओर चल पड़े। तब उनकी शोभा देखते ही बनती थी। दासों ने उनके मस्तक के ऊपर पूनम के चन्द्र के समान सुन्दर श्वेत छत्र लगाया हुआ था। वे श्वेत रंग के ही चंवर डुला रहे थे। उनके मुकुट में नाना रंग की अनेक मणियाँ जड़ी हुई थीं। उन्होंने कानों में मरकत मणिवाले चमकदार कुण्डल पहने हुए थे। भुजाओं पर अंगद शोभा दे रहे थे। हाथों में पद्म-राग मणियों से जड़े हुए कड़े थे। गले में मोतियों की माला और कौस्तुभ-मणि पहन रखी थी। कमर में भी मोतियों की माला बंधी हुई थी, जो पैरों तक लटक आई थी। शरीर उनका इन्द्र नील मणि के समान नीला था। वस्त्र पीले थे। इस कारण

उनकी शोभा यमुना के उस रंग-बिरंगे जल के समान हो रही थी, जिस पर कमलों का पराग फैला हुआ हो।

उनके दाहिने हाथ में सुदर्शन चक्र था। शत्रुओं के शरीरों को नाश करने में कुशल उनकी गदा कौमोदकी, खड्ग नन्दक और सींगों का बना हुआ धनुष, ये सब भी उनके पास थे। पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनाई दे रही थी और वह शीघ्र चलने वाले पुष्परथ पर चन्द्रमा की तरह शोभित हो रहे थे। जब वह रथ पर बैठ चुके तो साँपों के शत्रु गरुड़ रथ की ध्वजा के ऊपर आ बैठे। चलते समय पर्वतों की गुफाओं को कंपाने वाला नगाड़ों का शब्द होने लगा। धरती कांपने लगी।

उनकी सेना उनके पीछे थी। रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सब एक-दूसरे से सट कर चल रहे थे। उसीके साथ श्रीकृष्ण का रथ भी बहुत धीरे-धीरे चल रहा था। वह मुड़-मुड़-कर समुद्र से घिरी हुई सुन्दर द्वारिका को देखते जा रहे थे। वह द्वारिका रत्नों से भरी हुई थी। उसके भवन बड़े सुन्दर थे। वे मणियों, चित्रों और खिलौनों से सजे थे। उनप पताकाएं लहरा रही थीं। भीतर पालतू पक्षी चहचहाते थे। वहां के मार्ग कीचड़ रहित और विस्तृत थे।

वहां के निवासियों का चरित्र निष्कपट, निष्पाप और कुल-धर्म के अनुसार था। वहां की नारियां परम सुन्दर थीं। घर-घर में कल्पवृक्ष लगे हुए थे। वे लोग जो चाहते थे वही उनको मिलता था।

ऐसी द्वारिका नगरी को देखते हुए श्रीकृष्ण सेना के साथ बस्ती से बाहर आ गये। समुद्र की तरंगें झाग फेंकती हुई उठ रही थीं। उसके कारण ऊंची आवाज हो रही थी। सदा गरजने वाले मेघ एक कोने में चुपचाप जल पी रहे थे। यहां उन्होंने समुद्री द्वीपों में रहने वाले व्यापारियों को देखा और उनका अभिनन्दन किया।

वहां से चलकर वे कच्छ प्रदेश में पहुंचे। सैनिकों ने वहाँ लवंग-पुष्पों की मालाएं धारण कीं, नारियल का जल पिया और हरी सुपारियों को चबाया। इस प्रकार समुद्र का आतिथ्य स्वीकार करते हुए श्रीकृष्ण ने आगे के मार्ग पर रैवतक पर्वत को देखा। वह नाना प्रकार की मणियों और धातुओं से परिपूर्ण था। उसपर चारों ओर से बादल छा रहे थे। ऐसा मालूम होता था, जैसे वह सूरज का रास्ता रोकना चाहता हो। उस पर नाना प्रकार के पुष्पों से आच्छादित वृक्ष थे। उनकी डालों पर नीलकंठ वाले मोर बैठे हुए थे। वहां कमल

भी बहुत थे। उनपर भौंरे गूंज रहे थे।

श्रीकृष्ण ने रैवतक को पहले भी अनेक बार देखा था, लेकिन इस बार उन्हें उसकी नई सुन्दरता देखकर बड़ा अचरज हुआ। यह देखकर उनका सारथी बोला, "महाराज! इस पर्वत की चोटियां बड़ी ऊंची हैं। उनपर चन्द्रमा और सूर्य की किरणें पड़ती हैं। मेघ इन पर जल बरसाते हैं। यहां झरने नाचते हैं। दूब से भरी सुनहरी भूमि वाला होने के कारण, यह आप जैसा लगता है। देखिये, यहां नाना रंगवाले 'प्रियक' जाति के हिरन घूमते हैं। हाथी सरोवरों में घुस कर कमलों से खेलते हैं। यह पर्वत कदम्ब के फूलों की सुगन्ध से महक रहा है। यहां सिद्ध और किन्नर विहार करते हैं। वायु बांसों के सूराख में से होकर अन्दर जाती हुई कैसा मधुर शब्द कर रही है। यहां के सरोवरों में इन्द्र नील मणियों की शिलाएं पड़ी रहती हैं। झरनों के ऊपर से गिरने के कारण जलधारा पर रत्नों की किरणें पड़ रही हैं। उससे वह इन्द्रधनुष की तरह रंगीन हो उठी हैं। यहां न शीत की अधिकता है, न गर्मी की। यहां अनेक नदियां बह रही हैं और उनके दोनों तटों पर कमल खिले हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि यह रैवतक पर्वत आपको अतिथि के रूप

में आया जानकर उठ कर खड़ा हो गया है और आपका सम्मान कर रहा है।"

: ४ :

श्रीकृष्ण ने सारथी की ऐसी प्रिय लगने वाली सच्ची बातें सुनीं तो उन्होंने वहां रुकने की इच्छा प्रकट की। उनकी सेना कदली वनों से शोभित उस ऊंचे रैवनक पर्वत की ओर चल पड़ी।

राजा लोगों ने सिंहों को मार डाला और उनकी गुफाओं में ठहर गये। सबने अपने-अपने लिए सुविधा-जनक स्थान ढूंढ लिये।

कहीं रथों की पंक्तियां लगीं हुई थीं, कहीं हाथी तम्बुओं की तरह शोभा दे रहे थे। बनियों ने मार्ग के दोनों ओर दुकानें सजा ली थीं, और वहां खरीदारों की भीड़ लगी हुई थी। इतने लोगों के आ जाने से खरगोश और हिरन परेशान होकर इधर-उधर दौड़ रहे थे।

श्रीकृष्ण वहां ठहर गये तो उनकी सेना के लिए वसन्त आदि सभी ऋतुएं, अपने-अपने विशेष फल-फूल लेकर एक साथ धरती पर आ गईं। सबसे पहले वसन्त ऋतु ने दर्शन दिये। नाना प्रकार के फूल खिल उठे। चारों ओर सुगन्ध महकने लगी। फिर

आई ग्रीष्म ऋतु, कोमल पाटल के फूलों की कलियां खिलती हुई। देखते-देखते शिरीष और चमेली के फूल महकने लगे। लेकिन ग्रीष्म के तुरन्त बाद वर्षा में मेघों ने आकाश को घेर लिया। बिजली और इन्द्रधनुष उसकी सुन्दरता को बढ़ा रहे थे। उन्हें देख कर मोर नाचने लगे। पानी पड़ने से धरती का ताप दूर हो गया। सूर्य के दर्शन दुर्लभ हो गये। पक्षी घोंसलों में जा छिपे। दिशाओं का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं रहा और तब आ पहुंची शरद ऋतु।

शरद के आ जाने पर सूरज फिर चमकने लगा। हंस बोलने लगे और मोर मौन हो गये। लाल रंग के जवाकुसुम, नीलझिण्टी और बन्धूक पुष्पों से वन शोभित हो उठे। रक्त कमलों ने पुरुषों को उत्कंठित कर दिया। आश्विन मास में धान की रखवाली करने वाली किसान स्त्रियों ने जब गाना शुरू किया तो हिरन धान खाना भूल गये। फिर छितवन के फूलों की महक से महकती हुई वायु ने कार्तिक मास के आने की सूचना दी। मेघ रहित-आकाश ऐसा लगने लगा जैसे म्यान से निकली हुई तलवार। धरती पर नवीन कमलों की केसर का पराग उड़ने लगा। सरोवरों का जल निर्मल हो गया। श्वेत हंस उड़ने लगे। वे ऐसे लगते थे मानो

आकाश हँस रहा हो।

इसके बाद हेमन्त ऋतु ने आकर गहरी-गहरी नदियों को भी बर्फ बना दिया। जाड़ा पड़ने लगा। शिशिर ऋतु में प्रियंगु-लताओं पर फूल खिल उठे। सूर्य की किरणें भी प्रबल शीत का मान भंग न कर सकीं।

इस प्रकार फूलों के भार से पेड़ों को झुकाने वाली और भौरों की गुंजार को कभी बन्द न करने वाली सारी ऋतुओं को धारण करने वाले रैवतक पर्वत पर श्रीकृष्ण सेना-सहित विहार करने लगे।

: ५ :

विहार करने के बाद उनकी यात्रा फिर आरम्भ हो गई। श्रीकृष्ण सुन्दर धुरी वाले उस रथ पर चढ़े जो सोने की तरह चमक रहा था और जिसमें तेज दौड़ने वाले घोड़े जुते हुए थे। वह चले, दूसरे राजा उनके पीछे चले। हाथी, घोड़े, ऊंट, रथ, सभी चल पड़े। चलते समय पहले रथ के पहियों से मार्ग की मिट्टी फट जाती थी, फिर हाथी उसे पैरों से दबा कर समतल कर देते थे। इस प्रकार अनगिनत भागों में बटी हुई वह सेना आगे बढ़ रही थी। उसमें विनय और नम्रता की मूर्ति बने हुए अनेक छत्रधारी राजा थे। इस कारण

वह केवल छत्रमयी दिखाई पड़ती थी।

मार्ग में गांव की स्त्रियां कांटों की बाड़ों के पीछे से गरदन उठा कर बहुत देर तक श्रीकृष्ण को निहारती रहती थीं। जो गोचर भूमि पर बैठे हुए गप्पें लड़ा रहे थे, उनमें से कुछ जोर-जोर से हंस रहे थे और कुछ श्रीकृष्ण का नाम जपने में मन लगा रहे थे। कहीं गौएं आनन्द से बछड़ों को चाट रही थीं। कहीं ग्वाले घुटनों में बरतन दबाये दूध दुह रहे थे और धीरे-धीरे दूध की धाराओं का स्वर बढ़ रहा था।

आगे बढ़े तो आंवले के वन में बैठी हुई पहाड़ी रमणियों ने विस्मय से आंखें फाड़ कर उन्हें देखा। केसरी ने भी अनादर से एक क्षण के लिए आंखें खोलीं, लेकिन फिर बन्द करलीं। वह सोना चाहता था और उसे सेना का कोई डर नहीं था।

इस प्रकार नदियों को, पहाड़ों को और नगरों को पार करती हुई वह सेना आगे बढ़ती हुई यमुना के पास पहुंच गई। सेना के लोग बहुत-सी नौकाओं में बैठकर यमुना को पार करने लगे। कुछ ने तैरकर भी पार किया। हाथी तुरन्त पार चले गये। घोड़े किनारे पर दृष्टि गड़ाये ऊपर को मुंह किये आगे बढ़ रहे थे। सांड़ पार जाकर किनारे तोड़ने लगे और रथ के पहियों

से यमुना का जल उछलने लगा।

युधिष्ठिर को बराबर समाचार मिल रहे थे। जैसे ही उन्हें श्रीकृष्ण के यमुना पार करने का समाचार मिला, वह आनन्द-विभोर होकर उनके स्वागत के लिए चल पड़े। सेना-सहित सब भाई भी साथ थे। दूर से ही उन्होंने श्रीकृष्ण को देखकर रथ से उतरना चाहा, परन्तु उससे पहले ही श्रीकृष्ण स्वयं उतर पड़े अपनी बुआ के पुत्र युधिष्ठिर को प्रणाम करने के लिए। उन्होंने जैसे ही सिर झुकाया वैसे ही युधिष्ठिर ने उन्हें अपनी भुजाओं में बांध लिया। उनका मस्तक सूंघा और उस आलिंगन के कारण वह देर तक रोमांचित रहे। छोटे भाइयों को भी श्रीकृष्ण से भेंट करके बड़ा आनन्द हुआ।

उसके बाद श्रीकृष्ण को रथ पर बैठा कर युधिष्ठिर स्वयं सारथी बने। भीमसेन चंवर डुलाने लगे। अर्जुन ने छत्र लगाया। नकुल-सहदेव उनका अनुसरण करने लगे। गुरु के सामने जिस प्रकार शिष्य विनीत भाव से बैठते हैं, उसी प्रकार पाण्डव श्रीकृष्ण के पास बैठे।

यज्ञ के लिए आये हुए राजाओं के तम्बुओं को देखते हुए उन सबने नौ द्वारों वाले इन्द्रप्रस्थ नगर में

प्रवेश किया। दुन्दुभि बजने लगी और पुरवासिनी रमणियां सब काम छोड़ कर श्रीकृष्ण को देखने दौड़ पड़ीं। उतावली के कारण उन्होंने कटि के आभूषण गले में, कानों के सिर पर और हाथों में तथा नीचे के वस्त्र को सिर पर और उत्तरीय को नीचे पहन लिया। वे धान की खीलों को अंजलियों में भर-भर कर श्रीकृष्ण पर बरसाने लगीं और सुधबुध भूल कर सतृष्ण नेत्रों से उन्हें निहारने लगीं।

श्रीकृष्ण ने भी उन्हें देखा। अनेक रास्तों को पार करते हुए वह सभा-भवन में पहुंच गये। इन्द्र के भवन को लजाने वाले उस भवन को मयदानव ने बनाया था। उसके फर्श पर पद्मराग मणियां लगी हुई थीं, जिनपर नीलमणि की किरणों के पड़ने से ऐसा लगता था, मानो रक्त वर्ण के तालाब में काई लगी हो। दीवारें स्फटिक से बनी थीं। रात में जब चन्द्रमा की किरणें उन पर पड़ती थीं तो वे एकरूप हो जाती थीं। लोग टटोल-टटोल कर उन्हें पार करते थे।

वह सभा-मण्डप ऐसा विचित्र था कि उसमें कमलिनी के नीचे जो जल था वह थल की तरह दिखाई देता था। जिस सभा-भवन में इन्द नील मणियों

वाले फर्श थे वहां इतनी चमक थी कि आगन्तुक जल के भ्रम में वस्त्र ऊपर उठा लेते थे।

यही सब देखते हुए श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के साथ सोने की ईंटों से बने उनके भवन में गये और एक विशाल सिंहासन पर बैठ गये। नर्तकियां नृत्य करने लगीं। नगर भर में उत्सव की आज्ञा दे दी गई। ऐसा करते समय वह भूल गये कि उस नगर में तो सदा ही उत्सव होता रहता है। श्रीकृष्ण स्वजनों से कुशल-क्षेम पूछने लगे और फिर युधिष्ठिर से बातें करने में मग्न हो गये।

: ६ :

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले, "मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूं। आप मेरी सहायता करें। आपके पास रहने पर ही मेरा यज्ञ सकुशल समाप्त होगा। मुझे जो कुछ मिला है आपकी कृपा से मिला है। भाइयों-सहित मैं आपके अधीन हूं।"

श्रीकृष्ण ने यह सुन कर कहा, "आप राजसूय यज्ञ करने के लिए सब प्रकार से योग्य हैं। मुझसे आप जो चाहें वह काम ले सकते हैं। मुझे आप अर्जुन से भिन्न न समझें। जो राजा इस यज्ञ में दास की तरह काम न करेगा, मेरा यह सुदर्शन-चक्र उसका सिर

उड़ा देगा।"

श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और यज्ञ की तैयारी करने लगे। पुरोहित लोगों ने होम द्वारा देवताओं का आह्वान किया। उद्‌गाता सामगान करने लगे। होता और अध्वर्यु ऋक् और यजुर्वेदों का पाठ कर रहे थे। द्रौपदी कुशा की मेखला पहने घूम-घूम कर होम की सामग्री का निरीक्षण कर रही थीं। सब काम ठीक प्रकार चल रहा था।

इसके बाद राजा युधिष्ठिर योग्य ब्राह्मणों को धन और भूमि दान में देने लगे। खूब स्वागत-सत्कार हुआ। राजाओं ने भी अपार धन युधिष्ठिर को भेंट में दिया, पर उन्होंने सबकुछ लुटा दिया। किसी को निराश नहीं लौटाया। श्रीकृष्ण को रक्षक नियुक्त कर, बिना किसी शंका और भय के; वह दान, होम और याग करने लगे।

जब यज्ञ इस प्रकार समाप्त होने जा रहा था कि धर्मपुत्र युधिष्ठिर भीष्म से पूछने लगे, "दादा, अर्घ्य-दान का अधिकारी कौन है?" पितामह प्रसन्न होकर अर्घ्य लेने के छह अधिकारियों के गुण गिनाने लगे। अन्त में बोले, "या इनमें से सब गुणों वाले एक व्यक्ति की ही पूजा करनी चाहिए, यह भी एक विधि है। इस

समय मुझे तो सब गुणों के आगार और असुरों का नाश करनेवाले श्रीकृष्ण ही पूजा के योग्य दिखाई देते हैं।"

फिर विस्तार से उनके गुणों और अवतारों का वर्णन करके उन्होंने कहा, "युधिष्ठिर, तुम धन्य हो ! तुम्हारे सामने भगवान स्वयं आ गये हैं। यज्ञ में यज्ञकर्ता लोग दूर से जिनकी पूजा करते हैं उनको अर्घ्य देकर तुम हमेशा के लिए साधुवाद प्राप्त करो ।"

यह सुन कर राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं के सामने श्रीकृष्ण की विधिवत् पूजा की । पूजा के बाद युधिष्ठिर ने उनका जो सम्मान किया उसे शिशुपाल न सह सका । वह क्रोध मे भर कर बार-बार कांपने लगा । उसकी भवें तन गईं । शरीर तमतमा उठा और आवेश में आकर उसने अपने हाथ से अपनी कठोर जांघों पर इस प्रकार ताल ठोंकी कि लोग भय से कांप उठे । इसके बाद उसने पहले युधिष्ठिर की निन्दा की, "तुमने अपने सम्बन्धी को ही गुणवान समझा, पर वह राजा नहीं है। इतने तेजस्वी राजाओं के रहते वह अर्घ्य नहीं ग्रहण कर सकता। यदि तुम कृष्ण की ही पूजा करना चाहते थे तो तुमने अपमान करने

के लिए इन सब राजाओं को क्यों बुलाया ?" फिर वह भीष्म पितामह का उपहास करता हुआ श्रीकृष्ण से बोला, "तुम्हें यह पूजा नहीं ग्रहण करनी चाहिए थी। अपने बारे में सोचो तो कि तुम कौन हो। तुमने मधुराक्षस को नहीं मारा, मधुमक्खियों को मारा है। जरासंध ने तुम्हारा तेज नष्ट किया है। तुम सत्यप्रिय इसलिए कहलाते हो कि तुम सत्यभामा के पति हो, नहीं तो तुम झूठे हो। न तुम्हारे पास राजलक्ष्मी है, न तुमने युद्ध में कोई पराक्रम दिखाया है। जरासन्ध ने तुम्हें भूमि छीन कर मथुरा से निकाल दिया था। सो तुम व्यर्थ ही भूमिपाल कहलाते हो। तुम पापी हो। तुम गुणहीन हो। तुम्हारी यह पूजा बिना बालों वाले सिर में कंघी करने के समान उपहासजनक होगी।"

फिर वह राजाओं को भड़काने लगा, "हे राजा लोगो, सिंहों के समान आपको देखते हुए भी इन कुन्ती-पुत्रों ने गीदड़ जैसे कृष्ण की जो पूजा की उससे आपका घोर अपमान हुआ है।"

इस प्रकार श्रीकृष्ण की निन्दा करके शिशुपाल अट्टहास करने लगा। पर श्रीकृष्ण तनिक भी विचलित नहीं हुए। वह प्रतिज्ञाबद्ध थे और मन-ही-मन

गिन रहे थे कि शिशुपाल कितने अपराध कर चुका है। परन्तु पितामह भीष्म उनका यह तिरस्कार देख कर बहुत ही क्रुद्ध हो उठे और अपना बायां पैर धरती पर पटक कर बोले, "मैंने आज सभा में श्रीकृष्ण की जो पूजा की है, वह जिसे असह्य हो वह धनुष चढ़ा ले। मैं अपना यह पैर सभी राजाओं के सिर पर रखता हूं।"

यह सुन कर शिशुपाल के पक्ष के राजा भी क्रोध से लाल-पीले हो उठे। वे श्रीकृष्ण को तिनके के समान समझते थे। युधिष्ठिर को कुछ भी नहीं। भीष्म का उन्हें भय नहीं था। शिशुपाल सांप की तरह फुफकारता हुआ फिर विष उगलने लगा। वह बार-बार राजाओं को युद्ध के लिए उत्तेजित करने लगा। अन्त में श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारता हुआ पाण्डवों के रोकने पर भी वह सभा-मण्डप से बाहर चला गया।

वह इतनी तेजी से घोड़े पर चढ़ कर भागा कि मार्ग में लोग 'यह क्या बात हो गई' कह कर सोचते ही रह गये। फिर शंख बज उठे। रण-भेरी गूंजने लगी। जनता में व्यग्रता फैल गई और राजाओं ने झट अपने-अपने कवच पहन लिये। सैनिक, हाथी, घोड़े, रथ अति

शीघ्र आकर उपस्थित हो गये। रानियां भी राजाओं को विदा देकर उनके साथ बलि होने को तैयार हो गई। किसी ने प्रेम से, किसी ने वीर वचनों से, किसी ने मंगल कामना से सब योद्धाओं को विदा दी।

: ७ :

रण की तैयारी हो जाने पर शिशुपाल ने एक दूत को, जो ठीक अवसर पर उचित उत्तर देने में निपुण था, श्रीकृष्ण के पास भेजा। उसने इस प्रकार की बातें कहीं, जिनका अर्थ स्तुति और निन्दा दोनों होता था। उसकी ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने सात्यकि को इशारा किया। वह कहने लगे, "हे दूत, तुम बड़े कुशल हो। तुमने बाहर से प्रिय लगने वाली पर वास्तव में भीतर से अप्रिय बातें इस प्रकार से कही हैं कि वे हमें बाहर से अप्रिय और भीतर से प्रिय मालूम पड़ रही हैं। तुम्हारी वाणी सुनकर सज्जन पुरुष भी उद्विग्न हो उठे हैं। पिंगल पक्षी की वाणी सुनने में मीठी पर परिणाम में अनिष्टकारी होती है।"

इस प्रकार दूत की निन्दा करके सात्यकि ने शिशुपाल को भी खूब खरी-खोटी सुनाई। उन्होंने कहा, "शिशुपाल के प्रलाप से श्रीकृष्ण की कोई हानि नहीं है। दुर्जनों के कड़वे वाक्यों से महान पुरुषों का गौरव

नष्ट नहीं होता। दुष्ट लोग अपने दोष देखने में अन्धे होते हैं, लेकिन दूसरों के छोटे-से-छोटे दोष को देखने में वे दिव्यदृष्टि वाले बन जाते हैं। सज्जन लोग ऐसा नहीं करते। वे न आत्म-प्रशंसा करते हैं, न पर-निन्दा।

"हे दूत! शिशुपाल यदि सन्धि करना चाहता है तो फिर युद्ध की तैयारी क्यों! आक्रमण के भय से श्रीकृष्ण झुकने वाले नहीं हैं। हे दूत, सुन लो। अब अगर तुमने बकवाद की तो हम क्रोध को नहीं रोक सकेंगे।"

सात्यकि के ये वचन सुनकर वह निडर दूत बोला, "मैंने सन्धि और युद्ध दोनों की बात आपके सामने रख दी है। अब आप जैसा ठीक समझें, करें। नीच लोग गुण और दोष की विवेचना न कर मनमानी करते हैं। युधिष्ठिर ने शिशुपाल को छोड़कर आपकी पूजा की। फिर भी प्रधान वही हैं। उन्होंने मुझे युद्ध में यादव-गणों को आह्वान करने के लिए भेजा है। वह शीघ्र ही आपका वध करेंगे।"

जब उस निपुण दूत ने प्रलय की वायु के समान ऐसे प्रचण्ड वचन कहे तो सभा में उपस्थित राजा लोगों का पारा चढ़ गया। उनके शरीर से पसीना बहने लगा और वे बार-बार हाथों से जाँघों को पीटने

तथा दाँतों से ओठों को काटने लगे। लेकिन श्रीकृष्ण का चित्त तनिक भी क्षुब्ध नहीं हुआ। मेघों का जल नदियों के जल को विकृत कर देता है, पर समुद्र के जल में कोई विकार पैदा नहीं होता। इसी प्रकार उद्धव भी शांत बने रहे, लेकिन दूसरे यदुवंशी दूत को धिक्कारने लगे। जब वह चला गया तो श्रीकृष्ण की सेना भी तुरन्त युद्ध की तैयारी करने लगी। बार-बार रण-भेरी बजने लगी। इतना कोलाहल मचा कि देवता भी बहरे हो गये।

दोनों सेनाएँ जब एक-दूसरे के सामने आ गईं तो पैदल पैदल से, घोड़े घोड़ों से, हाथी हाथियों से तथा रथ रथों से भिड़ गये। रण-भेरी की गम्भीर ध्वनि, रथों की घरघराहट, हाथियों के भीषण चीत्कार और घोड़ों की हिनहिनाहट मिलकर एक हो गई। कुछ योद्धा बाणों का प्रयोग कर रहे थे, कुछ तलवार आदि का। कुछ अस्त्र फेंककर कुश्ती लड़ रहे थे। किसी ने तेज तलवार के आघात से सामने वाले योद्धा का कवच काट डाला। किसी ने बाण से दूसरे योद्धा की बाईं भुजा को, काँख तक, काट डाला, लेकिन उसने फिर भी ढाल को नहीं छोड़ा।

हाथियों का युद्ध अपूर्व था। वे पैरों से, दाँतों से, सूंड से, सभी से युद्ध करते थे। वीर पुरुष जब समर-

भूमि में सो जाते तो स्वर्ग की अप्सराएँ तुरन्त उन्हें लेने आ जाती थीं, पर उससे पूर्व ही उनकी पत्नियाँ सती होकर उनके पास पहुँच जाती थीं।

कहीं श्वेत रंग के छत्र पड़े थे, कहीं कुमकुम से रंगे मोतियों के हार। निचले स्थानों पर पड़ा रक्त ऐसा चमक रहा था मानो यमराज ने सुन्दरियों के दुपट्टों को रंगने के लिए कुसुम्भ का रंग घोल रखा हो। जगह-जगह रक्त की नदियां बह रही थीं और हाथियों के कटे पैर उन नदियों में कछुए के समान लगते थे। पक्षी और गीदड़ भोजन में जुटे हुए थे।

इस प्रकार निरंतर वेग से आगे बढ़ती हुई शिशुपाल के पक्ष की सेना श्रीकृष्ण की विशाल और तरंगित सेना के साथ युद्ध करने लगी। जय-पराजय निश्चित नहीं थी। भारी कोलाहल मचा हुआ था।

तभी नरकासुर का बेटा वेणुदारी सिंह रूपी बलराम की ओर दौड़ा। बलराम ने क्रोधित होकर तीक्ष्ण बाणों से उसे मूर्छित कर दिया। इसी प्रकार शिनि ने शाल्व राज पर, उल्मुक ने द्रुम पर और पृथु ने रुक्म पर विजय पाई। मह[illegible] प्रद्युम्न ने पहले तो बाण को पराजित किया फिर उन्होंने उत्तमौजा के तेज को नष्ट कर डाला। उनका अपूर्व युद्ध-कौशल देख कर

देवता रोमांचित हो उठे। लेकिन अभिमानी शिशुपाल का क्रोध बढ़ गया। वह पागल होकर शत्रुओं की ओर दौड़ा। उसकी सेना भी निर्भयता और ढिठाई के साथ आगे बढ़ी। यह देख कर स्वभाव से युद्ध के लिए तैयार रहने वाली तेजस्वी यदुवंशियों की सेना भी उसकी ओर दौड़ी। देखते-देखते तेज चलने वाले घोड़े और पंखों वाले वाण एक साथ शत्रु-सेना के बीच में घुस गये। भयंकर युद्ध के बाद फिर खून की नदी बहने लगी। उसमें हाथियों की सूंड, वाहन और रथ तैर रहे थे। उनकी कटी देह से वह रणभूमि शोभित हो रही थी।

इसी समय नीलवर्णी परमपुरुष श्रीकृष्ण वहां आये। उन्होंने विशाल डोरी को चढ़ाते हुए धनुष को झुकाया। फिर उस पर वाण चढ़ा कर, शत्रु पर आक्रमण करने लगे। वे बड़ी शीघ्रता से शर-संधान कर रहे थे। उन्होंने असंख्य तीक्ष्ण वाणों से ढेर-के-ढेर शत्रुओं के सिर काट डाले और रक्त की नदी प्रवाहित कर दी। वह कल्याण-मूर्ति थे, पापों को नष्ट करने वाले शुद्ध-बुद्ध थे, निर्भय थे। उन्होंने युद्ध में अनुरक्त होकर अहंकार के साथ बल का आश्रय लिया और सिंहनाद करते हुए एक समय में, एक ही बार बहुत से वाण फेंक कर आकाश को भर दिया।

शिशुपाल यह पराक्रम नहीं सह सका। उसकी भवें तन गईं और वह निडर होकर श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारने लगा। वह निरंतर वाण छोड़ रहा था और उसने श्रीकृष्ण की सारी सेना के चारों ओर मानो उसे सूर्य की गरमी से बचाने के लिए वाणों का एक वड़ा वितान-सा तान दिया था।

उसके बाद अद्वितीय महावीर श्रीकृष्ण वाणों द्वारा शिशुपाल के वाणों को काटने लगे। उनका धनुष बराबर जोर से शब्द कर रहा था। प्रत्यंचा बिजली के समान चमक रही थी। मेघ से जैसे जलधारा निकलती है, वैसे ही धनुष से वाणवर्षा हो रही थी।

दोनों के वाण टकरा कर आग पैदा करने लगे। लेकिन जिस प्रकार शरत काल की वायु मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने शत्रु के वाणों को काट डाला। यादव सेना खुशी से भर उठी।

अब शिशुपाल ने माया-युद्ध शुरू कर दिया। सबसे पहले उसने सुलाने वाला अस्त्र फेंका। यादव सैनिक धनुषों के ऊपर झुककर सोने लगे। उनके हाथों से अस्त्र गिरने लगे। सारी सेना में केवल श्रीकृष्ण ही जाग रहे थे। उन्होंने उस माया को दूर करके और सब को भी जगा दिया। शिशुपाल ने जब यह देखा तो मंत्र

पढ़ कर उसने भयंकर सर्प पैदा कर दिये। उन्होंने आकाश मार्ग से यादव सेना पर आक्रमण किया और उससे लिपट गये। उसी समय श्रीकृष्ण ने गरुड़ की ओर देखा। देखते-देखते हजारों गरुड़ पैदा हो गये। उन्हें देखते ही सांप भय से व्याकुल होकर पाताल में घुस गये। अब शिशुपाल ने आग्नेयास्त्र को पुकारा। चारों ओर से आग की लपटें उठने लगीं। संसार जलने लगा। श्रीकृष्ण ने तुरंत वरुणास्त्र को याद किया। सारा आकाश काले मेघों से भर गया। बिजली कड़कने लगी। तूफानी वर्षा ने जरा-सी देर में उस अग्नि को शांत कर दिया। शिशुपाल इस पर क्रुद्ध हो गया, नये-नये अस्त्र छोड़ने लगा और श्रीकृष्ण उन्हें काटने लगे।

अन्त में उन्हें अजय मान कर शिशुपाल फिर अपशब्द बोलने लगा। उसके ऐसा करने पर श्रीकृष्ण ने तुरन्त सुदर्शनचक्र से उसका सिर काट डाला। उस समय राजाओं ने विस्मय से देखा कि शिशुपाल की देह से एक परम दीप्तिमान तेज निकला और श्रीकृष्ण के शरीर में समा गया। उसी क्षण दुन्दुभी बज उठी। स्वर्ग से पुष्प बरसने लगे और ऋषिगण स्तुति करने लगे।

●

बुद्ध-चरित

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

२०

अश्वघोष-कृत

●

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

द्वारा

कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

●

१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५५
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। फलतः अबतक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

महाकवि अश्वघोष प्रथम शती ईस्वी में हुए। वह सम्राट् कनिष्क के समकालीन कहे जाते हैं। उनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। वह साकेत के रहने वाले थे। उनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ और उन्होंने अनेक दार्शनिक और काव्य ग्रन्थों का गंभीर अध्ययन किया। अनंतर वह बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुए और संघ में दीक्षित होकर भिक्षु बन गए।

उन्होंने 'बुद्ध-चरित' और 'सौंदरनंद'—दो महाकाव्यों की रचना की। सौंदरनंद में बुद्ध के भाई नंद और उसकी पत्नी सुन्दरी की कथा है। बुद्ध-चरित के केवल चौदह सर्ग प्राप्त हुए हैं। मूल ग्रंथ में अट्ठाईस सर्ग थे, जिसमें बुद्ध के जीवन की कथा जन्म से लेकर परिनिर्वाण तक दी गई थी। इस काव्य का चीनी भाषा में अनुवाद धर्मरक्ष नाम के एक भारतीय विद्वान् (४१४-२१ ई.) ने किया था, जिसमें अट्ठाईस सर्ग हैं। दूसरा अनुवाद तिब्बती भाषा में हुआ। उसमें भी अट्ठाईस सर्ग हैं। स्वर्गीय डा. जान्स्टन (आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक) ने अप्राप्त सर्गों का तिब्बती और चीनी से अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसी के आधार पर बुद्धत्व प्राप्ति के बाद से परिनिर्वाण तक की कथा यहां लिखी गई है।

इन दोनों काव्यों के अतिरिक्त अश्वघोष ने शारिपुत्र प्रकरण नामक एक नाटक भी लिखा था, जिसमें मौद्गल्यायन और शारिपुत्र के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की कथा है। इस नाटक की खंडित प्रति मध्य एशिया से मिली थी। उसी के साथ दो नाटक और भी थे। इन दोनों के कर्ता भी शायद अश्वघोष थे। हाल ही में डा. सिलवां लेवी को अश्वघोष कृत एक नया बड़ा काव्य प्राप्त हुआ है, जिसका वह संपादन कर रहे हैं। अश्वघोष ने कुछ महायान दर्शन के ग्रन्थ भी लिखे थे, किन्तु उनकी प्रसिद्धि महाकवि के ही रूप में अधिक है। 'बुद्ध-चरित' संस्कृत का पहला महाकाव्य है जो उपलब्ध होता है। इसकी कविता अत्यन्त ललित और भाव बहुत सरस हैं। उपमाएं बड़ी ही सुन्दर तथा प्राकृतिक वर्णन अत्यन्त सजीव हैं। रसों में इन्हें शान्त रस सबसे प्रिय है। रूखे दार्शनिक सिद्धान्तों को भी इन्होंने सरस और मधुर बना दिया है।

—सम्पादक

बुद्ध-चरित

: १ :

इक्ष्वाकु वंश में शुद्धोदन नाम का राजा हुआ है। वह शाक्यों का अधिपति था। उसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। उसका आचरण पवित्र था। उसके महामाया नाम की सुन्दरी रानी थी। एक बार रानी ने स्वप्न देखा कि एक श्वेत हाथी आकाश से उतर कर उसके शरीर में प्रवेश कर रहा है। इसके उपरांत रानी गर्भवती हुई। उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि वह वन में जाकर वृक्षों और पुष्पों के साथ क्रीड़ा करे। रानी ने अपने मन की यह बात राजा से कही। राजा ने प्रसन्न होकर उसे स्वीकार किया। रानी महामाया अनेक सखियों के साथ नगर से बाहर लुंबिनी नामक वन में गई। वहाँ वह उद्यान-क्रीड़ा मे मन बहलाने लगी। वहीं पर उसी समय उसने एक पुत्र को जन्म दिया। जन्म लेते ही बालक सात पग चला और उसने भविष्यवाणी की, "जगत् के हित के वास्ते बोधि प्राप्त करने के लिए मैं जन्मा हूँ। संसार में यह मेरा अंतिम जन्म है।" उसके जन्म से सबको आनन्द

हुआ। ब्राह्मणों ने उसके लक्षण देखकर भविष्यवाणी की कि यह बालक बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती सम्राट् होगा या महाबुद्ध बनेगा। असित नाम का वृद्ध ब्रह्म-ज्ञानी भी आया और आँखों में आँसू भरकर बोला, "जब यह बालक बड़ा होगा तबतक मैं संसार से चला जाऊँगा। किन्तु इसके ज्ञान से जो धर्म की नदी बहेगी, सारा संसार उसका जल पीकर अपनी प्यास शांत करेगा। यह धर्मराज बुद्ध बनकर जगत् के बंधनों का मोक्ष करेगा।" यह सुनकर राजा को कुछ प्रसन्नता और कुछ चिन्ता हुई।

उन्होंने उस पुत्र का नाम सर्वार्थ-सिद्धि रक्खा, किन्तु मायादेवी नवजात शिशु को छोड़कर स्वर्ग चली गई। तब बच्चे की मौसी ने उसका पालन किया। वह कुमार शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा के समान दिन-दिन बढ़ने लगा। उचित समय पर पिता ने विधिवत् उसका उपनयन संस्कार किया। कुमार ने कुछ ही दिनों में अपने कुल के अनुकूल विद्याएँ सीख लीं। तब पिता ने यशोधरा नाम की सुंदर और सुशील कन्या से उसका विवाह कर दिया। सब प्रकार के सुखों के बीच में रहते हुए कुमार गौतम और यशोधरा के कुछ समय बाद राहुल नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

इस घटना से राजा शुद्धोदन बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु कोई अज्ञात शक्ति गौतम के मन को बाहर खींचने लगी। घर के भीतर बँधे हुए हाथी के समान उसने बाहर जाने का विचार किया। उसका विचार सुनकर राजा ने विहार-यात्रा की आज्ञा दे दी। कुमार सोने के रथ पर बैठ कर चला। उसे देखने के लिए भवनों पर स्त्रियों के समूह और मार्ग में पुरुषों के ठट्ठ एकत्र हो गए। मार्ग में चलते हुए कुमार ने पहली बार एक बूढ़े व्यक्ति को देखा। उसकी आंखें उस ओर गड़ गईं। उसने सारथी से पूछा, "यह कैसा पुरुष है?" सारथी ने उत्तर दिया कि रूप और बल का नाश करने वाले बुढ़ापे ने इसे ऐसा कर दिया है। यह सुनकर कुमार बड़े बेचैन हुए। उन्होंने सारथी से पूछा, "क्या मेरे साथ भी ऐसा ही होगा?" सारथी ने कहा, "हाँ, काल के वश में पड़कर आप भी रूप का नाश करने वाली जरा से आक्रांत होंगे।" यह सुनकर कुमार ने लम्बी सांस ली और वह चिन्ता में डूबा हुआ महल में लौटा। जरा क्या है, यह सोचने में उसकी शांति चली गई।

दूसरी बार वह फिर उसी तरह से बाहर गया। तब उसने एक रोगी को देखा। उसने स[illegible]।

से पूछा, "यह दोष केवल इसी को हुआ है या सभी लोगों को रोग का भय होता है ?" सारथी ने कहा, "हे कुमार, रोगों से सभी को भय है।" उसने सारथी को रथ लौटाने की आज्ञा दी और ध्यान में डूबे हुए महल में प्रवेश किया। राजा ने उसे सुख देने के लिए सब उपाय किये और अंत में मन बहलाने के लिए फिर बाहर जाने की अनुमति दे दी। इस बार उसने देखा कि एक व्यक्ति को चार पुरुष कंधे पर लिये जा रहे हैं और कुछ व्यक्ति रोते हुए उसके पीछे चल रहे हैं। पूछने पर सारथी ने कहा, "यह प्राणी, जो कभी बुद्धि और इंद्रियों से युक्त था, अब काष्ठ के समान निर्जीव हो गया है और इसके अपने प्रिय-जन ही इसे छोड़ रहे हैं।" यह सुन कर कुमार के मन को गहरी चोट लगी। उसने कहा, "क्या इसी पर यह बीती है या सबका अंत ऐसा ही है ?" सारथी ने कहा, "सबका अंतिम कर्म यही है। छोटा हो या बड़ा, संसार में सबका नाश निश्चित है।" यह सुन कर राजकुमार दुःख और शोक में डूब गया। उसने कहा, "हे सूत, रथ लौटाओ, विहार के लिए जाने का न यह समय है, न स्थान।" राजपुत्र के ऐसा कहने पर भी सारथी उसका जी बहलाने के लिए रथ को कमल-वन की

ओर ले गया। वहाँ अनेक सुन्दर स्त्रियों ने उसका स्वागत किया। पुष्पों और वृक्षों से भरे हुए उस वन में अनेक प्रकार से वे कुमार का मन अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करने लगीं, परन्तु उसका मन हर्षित न हुआ, क्योंकि 'एक दिन मरना है' इस प्रकार का भाव उसके मन में घर कर गया था। उसने सोचा-- आह! क्या ये स्त्रियां नहीं जानतीं कि यौवन चंचल है? एक दिन जरा इस रूप का नाश कर देगी। कुमार को विरक्त देखकर उसके मित्र मंत्रीपुत्र उदायी ने उसे प्रेमपूर्वक समझाया, फिर भी उसका मन विषयों में नहीं फंसा। उसने कहा, "हे मित्र, यदि जरा व्याधि और मृत्यु न होती तो मेरा भी मन इन विषयों में अवश्य लगता। आत्मवान पुरुषों को विषयों में आसक्ति नहीं होती।" इस प्रकार कहकर कुमार वहां से महल में लौट आए। इस घटना को सुन कर राजा शुद्धोदन को नींद न आई।

: २ :

राजपुत्र का मन शांति की खोज में था। उसने फिर राजा से आज्ञा लेकर वन-भूमि देखने के लिए बाहर प्रस्थान किया। मार्ग में श्रम से व्याकुल किसानों और हल में जुते बैलों को देखकर उस आर्य को बड़ी करुणा

हुई। उसने दुःखी होकर कहा, "यह जगत् निश्चय ही दीन है।" वह एक स्थान पर बैठकर ध्यान करने लगा। उसकी बुद्धि निर्मल होने लगी। उसी समय उसने सामने से आते हुए एक संन्यासी को देखा। राजपुत्र के पूछने पर उसने कहा, "जरा और मृत्यु से डर कर मोक्ष पाने के लिए मैंने संन्यास लिया है।" यह कह कर वह अदृश्य हो गया। कुमार के मन में भी घर त्याग कर संन्यासी होने का विचार बार-बार घूमने लगा। नगर में लौटकर वह पिता के पास गया और हाथ जोड़कर उसने परिव्राजक बनने की आज्ञा चाही, किन्तु राजा किसी प्रकार भी इसके लिए तैयार नहीं हुआ। यही नहीं, उसने कुमार की देख-रेख का पक्का प्रबन्ध कर दिया। कुमार अपने निवास-स्थान को लौट गया। दिन बीतने पर उसने अंतःपुर के ऊपरी भाग में प्रवेश किया। वहाँ शयन-कक्ष में उसने अनेक स्त्रियों को सोते हुए देखा। उनके वस्त्रों को अस्त-व्यस्त देखकर कुमार के मन में वैराग्य की भावना और प्रबल हो उठी। उसने उसी रात को संसार छोड़ने का निश्चय किया। वह नीचे उतर कर भवन के पहले आंगन में आया, जहाँ उसने सारथी को घोड़ा तैयार करने की आज्ञा दी। वह राजपुत्र स्नेही

पिता को, बालक पुत्र को और लक्ष्मी के समान पत्नी को छोड़कर नगर से बाहर निकल गया।

सवेरे जब सूर्योदय हुआ, वह भार्गव के आश्रम में पहुँच गया था। उसने घोड़े की पीठ से उतर बड़े स्नेह से उसका स्पर्श किया और सारथी से कहा, "हे छंदक, तुमने मेरे प्रति जो भक्ति दिखाई है उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अब तुम घोड़े को लेकर लौट जाओ।" इतना कह उसने अपने सब आभूषण खोल कर उसे दे दिए। मुकुट में से मणि निकाल कर उसे देते हुए उसने कहा, "हे छन्दक, यह मणि देकर राजा से मेरा प्रणाम निवेदन करना और कहना कि मेरे लिए शोक न करें। मैंने मोक्ष प्राप्त करने के लिए घर छोड़ा है। संसार में धन के दायाद बहुत हैं, परन्तु धर्म के दायाद दुर्लभ हैं।"

यह सुनकर सारथी रोने लगा। उसने कहा, "आपके बिना नगर में जाने पर राजा मुझसे क्या कहेंगे?" कुमार ने सारथी को समझाया, "यह शोक छोड़ो, देहधारियों का वियोग निश्चय है। यदि स्नेहवश में स्वजनों को न भी छोड़ूं तो मृत्यु हम दोनों को अवश्य अलग कर देगी। मेरी माता अब कहां है और उसके लिए मैं कहां हूँ? इस जगत् का समागम स्वप्न

है। तुम कपिलवस्तु जाओ और वहाँ मेरी आशा करने वाले स्वजनों से कहना कि या तो जन्म और मृत्यु का क्षय करके वह कुमार शीघ्र लौटेगा या उसी प्रयत्न में मृत्यु को प्राप्त हो जायगा।"

तब उस धीर ने म्यान में से तलवार निकाल कर अपने केशों को काट डाला और उसी समय सामने से आते हुए वनचर से गेरुए वस्त्र लेकर पहन लिये। उसके बाद रोते हुए छन्दक को विदा करके उसने आश्रम में प्रवेश किया।

वहाँ अनेक तपस्वी नाना प्रकार की तपस्याओं में विलीन थे। सिद्धार्थ ने एक तपस्वी से कहा, "मैं पहली बार आश्रम में आया हूँ। आप मुझसे कहें कि किस उद्देश्य से आप इन क्रियाओं में लगे हैं?" उसने कहा, "अनेक प्रकार से तप साधने वाले लोग स्वर्ग जाते हैं।" उस आश्रम में कोई मुनि उञ्छवृत्ति से जीवित थे, कोई वायु भक्षण करते हुए सर्प की तरह प्राणधारण कर रहे थे। कोई शिल-वट्टे से अन्न कूटक खाते थे, कोई केवल दांतों से ही चबा कर अन्न खा लेते थे। कोई दोनों समय अग्नि होत्र करते थे। उन सब क्रियाओं को देखकर कुमार का मन उस तपोभूमि से उचट गया और उसने दूसरी जगह जाने का संकल्प

किया। वहाँ के लोगों ने उसे ।कना चाहा, किन्तु उसकी निश्चित बुद्धि देखकर कहा, "यदि आप मोक्ष पाने की इच्छा से जाना ही चाहते हैं तो शीघ्र विन्ध्य-कोष्ठ नामक स्थान में जाइए, जहाँ अराड मुनि का आश्रम है।" कुमार ने उन्हें प्रणाम कर विदा ली।

: ३ :

इधर जब सारथी घोड़े के साथ नगर में लौटा तो लोग उसे घेरकर पूछने लगे, "हे छन्दक, पुर और राष्ट्र को आनन्द देने वाले उस राज ुत्र को तुम कहाँ छोड़ आये ?" सारथी ने रोते हुए कहा, "मैंने राजकुमार को नहीं छोड़ा, उसने ही निर्जन वन में मुझे छोड़कर अपना गृहस्थ वेश भी त्याग दिया है।" छन्दक के लौटने का समाचार क्षणभर में सब कहीं फैल गया। स्त्री और पुरुष शोक से मूर्च्छित हो गए। रोती हुई राजा की पटरानी गौतमी शोक से मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। गहरे शोक से आँसू ब ातो हुई यशोधरा ने रुंधे हुए कंठ से कहा, "रात में सोती हुई विवश मुझे छोड़कर हे छन्दक, मेरा वह मनोरथ कहाँ गया ? हे छन्दक, तुम तो हमारे मित्र थे, आर्य-पुत्र को कहाँ छोड़ आये ? " फिर उसने घोड़े की ओर घूर र देखा, "हे कन्थक, मेरे रात में सोये रहने पर तुम उस

मेरे जीवन-सर्वस्व को कहां चुरा ले गए ?" यशोधरा का यह विलाप सुन कर सारथी ने कहा, "हे देवी, आपको न कन्थक पर और न मुझपर ही रोष करना चाहिए। देवों ने मुझसे यह सब कराया। राजकुमार के लिए दरवाजे स्वयं खुल गए, लोग गहरी नींद में सो गए, हमारा कुछ दोष नहीं है।" यह सुनकर दुःखित गौतमी और भी दुःख से विलाप करने लगी। यशोधरा के दुःख की सीमा न रही। उसने कहा, "आह, यदि स्वामी का मुख देखना मेरे भाग्य में नहीं था तो क्या मन्द-भाग्य यह राहुल भी अपने पिता की गोद के योग्य न था, जो उन्होंने ऐसे बालपुत्र को छोड़ दिया? मेरा यह दारुण हृदय पत्थर या लोहे का है, जो फट नहीं जाता।" जब राजा ने यह समाचार सुना तो वह भी शोक से भरकर ऐसे गिर पड़े, जैसे उत्सव समाप्त होने पर इन्द्र की ध्वजा। तब गुणवान मन्त्री और वृद्ध पुरोहित ने राजा को समझाया, "हे नरश्रेष्ठ, शोक छोड़कर धैर्य धारण करो। कुमार के लिए तो इस प्रकार का भविष्य निश्चित ही था। असित-मुनि ने पहले ही कह दिया था कि न स्वर्ग का राज्य और न चक्रवर्ती राज्य ही एक क्षण उन्हें सुख से रख सकता था, फिर भी यदि आपकी इच्छा हो तो

हम दोनों जाकर उन्हें ढूंढ़ें।" राजा ने "अच्छा" कह कर उन्हें आज्ञा दी।

मन्त्री और पुरोहित दोनों कुमार को ढूंढ़ने के लिए वन को चले। वे भार्गव आश्रम में पहुँचे। वहाँ अपना परिचय देकर उन्होंने कुमार के विषय में पूछा। उन्हें ज्ञात हुआ कि कुमार वहाँ आया था, किन्तु वह अराड के आश्रम की ओर चला गया। वे दोनों शीघ्र ही उसी ओर चल पड़े। कुछ दूर पर उन्होंने वृक्ष के नीचे बैठे हुए कुमार को देखा। रथ छोड़कर वे दोनों उसके समीप गए और परस्पर उचित आदर के उपरांत पुरोहित ने राजपुत्र से कहा, "हे कुमार, राजा ने नेत्रों से जल बरसाते हुए तुम्हारे लिए कहा है कि तुम असमय में वन का आश्रय मत लो। लक्ष्मी की गोद में लोटते हुए गृहस्थों ने भी मोक्ष-धर्म प्राप्त किया है। धर्म केवल वन में ही सिद्ध नहीं होता। नगर में भी यतियों की सिद्धि होती है। अपना मन और यत्न ही इसमें कारण है। वन और वेश कायर के चिन्ह हैं। आपके लिए राजा के ये शब्द उनके आँसुओं से भीगे हुए हैं। वत्सल गाय के समान तुम्हारा संवर्धन करने वाली उस देवी को और उस आर्त पत्नी को और उस बालपुत्र राहुल को तुम्हें दर्शन देकर बचाना चाहिए।" यह सुन

कर कुमार ने विनय-पूर्वक उत्तर दिया, "स्वजनों के स्निग्ध भाव को जानते हुए भी मैंने जरा और मृत्यु को जीतने के लिए उन्हें छोड़ा है। यहाँ स्वजनों का समागम स्वप्न के समान है और वियोग निश्चित है। विषय-सेवन के लिए अकाल होता है, मोक्ष या कल्याण का मार्ग ढूंढ़ने के लिए नहीं।" उसके बाद मन्त्री ने भी कुमार को समझाया, किन्तु कुमार ने यही कहा कि यदि मूर्य पृथ्वी पर गिर पड़े, यदि हिमालय अपनी स्थिरता छोड़ दे, तो भी तत्व को देखे बिना मैं घर नहीं लौट मकता। जलती हुई अग्नि में मैं भले ही प्रवेश कर जाऊँ, किन्तु मनोरथ प्राप्त किए बिना घर में प्रवेश नहीं करूँगा। उसका यह स्थिर निश्चय सुन कर मन्त्री और पुरोहित रोते हुए लौट गए।

: ४ :

इसके बाद राजकुमार गंगा पार करके राजगृह में पहुंचा। नगर में उसके आने की बात चारों ओर फैल गई। कुमार ने पर्वत के एकान्त स्थान पर अपना आसन जमाया। सूचना पाकर राजा बिम्बिसार उसके समीप उपस्थित हुए और कहा, "हे महानुभाव, कृपाकर मेरा स्नेह-वचन सुनें। आपके महान् कुल से मेरी परम्परागत प्रीति है। आपका शरीर राज्य के योग्य

है, भिक्षा के योग्य नहीं। हे सौम्य, यदि आप स्नेहवश अपने पिता का राज्य न लेना चाहें, तो शीघ्र ही मेरा आधा राज्य स्वीकार करें।" मगधराज से इस प्रकार की बात सुनकर कुमार ने विकार-रहित होकर कहा, "हे राजन्, मित्रभाव और आर्यभाव से मेरे प्रति आपका यह जो निश्चय हुआ है, उसके उत्तर में अनुनयपूर्वक मेरा यह कहना है कि जरा और मृत्यु का भय जानकर मोक्ष की इच्छा से मैं इस धर्म की शरण में आया हूँ। सर्पों से और वज्रों से मैं उतना नहीं डरता, जितना विषयों से। संसार को भोगों से तृप्ति नहीं होती, जैसे समुद्र को जल-धाराओं से। विषयों में स्वाद कम है, बन्धन अधिक है, ऐसा जानकर इन्हें कौन चाहेगा? अंगारे की आग के समान जलते हुए कामों में आत्म-संयमी को आनन्द नहीं मिलता। मुझे राज्य का कोई मोह नहीं है। आप यदि मेरे मित्र हैं तो यही कामना करें कि मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करूं। हे राजन्, आपका कल्याण हो! मैं आज ही मोक्षवादी मुनि अराड को देखने की इच्छा से यहां से जा रहा हूं।" इस प्रकार कुमार का दृढ़ निश्चय देखकर राजा कुछ न कर सके।

वहां से चलकर राजकुमार मुनि अराड के आश्रम में गया। मुनि ने उसका स्वागत करते हुए कहा, "हे

सौम्य, मुझे मालूम है कि तुम किस प्रकार घर से निकले हो। परमधर्म को जानने के लिए तुम उत्तम पात्र हो। ज्ञान-रूपी नाव पर चढ़कर दुःख-सागर को पार करो।"

कुमार ने विनयपूर्वक ऋषि से जरा, मृत्यु और रोग से मुक्ति का उपाय पूछा। उत्तर में अराड ने कहा कि जन्म-मरण की वेगवती धारा को छोड़कर, अक्षर पद प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुए पर-ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। कुमार ने उसका उपाय पूछा तो ऋषि ने शास्त्रानुसार संक्षेप में उसे मोक्षधर्म का उपदेश दिया, किन्तु कुमार को उससे सन्तुष्टि न हुई। वह अराड से विदा लेकर उद्रक के आश्रम में गया। आत्मा के सिद्धांत को मानने के कारण उसका दर्शन भी उसे न रुचा। तब वह गया नगरी के समीप नैरंजना नदी के तीर पर पहुंचा। वहां उसने तप करते हुए पांच भिक्षुओं को देखा और स्वयं भी उपवास द्वारा कठिन तप करना आरंभ किया। उसने सोचा कि मृत्यु और जन्म का अन्त करने में यही उपाय काम देगा। उसकी खाल व हड्डियां शेष रह गईं। मेद-मांस-शोणित सभी खत्म हो गया। कठोर तप द्वारा शरीर का क्लेश व्यर्थ जानकर उसने फिर सोचा—इससे तो न मुझे वैराग्य मिलेगा, न ज्ञान होगा, न मुक्ति।

जो भूख और प्यास से ग्रस्त है, उसका चित्त कैसे स्वस्थ हो सकता है। जिसका मन स्वस्थ और प्रसन्न है, उसे ही समाधि सिद्ध होती है। यह सोचकर उसने आहार लेने का निश्चय किया। उसी समय गोपराज की पुत्री नन्दवला खीर लेकर वहां आई और श्रद्धा से प्रणाम कर उसने उसे खीर दी। सिद्धार्थ ने खीर से अपने को तृप्त किया। यह देखकर साथ के पांचों भिक्षुओं ने उसे धर्म से गिरा समझ कर उसका साथ छोड़ दिया। तब वही नैरंजना नदी से कुछ दूर पर वह एक पीपल के नीचे गया और वहां बुद्धत्व प्राप्ति के लिए पर्यंकासन लगाकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की—जबतक मैं बोधि प्राप्त करने में सफल नहीं होऊंगा, इस आसन को नहीं छोड़ूंगा।

उसकी यह प्रतिज्ञा सुनकर संसार को हर्ष हुआ, किन्तु सद्धर्म के शत्रु मार ने, जिसे पुष्पधन्वा कामदेव भी कहते हैं, उस पर चढ़ाई की। विभ्रम, हर्ष, दर्प, नाम के उसके तीन पुत्रों ने एवं अरति, प्रीति और तृषा नामक तीन कन्याओं ने अपने पिता की सहायता की। मार ने धनुष चढ़ाकर उस मुनि को ललकारा, "हे मृत्यु से भयभीत क्षत्रिय, उठ, स्वधर्म का आचरण कर, मोक्ष धर्म का त्याग कर, नहीं तो तेरे लिए मेरा यह बाण

तैयार है।" जब शाक्यमुनि ने अपना आसन न छोड़ा, तब मार ने उस पर अपना बाण चला दिया। फिर भी वह मुनिराज धैर्य से विचलित न हुआ। तब, मार ने शाक्यमुनि की शान्ति भंग करने के लिए अपनी सेना को याद किया, किन्तु मार की सेना के सामने भी उस महर्षि को न क्रोध हुआ, न भय। उसने गंभीर स्वर में कहा, "हे मार, तुम व्यर्थ मेहनत न करो। हिंसा भाव छोड़ो और शान्त हो। जैसे मेरु वायु से कंपित नहीं होता, वैसे ही तुम मुझे कंपा नहीं सकते। अग्नि अपनी उष्णता छोड़ दे, पानी तरलता छोड़ दे, पृथिवी स्थिरता छोड़ दे, किन्तु अनेक जन्मों से उपार्जित मैं अपने इस निश्चय को न छोड़ूंगा। तत्त्व को प्राप्त किए बिना मैं इस आसन से किसी प्रकार न उठूंगा। हे मार, जो यह मेरा बढ़ता हुआ ज्ञान है—क्षमा जिसकी जटा है, धैर्य जिसका मूल है, चरित्र जिसके फूल हैं, स्मृति और बुद्धि शाखाएं हैं, और धर्म जिसका फल है—यह काटे जाने योग्य नहीं। इसलिए तू शोक मत कर, शांति को प्राप्त हो।"

उसकी यह [illegible] सुनकर मार विफल होकर वहां से चला गया। पराजित होकर मार के चले जाने पर चन्द्रमा हँसने लगा और आकाश ने उसके ऊपर पुष्प-

वृष्टि की।

: ५ :

मार की सेना को जीतकर शाक्यमुनि परमार्थ को जानने की इच्छा से ध्यान में लीन हो गए। वे रातभर ध्यानमग्न रहे। अन्त में जो जाना सकता है उस तत्त्व को उचित रीति से जान लेने पर वह नर-श्रेष्ठ संसार के सामने बुद्ध होकर खड़ा हुआ। परम ज्ञान के अष्टांगिक मार्ग द्वारा उसने शान्ति प्राप्त की। रात्रि के चौथे पहर में जब उषा का आगमन हुआ, तब वह महर्षि सर्वज्ञता प्राप्त करके बुद्ध हो चुके थे। वह सात दिन तक उसी प्रकार निश्चल बैठे रहे। उन्होंने अनुभव किया कि मैंने मुक्ति प्राप्त कर ली है, किन्तु जगत् मिथ्या विचारों और कामवासना से नष्ट हो रहा है। एक बार उन्होंने सोचा कि मोक्षधर्म अत्यन्त सूक्ष्म है, इसलिए मैं अपने ही ध्यान में लगा रहूं; किन्तु फिर उन्होंने सोचा कि मैंने भवसागर पार कर लिया है, इसलिए अपने ही लाभ की बात सोचकर केवल अपने हित में लगे रहना ठीक नहीं। मुझे संसार का हित करना चाहिए। संसार में या स्वर्ग में ऐसा व्यक्ति दुर्लभ है, जो जगत् के भले के लिए काम करे।

इस प्रकार जगत् की मुक्ति के लिए उनका

निश्चय दृढ़ हुआ। उसी समय देवों ने उन्हें भिक्षा-पात्र दिया और दो सार्थवाह श्रेष्ठियों ने उन्हें पहली भिक्षा दी। बुद्ध ने सोचा कि अराड और उद्रक जो दोनों मेरे इस धर्म को समझने के योग्य थे, अब इस लोक में नहीं रहे। तब उन्हें अपने साथी पांच भिक्षुओं का ध्यान आया और उनसे मिलने के लिए वे काशी की ओर चले। गया से चलकर वे काशी नगरी के पास मृगदाव नामक स्थान में पहुंचे। दूर से उन्हें आते हुए देखकर कौण्डिन्य, महानाम, वाष्प, अश्वजित् और भद्रजित् नामक पांच भिक्षुओं ने आपस में कहा, "वह देखो, भिक्षु गौतम आ रहा है, जिसने सुख के लिए तप का मार्ग छोड़ दिया था। हमें उसका सम्मान या अभिवादन नहीं करना चाहिए।" किन्तु जैसे ही बुद्ध उनकी ओर बढ़े, वे (भिक्षु) अपने इस विचार को न रख सके। एक ने उठकर उनकी संघाटि थाम ली, और दूसरे ने हाथ जोड़कर भिक्षापात्र ले लिया। तीसरे ने बैठने के लिए आसन दिया और शेष दो ने पैर धोने के लिए जल। सबने गुरु की तरह उनका स्वागत किया और 'गौतम' को सम्बोधन किया। तब बुद्ध ने उनसे कहा, "भिक्षुओ, अर्हत् भगवान् का पूर्व के समान नाम मत लो, वह अब बुद्ध हो चुके हैं।" उन्होंने

पूछा, " 'मैं बुद्ध हो गया हूं'—आपका यह कथन किस प्रकार ठीक है ? आपने तो तप का परित्याग कर दिया था।" तब तथागत ने कहा, "जो शरीर को क्लेश देता है, अथवा जो इन्द्रियों से उपभोग करता है, दोनों ही भ्रान्त हैं। दोनों को ही अमृत पद प्राप्त नहीं होता। मैंने मध्यममार्ग प्राप्त किया है, जिससे दुःख का अन्त होता है। यह संसार दुःखमय है। उस दुःख का यह कारण है। उस कारण का निरोध होता है और उस निरोध का यह मार्ग है। इस प्रकार निर्वाण प्राप्ति के लिए मैंने धर्म के विषय में अपूर्व दृष्टि प्राप्त की है। जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु, संयोग और वियोग मनुष्यों के लिए दुःख के कारण हैं। उनसे बचने के लिए मैंने आर्य-सत्य-चतुष्टय को जान लिया है।"

बुद्ध के इस प्रथम धर्मोपदेश को सुनकर वे पांचों भिक्षु अत्यन्त प्रसन्न हुए और बौद्धसंघ में प्रथम स्थान को प्राप्त हुए। इस प्रकार पहली बार बुद्ध ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया।

: ६ :

उसी समय काशी के एक श्रेष्ठी पुत्र यश का मन वैराग्यभावना से आकुल हो रहा था। वह बुद्ध की शरण में आया और उनके उपदेश से भिक्षु बन गया।

बुद्ध ने उन छहों भिक्षुओं को आज्ञा दी, "अब तुम इस धर्म का सबके लिए उपदेश और प्रचार करो। हे भिक्षुओ, पृथिवी में विचरण करो और लोक के कल्याण के लिए इस धर्म का प्रचार करो।" यह कहकर वे स्वयं गया की ओर चले गए। वहां काश्यप अपने आश्रम में पांच सौ शिष्यों के साथ रहते थे। बुद्ध ने उन्हें अपने धर्म में दीक्षित किया। वहां से वह राजगृह गए और वेणु वन में बिम्बसार से भेंट की। काश्यप के मत-परिवर्तन की बात वहां पहले ही पहुंच चुकी थी। लोगों ने बड़े उत्साह से बुद्ध का स्वागत किया। काश्यप ने सबके सामने अपने आपको बुद्ध का शिष्य घोषित किया। मगधराज बिम्बसार ने भी उनसे उपदेश ग्रहण किया।

राजा ने बुद्ध को वेणुवन नामक उद्यान अर्पित किया। उसी समय शारद्वती-पुत्र उपतिष्य नामक एक अत्यन्त प्रौढ़ सांख्यवादी भिक्षु ने बुद्ध के अश्वजित् नामक शिष्य से धर्म का प्रवचन सुनकर धर्म की दीक्षा ली और उपतिष्य के मित्र मौद्गल्यायन ने भी धर्म-ग्रहण किया। बुद्ध उन दोनों की असाधारण प्रतिभा से बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने उन दोनों को अपना प्रधान शिष्य स्वीकार किया। वहीं राजगृह में ही

उन्होंने अर्हत् महाकश्यप को शिष्यरूप में प्राप्त किया।

उसी समय श्रावस्ती के धनी श्रेष्ठी जिनका नाम सुदत्त था, राजगृह आये। उन्होंने वहां बुद्ध के विषय में सुना और उनसे भेंट की। जैसे ही रात के समय वह बुद्ध से मिले, बुद्ध ने उन्हें पहचान लिया और उन्हें धर्म के लिए अपनी धन-राशि समर्पित करने का संकेत करते हुए, धर्म का उपदेश दिया। बुद्ध के उपदेश का सुदत्त पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने बुद्ध से कहा, "मेरा स्थान श्रावस्ती में है। मेरी इच्छा है कि वहां आपके लिए एक विहार का निर्माण करूं। कृपया उसे स्वीकार करें। बुद्ध ने अपनी स्वीकृति प्रदान की। बुद्ध से विदा लेकर सुदत्त जो अनाथपिण्डद नाम से प्रसिद्ध थे उपतिष्य को साथ लेकर श्रावस्ती लौट आये। वहां उन्होंने राजकुमार जेत के उद्यान को रुपये बिछा कर खरीद लिया और उसमें बुद्ध के लिए सुन्दर और विशाल विहार का निर्माण किया।

बुद्ध राजगृह से चलकर कपिलवस्तु की ओर आये। पुरोहित और मन्त्रियों ने समाचार जानकर राजा शुद्धोदन को सूचना दी। सुनते ही राजा उनके स्वागत के लिए बाहर आये और उन्होंने दूर से बुद्ध को अपने शिष्यों से घिरे हुए देखा। अपने पुत्र को भिक्षुवेश में

देखकर राजा शुद्धोदन बरबस रो पड़े। बुद्ध ने कहा, "हे राजन्, अपने कोमल चित्त के कारण आप मुझे देखकर शोक से अभिभूत हो गए हैं। अब आप पुत्र-शोक छोड़कर शान्त हों और ध्यान देकर मुझसे धर्म का उपदेश सुनें। मैं आपको वह वस्तु दूंगा, जो किसी पुत्र ने अपने पिता को नहीं दी।" तब उनसे धर्म सुनकर शुद्धोदन और उनके साथ अनेक राजपुरुष शान्ति को प्राप्त हुए।

बुद्ध का आगमन सुनकर स्त्रियां भी अन्तःपुर से बाहर निकल आईं। वे भी उनके भिक्षु वेश को देखकर विलाप करने लगीं। सबसे अधिक दुःख यशोधरा को हुआ। उसने कहा, "उस व्यक्ति के लिए क्या कहा जाय जो अपने पुत्र राहुल को रोते हुए देखकर भी स्वजनों से मुख मोड़ ले?" किन्तु बुद्ध नगर में घूमकर भिक्षा मांगने लगे और उसी प्रकार शान्त चित्त से कपिलवस्तु में कुछ दिन निवास करके श्रावस्ती चले गए। वहां श्रेष्ठी अनाथपिण्डद ने जेतवन नामक विहार उन्हें प्रदान दिया। वहीं कोसल के राजा प्रसेनजित् उनसे मिलने आए और अपनी नम्रता प्रदर्शित की। बुद्ध ने यह जानकर कि राजा का मन राग से भरा हुआ है, उसे धर्म का उपदेश दिया। कहा जाता है कि श्रावस्ती में

रहते हुए बुद्ध ने त्रयस्त्रिंश स्वर्ग में जाकर अपनी माता को धर्म का उपदेश दिया और वहां से लौटकर सांकाश्य नगरी में आये ।

: ७ :

इस प्रकार दिन-दिन बुद्ध के धर्म का प्रचार बढ़ने लगा । उन्होंने राजगृह में, गान्धार में, विदेह, अंग, मुह्य, वैशाली, गया, वाराणसी, मथुरा, वैरञ्जा, श्रावस्ती, सेतविका, कौशाम्बी आदि स्थानों में घूमकर कितने ही लोगों को अपने धर्म का सन्देश सुनाया । उनके बढ़ते हुए यश से उनके चचेरे भाई देवदत्त के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई और उसने उन्हें मारने के कई प्रयत्न किए । उसने राजगृह में बुद्ध के ऊपर एक मतवाला हाथी छोड़ दिया, किन्तु बुद्ध ने अपने धैर्य और शान्ति से उसे भी वश में कर लिया ।

कुछ समय वाद वे राजगृह से पाटलिपुत्र गए । वहां मगध के राजा अजातशत्रु का मन्त्री वर्षकार उनसे मिलने आया । पाटलिपुत्र से बुद्ध ने वैशाली की ओर विहार किया और वहां वे आम्रपाली के उद्यान में ठहरे । वहां आम्रपाली उनके दर्शन के लिए आई और हाथ जोड़कर बैठ गई । बुद्ध ने उसे भोगों पर विजय प्राप्त करने का उपदेश दिया, विशेषकर स्त्रियों के

लिए धर्म की शरण में आने का महत्त्व समझाया। आम्र-पाली को अपने इस जीवन पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने बुद्ध के सामने दण्डवत् प्रणाम किया और उन्हें भिक्षा के लिए अपने यहां आमन्त्रित किया। बुद्ध ने स्वीकृति देकर उसे कृतार्थ किया।

जब लिच्छवि राजकुमारों को यह बात मालूम हुई तो वे भी बुद्ध से मिलने आए। बुद्ध ने उनके सामने वृजि या लिच्छवि जनपद और उनके अनुशासनमय जीवन की प्रशंसा की और पाप से मुक्त होने का उपदेश दिया। उन्होंने हाथ जोड़कर बुद्ध को अपने यहां निमंत्रित किया, किन्तु बुद्ध ने उन्हें सूचना दी कि वह पहले ही आम्रपाली का निमन्त्रण स्वीकार कर चुके हैं। अगले दिन आम्रपाली के यहां उन्होंने भिक्षा ग्रहण की।

वैशाली में रहते हुए बुद्ध ने अपना अन्त समीप आया हुआ जान लिया। उन्होंने आनन्द से यह बात कही। सुनकर आनंद बहुत व्याकुल हुए। उसकी यह दशा देखकर बुद्ध ने कहा, "हे आनन्द, संसार के धर्म को पहचानो, *शोक मत करो, ये सब अनित्य हैं।* मैं चाहे रहूं या निर्वाण चला जाऊं, केवल तथागत का धर्मकार्य सत्य है, यह स्थूल शरीर तुम्हारे लिए किस काम का ? धर्म का यह प्रदीप प्रज्ञा का प्रदीप है, जो सदा प्रज्वलित रहेगा।"

तब बुद्ध ने अन्तिम बार वैशाली के लिच्छवियों को उपदेश देकर वहां से विदा ली और चलते हुए कहा, "हे वैशाली, अब अपने अवशिष्ट आयुष्काल में मैं तुम्हें फिर न देखूंगा, क्योंकि मैं निर्वाण प्राप्त करने जा रहा हूं। वहां से भोगनगर होते हुए वह मल्लों की पावा नगरी में पहुंचे और वहां चुन्द के घर में उन्होंने अपना अन्तिम आहार ग्रहण किया। वहां से इरावती नदी पार करके वह कुशीनगर में आये। अपना अन्तिम समय जानकर उन्होंने आनन्द से कहा, "आनन्द, दो साल वृक्षों के बीच में मेरे लिए स्थान ठीक करो, आज रात्रि के पिछले पहर में तथागत निर्वाण प्राप्त करेंगे।"

आनन्द ने आंखों में आंसू भर कर बुद्ध के लिए शय्या तैयार की। बुद्ध उस पर लेट गये। उन्होंने आनन्द से कहा, "हे आनन्द, मल्लों को सूचित कर दो कि मेरे निर्वाण का समय आ गया है, नहीं तो उन्हें बहुत शोक होगा।" समाचार सुनते ही मल्ल लोग दौड़े हुए आये और शोक करने लगे। तथागत ने उन्हें शान्त रहने का उपदेश देते हुए कहा, "यह आनन्द का समय है, विलाप करना उचित नहीं। वह अतिदुर्लभ निर्वाण जिसके लिए मैंने जन्म-जन्मान्तर प्रयत्न किया है, अब समीप आ गया है और दुःखों का भण्डार यह शरीर मुझसे

छूट रहा है। तब क्या मेरे लिए तुम्हारा रोना उचित है?" इस पर एक वृद्ध ने कहा, "तथागत उस व्यक्ति के समान हैं जो जलते हुए घर को छोड़कर जा रहे हैं, किन्तु हमारा शोक इस कारण है कि हम अब तथागत को फिर से न देख पावेंगे।" तथागत ने कहा, "मेरे न रहने पर प्रातिमोक्ष को ही तुम अपना आचार्य, प्रदीप और रत्न समझना। संसार में चर और अचर सब नाशवान हैं, इसलिए प्रमाद-रहित होकर कल्याण का साधन करो।"

यह कहते हुए उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये।

●

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

गांधीजी लिखित

१ प्रार्थना प्रवचन (भाग १) ३)
२ „ „ (भाग २) २॥)
३ गीता-माता ४)
४ पंद्रह अगस्त के बाद १॥),२)
५ धर्मनीति १॥),२)
६ द० अफ्रीका का सत्याग्रह ३॥)
७ मेरे समकालीन ५)
८ आत्मकथा ५)
९ आत्म संयम ३)
१० गीता-बोध ॥)
११ अनासक्तियोग १॥)
१२ ग्राम-सेवा ।=)
१३ मंगल-प्रभात ।=)
१४ सर्वोदय ।=)
१५ नीति-धर्म ।=)
१६ आश्रमवासियों से ।=)
१७ हमारी मांग १)
१८ सत्यवीर की कथा ।)
१९ संक्षिप्त आत्मकथा १॥)
२० हिंद-स्वराज्य ॥।)
२१ अनीति की राह पर १)
२२ बापू की सीख ॥)
२३ गांधी-शिक्षा (तीन भाग) १=)
२४ आज का विचार ।=)
२५ ब्रह्मचर्य (दो भाग) १॥।)
२६ अगर मैं डिक्टेटर होता ।)
२७ शराबबंदी करें ।)
२८ स्वराज में अछूत कोई नहीं ।)

विनोबाजी की लिखी

२९ विनोबा-विचार : २ भाग ३)
३० गीता-प्रवचन १), १॥।)
३१ शान्ति-यात्रा १॥)
३२ जीवन और शिक्षण २)
३३ [illegible]प्रज्ञ-दर्शन १)
३४ ईशावास्य-[illegible]त्ति ॥।)
३५ ईशावास्योपनिषद =)
३६ सर्वोदय-विचार १=)
३७ स्वराज्य-शास्त्र ॥।)
३८ भू-दान-यज्ञ ।)
३९ गांधीजी को श्रद्धांजलि ।=)
४० राजघाट की संनिधि में ।=)
४१ विचार-पोथी १)
४२ सर्वोदय का घोषणा-पत्र ।)
४३ जमाने की मांग =)

नेहरूजी की लिखी

४४ मेरी कहानी ८)
४५ हिन्दुस्तान की समस्याएं २॥)
४६ लड़खड़ाती दुनिया २)
४७ राष्ट्रपिता २)
४८ राजनीति से दूर २)
४९ हमारी समस्यायें (२ भाग) १)
५० विश्व-इतिहास की झलक २१)
५१ हिन्दुस्तान की कहानी सं० ५)
५२ नया भारत ।)

अन्य लेखकों की

५३ गांधीजी की देन १॥)
५४ गांधी-मार्ग =)
५५ महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
५६ कुब्जा सुन्दरी „ २)
५७ शिशु-पालन „ ॥)
५८ मैं भूल नहीं सकता (काटजू) २॥)
५९ कारावास-कहानी (सु.नै.) १०)
६० गांधी की कहानी (लु. फि.) ४)
६१ भारत-विभाजन की कहानी ४)
६२ बापू के चरणों में २॥)
६३ इंग्लैंड में गांधीजी २)
६४ बा, बापू और भाई ॥)
६५ गांधी-विचार-दोहन १॥)

६६	अहिंसा की शक्ति (ग्रेग)	१॥)
६७	सर्वोदय-तत्व-दर्शन	७)
६८	सत्याग्रह-मीमांसा	३॥)
६९	बुद्धवाणी (वियोगी हरि)	१)
७०	सन्त सुधासार (वि०हरि)	११)
७१	संतवाणी ,,	१॥)
७२	श्रद्धाकण ,,	१)
७३	प्रार्थना (वियोगी हरि)	॥)
७४	अयोध्याकाण्ड ,,	१)
७५	भागवत-धर्म (ह. उ.)	६॥)
७६	श्रेयार्थी जमनालालजी ,,	६॥)
७७	स्वतन्त्रता की ओर ,,	४)
७८	बापू के आश्रम में ,,	१)
७९	मानवता के झरने (माव.)	१॥)
८०	बापू (घ० बिड़ला)	२)
८१	रूप और स्वरूप ,,	॥=)
८२	डायरी के पन्ने ,,	१)
८३	ध्रुवोपाख्यान ,,	।)
८४	स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१)
८५	मेरी मुक्ति की कहानी ,,	१॥)
८६	प्रेम में भगवान ,,	२)
८७	जीवन-साधना ,,	१।)
८८	कलवार की करतूत ,,	।)
८९	हमारे जमानेकी गुलामी ,,	।॥)
९०	बुराई कैसे मिटे ? ,,	१)
९१	बालकों का विवेक ,,	।॥)
९२	हम करें क्या ? ,,	३॥)
९३	धर्म और सदाचार ,,	१।)
९४	अंधेरे में उजाला ,,	१॥)
९५	कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल)	२)
९६	लोक-जीवन (कालेलकर)	३॥)
९७	हिमालय की गोद में	२)
९८	साहित्य और जीवन	२)
९९	कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१॥)
१००	राजनीति प्रवेशिका	१)
१०१	जीवन-संदेश (ख.जिब्रान)	१।)
१०२	अशोक के फूल	३)
१०३	जीवन-प्रभात	५)
१०४	कां० का इतिहास ३ भाग	३०)
१०५	पंचदशी (सं० य० जैन)	१॥)
१०६	सप्तदशी	२)
१०७	रीढ़ की हड्डी	१॥)
१०८	अमिट रेखायें	३)
१०९	एक आदर्श महिला	१)
११०	राष्ट्रीय गीत	।)
१११	तामिल-वेद (तिरुकुरल)	१॥)
११२	आत्म-रहस्य	३)
११३	थेरी-गाथाएं	१॥)
११४	बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
११५	जातक-कथा (आनंद कौ.)	२॥)
११६	हमारे गांव की कहानी	१॥)
११७	साग-भाजी की खेती	३)
११८	पशुओं का इलाज (प.प्र.)	॥)
११९	रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)	१=)
१२०	रोटी का सवाल (क्रोपा०)	३)
१२१	नवयुवकों से दो बातें ,,	।=)
१२२	पुरुषार्थ (डा० भगवान्‌दास)	६)
१२३	काश्मीर पर हमला	२)
१२४	शिष्टाचार	॥)
१२५	भारतीय संस्कृति	३॥)
१२६	आधुनिक भारत	५)
१२७	फलों की खेती	२॥)
१२८	मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार	।॥)
१२९	नवजागरण का इतिहास	३)
१३०	गांधीजी की छत्र छाया में	१॥), २॥)
१३१	भागवत-धर्म	३॥)
१३२	जय अमरनाथ	१॥)
१३३	संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२० पुस्तकें)	७॥)
१३४	समाज-विकास-माला (४१ पुस्तकें)	१५।=)

'संस्कृत साहित्य-सौरभ' की पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. [illegible] चरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानन्द
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल वध
२०. बुद्ध चरित
२१. कुमारसंभव
२२. पंचरात्र

मूल्य प्रत्येक का छः आना

२०
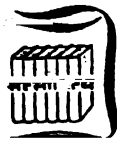
छः आना

संस्कृत-साहित्य-सौरभ
२३

हर्ष-कृत

रत्नावली

●

श्री सुशील
द्वारा
कथासार

●

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

●

१९५९
सत्साहित्य-प्रकाशन

भूमिका

'रत्नावली' के लेखक श्रीहर्ष भारत के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्धन माने जाते हैं। इनके लिखे तीन ग्रंथ मिलते हैं—रत्नावली, नागानंद और प्रियदर्शिका। बहुत-से लोगों का विचार था कि राजा हर्षवर्धन ने स्वयं नाटक नहीं लिखे, बल्कि अपने दरबार में रहनेवालों से लिखवाये थे और नाम अपना दे दिया था; लेकिन विद्वानों ने इस बात को अब गलत सिद्ध कर दिया है। इसके अलावा उनके कवि बाणभट्ट ने भी कई जगह महाराज हर्ष की काव्य-रचना की प्रशंसा की है। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराज हर्ष कवि थे और उन्होंने 'रत्नावली' की रचना की थी।

'नागानंद' में बुद्ध की स्तुति की गई है। इससे जान पड़ता है कि वह बौधधर्म के उपासक थे, लेकिन इतिहासकार जानते हैं कि वह बुद्ध, सूर्य, विष्णु और शिव सभी को मानते थे। ब्राह्मणों और बौद्धों को समान रूप से दान देते थे। सन् ६०६ में गद्दी पर बैठे और ६४८ में स्वर्ग सिधारे। वह वीर ही नहीं थे, ललित कलाओं से भी उन्हें बहुत प्रेम था। दान देने में तो बहुत ही बढ़े हुए थे। भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् थे।

'रत्नावली' शृंगार रस प्रधान नाटिका है। इसकी कथा कौतूहल से ओत-प्रोत है और अभिनय की दृष्टि से एक सफल रचना है। काव्य के चमत्कार के अतिरिक्त चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह उत्तम रचना है। नाटय-शास्त्र के नियमों का इसमें पूरी तरह पालन किया गया है। शैली सरस और सरल है। भाषा भी सहज है। शृंगार होते हुए भी इसमें त्याग की उपेक्षा नहीं है। इसकी मूल कथा 'कथा-सरित्सागर' से ली गई है। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' की छाया भी इसपर स्पष्ट है, फिर भी श्रीहर्ष ने अपनी प्रतिभा से इसमें जो चमत्कार पैदा किया है, वह अद्भुत है।

महाकवि बाणभट्ट ने 'हर्ष-चरित' में इन्हीं महाराज हर्ष का चरित्र लिखा है।

—सम्पादक

रत्नावली

: १ :

प्राचीनकाल में महाराजा उदयन वत्स देश के प्रसिद्ध राजा हुए हैं। कौशाम्बी उनकी राजधानी थी। उनकी पटरानी का नाम वासवदत्ता था। वह उस काल के प्रतापी नरेश महाराज चंडप्रद्योत की पुत्री थी। वासवदत्ता के मामा विक्रमबाहु भी, जो सिंहल के राजा थे, अपने समय के प्रतापी नरेश थे। उनको एक कन्या थी, जिसका नाम रत्नावली था। उसको देखकर एक सिद्ध पुरुष ने भविष्य-वाणी की थी कि जो पुरुष इस कन्या का स्वामी होगा, वह चक्रवर्ती नरेश होगा। किसी तरह यह समाचार महाराजा उदयन के स्वामिभक्त मन्त्री यौगन्धरायण के पास पहुँच गया। वह तुरन्त महाराज विक्रमबाहु के पास गया और उनसे प्रार्थना की कि वह रत्नावली का विवाह महाराज उदयन के साथ कर दें। इस प्रार्थना पर सिंहल के महाराज बड़े असमंजस में पड़ गए। वह जानते थे कि उनकी भानजी वासवदत्ता महाराज उदयन की पटरानी है। रत्नावली उसीकी सौत बनेगी। दूसरी तरफ वह यह भी जानते थे कि महाराज उदयन जैसा वर मिलना बड़ा

कठिन है। बहुत समय तक वे इसी द्विविधा में पड़े रहे, लेकिन अन्त में उन्होंने निर्णय किया कि वह अपनी ः ।नजा। वासवदत्ता को कष्ट में नहीं डालेंगे और उन्होंने रत्नावली का ।ववा , महाराज उदयन से करने से इन्क र कर दिया।

लेकिन यौगन्धर यण इस प्रकार सरलता से पराजित होनेवाला नहीं था। उसने कुछ दिन बाद एक अफवा , फैला दी कि लावाणक नामक ग्राम में आग लग जाने के कारण वासवदत्ता उसमें जल मरी है। इसके पश्चात् उसने अपना सन्देश फिर सिंहल के महाराज ।वक्रमबा , के पास भेजा और रत्नावली का ।ववा , महाराज उदयन से करने की माँग की। म ।राज अब मना न कर सके और उन्होंने रत्नावली को अपने मन्त्री वसुभूति के साथ का२ाम्बी भेज दिया।

लेकिन उनका दुर्भाग्य कि मार्ग में नौका समुद्र में डूब गई। उसीके साथ डूब गए सिंहल के मन्त्री वसुभूति, र [illegible] री रत्न वली और कंचुकी बाभ्रव्य। जब वे डूब रहे थे तो अचानक रत्नावली ने एक काष्ठ-फलक देखा और किसी तरह उसके सहारे तैरते हुए उसने अपने प्राणों की रक्षा की। जिस समय वह इस प्रकार सागर में तैर रही थी उसी समय सिंहल से लौटनेवाले व्यापा-

रियों के एक दल ने उसे देखा। उसके गले में जो रत्न-माला थी उससे उन्होंने उसे पहचान भी लिया। फिर तो बड़े आदर के साथ वे उसे यौगन्धरायण के पास ले गये। वह सागर में मिली थी, इसलिए यौगन्धरायण ने उसका नाम सागरिका रख दिया और फिर उसे महारानी वासवदत्ता को सौंप दिया। इस प्रकार रत्नावली सागरिका बनकर महारानी की परिचारिका के रूप में दिन बिताने लगी। नाटक की कथा इसके पश्चात् आरम्भ होती है।

राजधानी में वसन्तोत्सव मनाया जा रहा था। सब नगर-निवासी राग-रंग में उन्मत्त थे। केसर का चूर्ण, अबीर, गुलाल तथा दूसरे सुगन्धित पदार्थों के उड़ाए जाने से कौशाम्बी नगर चारों ओर से पीला हो उठा था। फुहारे और पिचकारियों से सब एक-दूसरे पर रंग की वर्षा कर रहे थे और चारों ओर एक सुख देने वाला अन्धकार छाता जा रहा था।

राजमहल के ऊपर से महाराज उदयन अपने सखा वसन्तक के साथ इस दृश्य को देख रहे थे। बोले, "अहा, नगरवासियों का प्रमोद चरम सीमा तक पहुँच रहा है, क्योंकि कुंकुम की बुकनी से लाल गुलाल उड़ रहे हैं, जिससे भोर-सा हो रहा है। उनसे और सोने के गहने

से और अपने बोझ से आगे के हिस्से को झुका देने-वाले अशोक के फूलों से ऐसा दिखाई दे रहा है, मानो यहाँ रहने वालों की देह पर सोने का पानी चढ़ा दिया गया हो।

"और भी धारामंच से निकला हुआ पानी चारों ओर फैल रहा है। उस पर लोगों के चलने से आँगन में कीच हो रही है। गुलाल के उड़ने से अन्धकार फैल रहा है। उस अन्धकार में साँप के फन जैसी शकल वाली पिचकारी, जो मणियों के प्रकाश में कभी-कभी दिखाई दे जाती है, मुझे पाताल लोक की याद दिलाती है।"

वसन्तक तो इतना मस्त हुआ कि नीचे जाकर नाचने लगा। उसी समय मदनिका ने आकर सूचना दी, "महारानी निवेदन करती हैं कि आज वे मकरन्द-उद्यान में रक्त-अशोक के नीचे स्थापित भगवान काम-देव की पूजा करेंगी, इसलिए महाराज उनके साथ रहें।"

महाराज तुरन्त उपवन की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर वसन्तक बोला, "मित्र, देखिये-देखिये। यह उद्यान आपके आगमन से आपके प्रति आदर प्रकट कर रहा है। मलयानिल के हिलाने से यह जो आम की मंजरी का पराग उड़ रहा है वह शामियाना है। मत-वाले भौरों की झंकार से मिला हुआ मधुर कोकिल

स्वर संगीत है। वह सुनने में प्यारा लगता है।"

इस सुन्दरता से महाराज भी बड़े प्रभावित हुए। तरह-तरह से उसका वर्णन करने लगे। थोड़ी देर में महारानी वासवदत्ता भी अपनी सखी कांचनमाला के साथ वहां जा पहुंचीं। सामग्री लिये हुए सागरिका आदि दासियां भी उनके साथ थीं। महारानी ने जब सागरिका को देखा तो वह क्रुद्ध हो उठीं। बोलीं, "सागरिके! तुम सारिका को क्यों छोड़ आईं। शीघ्र वहां जाओ। पूजा की सामग्री कांचनमाला को दे दो।"

सागरिका लौटने को हुई, तभी वह मन-ही-मन सोचने लगी कि मैं सारिका को तो किसी और को सौंप आई हूं। मैं तो यह देखना चाहती थी कि जैसे मेरे पिता के घर में कामदेव की पूजा होती है, क्या यहां भी उसी प्रकार होती है। इसलिए छिपकर देखूंगी। यह सोचकर वह वहां से गई नहीं, बल्कि एक लता-कुंज में छिपकर उस उत्सव को देखन लगी।

पूजा शुरू हुई। महाराज उदयन वसन्तक के साथ रक्त-अशोक के पास आ गए थे। महारानी ने उनको आसन पर बैठाया और कामदेव का पूजन करने के पश्चात् उनका पूजन करने लगीं। फूल चुनने में मग्न सागरिका कामदेव का पूजन न देख सकी। जिस समय

उसकी दृष्टि उधर गई उस समय महारानी महाराज की पूजा कर रही थी। उसे ऐसा लगा, मानो महाराज के रूप में वहां साक्षात कामदेव ही विराजमान हैं। इसलिए उसने भी कुछ फूल उनके नाम पर चढ़ाते हुए मन-ही-मन भगवान कामदेव को प्रणाम किया और लौट पड़ी। मार्ग में उसने सुना कि वैतालिक लोग महाराज उदयन की स्तुति कर रहे थे। वह चकित हो उठी, "अरे, ये तो वही महाराज उदयन हैं, जिनके लिए मेरे पिता ने मेरा दान किया है!" अब तो उसके मन में महाराज के लिए प्रेम उमड़ आया।

: २ :

महारानी वासवदत्ता की एक सखी थी, जिसका नाम सुसंगता था। वह सागरिका को बहुत प्रेम करती थी। एक दिन सागरिका अपनी सारिका को उसी सुसंगता के हाथ सौंप कर कहीं चली गई और जब बहुत देर तक नहीं लौटी तो सुसंगता उसे ढूंढ़ने के लिए निकली। मार्ग में उसे निपुणिका मिल गई। उसीसे उसे मालूम हुआ कि सागरिका आज बहुत व्याकुल हो रही थी। इसी अवस्था में चित्र बनाने की सामग्री लेकर वह कदली-गृह की ओर गई है। सुसंगता वहीं पहुंची और उसने देखा कि सागरिका बड़े प्रेम से एक चित्र बना रही

है। चुपके-चुपके वह उसके और पास पहुंची और जब उसने देखा कि वह चित्र महाराज उदयन का है तो वह चकित हो उठी।

सागरिका की आँखों में आँसू भरे हुए थे। वह अपने बनाये हुए चित्र को भी नहीं देख पा रही थी। इसलिए जब आँसू पोंछने के लिए उसने अपना मुंह ऊँचा किया तब उसकी दृष्टि सुसंगता पर पड़ी। घबराकर उसने चित्र को छिपाने की चेष्टा की, परन्तु सुसंगता ने वह चित्र छीन लिया और पूछा, "सखी, यह किसका चित्र है?"

सागरिका लजाकर बोली, "वसन्तोत्सव के दिन जिन भगवान कामदेव की पूजा हुई थी, उन्हीं का।"

सुसंगता हँस पड़ी और उसने कूंची उठाकर उसी चित्र के पास सागरिका का चित्र भी बना दिया। सागरिका क्रोध से भरकर बोली, "अरे, यह तुमने मेरा चित्र क्यों बना दिया?"

वह हँसकर बोली, "तुमने केवल कामदेव का चित्र बनाया था। मैंने उसके साथ रति का भी बना दिया है।"

सागरिका समझ गई कि यह भेद तो खुल गया है। सो वह अपनी सखी का हाथ पकड़कर बोली, "मैं बहुत लज्जित हूँ, लेकिन कृपाकर यह बात किसीसे न कहना।"

सुसंगता बोली, "मैं तो नहीं कहूँगी, परन्तु इस

सा।रका से सावधान रहना । कहीं यह सब बातें रटकर किसीसे न कह दे ।"

वे इस प्रकार बातें कर रही थीं कि नेपथ्य में शोर मचने लगा, "महाराज का पालतू बन्दर छूट गया, वह राजभवन में प्रवेश कर रहा है । उसके पालक घबराये हुए उसका पीछा कर रहे हैं । ।ियाँ भयभीत हो रही हैं । उसके पाँवों में बँधा हुआ घुंघरू बज रहा है। वह द ।।ज लाँघता जा रहा है । उसके गले में सोने की जंजीर लटक रही है, जिसे ताड़क वह भागा है ।"

तभी वह बन्दर उत्पात मचाता हुआ उधर आ निकला । दोनों सखियाँ भाग कर एक पेड़ की ओट में खड़ी हो गईं । चित्र वहीं पड़ा रह गया । बन्दर ने आकर सारिका का पिंजड़ा खोल दिया । वह ।उड़ भागी । बात खुल जाने के भय से दोनों सखियाँ उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ीं । उनके जाने के बाद महाराज उदयन और वसन्तक भी उधर आ निकले । सारिका एक पेड़ की शाखा पर बैठी हुई उन सब बातों को दो।ह।रा रही थी । पहले तो वसन्तक यह स्वर सुनकर डर गया । बोला, "इस पेड़ पर कोई भूत रहता है ।"

पर महाराज उदयन ने ध्यानपूर्वक सुना तो समझ गये । बोले, "यह तो सारिका है ।" वि्षक ने कहा,

"ओह, यह सारिका है! कलमुंही, क्या तू समझती है कि मैं डरता हूँ। ठहर, मैं तुझे अभी गिराता हूँ।"

वह आगे बढ़ा, पर म[illegible]राज ने रोक दिया। उ[illegible] स्वर स्पष्ट हो रहा था। अब तो उन्होंने वे सब बातें सुन लीं और उस चित्र को भी देख लिया, जो घबरा[illegible] में भाग जाने के कारण सागरिका वहीं छोड़ गई थी। उस चित्र पर राजा मोहित हो गया और उसकी प्रशंसा करने लगा। तभी सुसंगता और सागरिका उस चित्र को लेने के लिए वहाँ आईं और महाराज की बातें सुनने लगीं।

यही नहीं, सुसंगता उस चित्र को लेने के बहाने महाराज के पास पहुँची। उसने सब बातें साफ-साफ उनसे निव[illegible]न कर दीं। और उनको सागरिका से मिला भी दिया।

इसी समय म[illegible]ारानी वासवदत्ता भी उधर आ निकलीं। वे महाराज की लगाई हुई नव[illegible]का देखने को उ[illegible]क थीं। उन्होंने महाराज का स्वर सुना तो उनके पास पहुँची और उनको प्रणाम किया। तबतक सागरिका चली गई थी, पर वह चित्र उ[illegible]के पास था। महाराज ने तुरन्त वसन्तक से उस चित्र को [illegible]पाने के लिए कहा। उसने उस चित्र को अपनी ब[illegible]ल में दबा-

कर ऊपर से चादर ओढ़ ली।

महारानी ने पूछा, "महाराज, क्या नवमालिका फूली है?"

महाराज बोले, "मैंने अभी नहीं देखी। आओ, तुम्हारे साथ देखें।"

महारानी ने कहा, "आपके मुख से जान पड़ता है कि नवमालिका फूल चुकी है। अब मैं नहीं जाऊँगी।"

यह सुनकर विदूषक बाँह फैलाकर नाचने लगा। नाचते समय वह चित्र नीचे गिर पड़ा। महारानी ने उसे देख लिया। उसे देखकर महारानी सब-कुछ समझ गईं। मन में वह बड़ी क्रुद्ध हुईं, पर ऊपर से शान्त बनी रहीं। व्यंग्यपूर्वक बोलीं, "मेरे सिर में पीड़ा है। मैं जा रही हूँ।"

महाराज भी सबकुछ समझ गये। उन्होंने महारानी को प्रसन्न करने की बहुत चेष्टा की, लेकिन वह किसी प्रकार न मानीं और सिर-दर्द का बहाना करके वहाँ से चली गईं।

: २ :

इस घटना के बाद महाराज बड़े दुखी रहने लगे। उनका मन सागरिका से मिलने के लिए व्याकुल हो उठा। विदूषक वसन्तक ने यह देखा तो उसे बड़ी चिन्ता हुई।

एक दिन उसने सुसंगता दासी को बुलाया और समझाकर कहा, "महाराज की अस्वस्थता का कारण सागरिका है। क्या तुम उससे मिलने का कोई उपाय कर सकती हो?"

सुसंगता बोली, "अच्छी बात है। मैं सागरिका को महारानी वासवदत्ता के कपड़े पहनाऊँगी और स्वयं कांचनमाला का वेश धारण करूँगी। सायंकाल के समय हम दोनों माधवीलता के मंडप में जाएँगी। उस समय आप महाराज को वहाँ ले आवें।"

यह सुनकर वसन्तक बहुत प्रसन्न हुआ और महाराज को यह समाचार सुनाने के लिए तुरन्त उनके पास चला गया। लेकिन इसी समय महारानी की दासी कांचनमाला सब-कुछ सुन रही थी। उसने जाकर महारानी से सब बातें कह दीं। इसका परिणाम यह हुआ कि जब सायंकाल के समय महाराज सागरिका से मिलने के लिए माधवीकुंज पहुँचे तो महारानी वासवदत्ता भी कांचनमाला के साथ वहाँ आईं। कांचनमाला ने संकेत से वसन्तक को अपने पास बुलाया और महारानी को दिखा दिया। वसन्तक मुस्कराकर बोला, "अरे, तुमने तो कांचनमाला का वेश बहुत ही अच्छा बनाया है और सागरिका तो सचमुच महारानी वासवदत्ता मालूम होती है।"

यह कहकर वह दोनों को महाराज के पास ले गया। महाराज महारानी वासवदत्ता को सागरिका समझकर उससे बातें करने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन वासवदत्ता आँसू बहाती हुई मौन खड़ी रही। जब महाराज ने उसे मनाने का बहुत प्रयत्न किया तब उसने क्रोध में भरकर अपना घूंघट उठा दिया और कहा, "क्या मैं सागरिका हूँ? आप तो सागरिका के लिए इतने बेचैन हो रहे हैं कि आपको सबकुछ सागरिकामय ही दिखाई दे रहा है!"

यह जानकर कि यह तो सचमुच महारानी वासवदत्ता हैं, महाराज घबरा गए और उन्होंने हाथ जोड़कर महारानी को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया, यहाँ तक कि वह उनके चरणों में गिर पड़े। लेकिन महारानी नहीं मानीं। बोलीं, "निश्चय ही मैं निर्लज्ज हूँ, जो आपके हृदय को जानकर भी क्रोध करती हूँ। आप यहाँ सुख से रहिये। मैं जाती हूँ।" और वह चली गईं।

महाराज बहुत दुखी हुए। इतने में वासवदत्ता का वेश धारण किये हुए सागरिका उधर आ निकली। उसे सबकुछ मालूम हो चुका था। वह बहुत परेशान थी। जीना उसके लिए कठिन हो गया था। ऐसी स्थिति में उसने फांसी लगाकर मर जाने का निश्चय किया।

यह निश्चय करके वह अशोक वृक्ष के नीचे पहुंची। उसी समय महाराज और विदूषक ने उसे देखा। उसे देखकर वसन्तक पुकार उठा, "मित्र, रक्षा करो, महारानी फांसी लगाकर मर रही हैं।"

राजा ने तुरन्त आगे बढ़कर फांसी का फंदा उसके गले से निकाल लिया और अपनी सौगन्ध देकर उसे वैसा करने से रोका।

सागरिका ने जब महाराज को देखा तो वह हर्ष और विस्मय से भर उठी, पर प्रकट में बोली, "महाराज, मुझे छोड़ दीजिए, मैं पराधीन हूं। मरने का फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा।"

ये बातें हो रही थीं कि महारानी वासवदत्ता फिर उधर आईं। वह अप्रसन्न होकर चली गई थीं, लेकिन महल में पहुंच कर उन्हें अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा और वह महाराज को प्रसन्न करने के लिए आई थीं। लेकिन यहां आकर उन्होंने देखा कि महाराज तो सचमुच सागरिका से बातें कर रहे हैं। अब तो उनका पारा एकदम चढ़ गया। महाराज ने उनको मनाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन वे सफल न हो सके। यह देखकर वसन्तक बोला, "महारानी, गलती मेरी है। सागरिका को आप समझकर मैं महाराज को बुला लाया था।

यह फांसी लगाकर मर रही थी। मेरी बातों पर विश्वास न हो तो इस लताफांस को देख लीजिए।"

वासवदत्ता और भी क्रुद्ध हो उठी। समझ गई कि यह सब चाल विदूषक की है। इसलिए उन्होंने कांचन-माला से कहा, "इस लताफांस से इस ब्राह्मण को बांध लो और सागरिका को भी अपने साथ ले चलो।"

ऐसा ही किया गया। राजा यह सब देखते रहे, लेकिन कुछ कर नहीं सके। वे सब चले गए तो वह भी महारानी को प्रसन्न करने के लिए उनके पीछे-पीछे चले।

: ४ :

विदूषक को तो बाद में छुट्टी मिल गई। लेकिन सागरिका को महल के किसी अज्ञात भाग में कैद कर दिया गया और यह खबर फैला दी गई कि सागरिका को महारानी ने उज्जयिनी भेज दिया है।

अपनी सखी की यह अवस्था देखकर सुसंगता बहुत दुखी हुई और अचानक एक दिन वह विदूषक से मिली तो उसने कहा, "न जाने महारानी ने सागरिका को कहां भेज दिया है। सुनते हैं, उसे उज्जयिनी भेजा गया है, लेकिन यह बात ठीक मालूम नहीं होती। साग-रिका को जब अपने जीवन की कोई आशा न रही तो

उसने यह रत्नमाला मुझे दे दी थी, इसे आप स्वीकार कर लें।"

यह सुनकर वसन्तक भी बहुत दुखी हुआ। बोला, "सुसंगता, यह समाचार सुनकर तो मेरा जी यह माला लेने को नहीं करता।"

लेकिन जब सुसंगता ने बारबार रोकर उससे यह प्रार्थना की तो उसने कहा, "अच्छा लाओ। इसीको देखकर मेरा मित्र धीरज रखेगा।"

उसने वह माला ले ली। लेकिन उस माला को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछने लगा, "ऐसा सुन्दर अलंकार उसे कहां मिला?"

सुसंगता ने कहा, "मैंने भी यही बात अपनी सखी से पूछी थी। लेकिन तब उसने ऊपर की ओर देखकर साँस ली और कहा, 'सुसंगते, यह अब जानकर क्या करोगी?' और रोने लगी।"

यह सुनकर वसन्तक ने मन-ही-मन सोचा कि हो-न-हो सागरिका किसी बड़े कुल की कन्या है, नहीं तो ऐसा दुर्लभ अलंकार उसे कहां मिल सकता था?

वह इसी प्रकार बातें कर रहा था कि महाराज मंडप की ओर जाते हुए दिखाई दिये। वसन्तक शीघ्र उनके पास पहुंचा और सागरिका की सारी कथा उनको

कह सुनाई। वह माला भी उन्होंने दे दी। महाराज यह सब सुनकर बहुत ही व्याकुल हुए।

इतने में प्रधान सेनापति रुम्णवान का भानजा विजयवर्मा एक शुभ समाचार लेकर आया। महाराज को प्रणाम करके उसने कहा, "महाराज, सौभाग्य से सेनापति रुम्णवान विजयी हुए हैं। कोशल देश जीत लिया गया है।"

यह समाचार सुनकर महाराज प्रसन्न हो उठे। बोले, "बताओ, कैसे क्या हुआ? विस्तार से सुनना चाहता हूँ।" विजयवर्मा ने उत्तर दिया, "महाराज सुनिये, हम लोगों ने श्रीमान की आज्ञा से थोड़े ही दिनों में अनेक हाथी-घोड़े और पैदल सैनिकों को लेकर कोशल नरेश को घेर लिया।"

राजा ने पूछा—"उसके बाद क्या हुआ?"

विजयवर्मा ने कहा—"उसके बाद कोशल नरेशने दुखी होकर अपनी सेना तैयार की। उसमें हाथी प्रधान थे।"

वसन्तक उतावला में बोला—"अजी जल्दी कहो मेरा दिल धड़क रहा है।"

राजा ने पूछा—"उसके बाद?"

विजयवर्मा ने कहा—"लड़ने का निश्चय करके कोशलनरेश अपने दुर्ग से बाहर निकले। वह विन्ध्य पर्वत

के समान थे। उनकी सेना के हाथियों ने दसों दिशाएँ घेर रखी थीं और वे हमारी पैदल सेना को रौंद रहे थे। तभी हमारा सेनापति रूमण्वान आगे बढ़ा और दुगने उत्साह से वाणवर्षा करते हुए उसने हाथियों की सेना को रोक लिया। फिर तो तलवार से सिर काटे जाने लगे। रक्त की नदी बहने लगी। हथियार खन-खनाने लगे। कवचों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। इसी समय विजय को रोकनेवाले हाथी पर सवार कोशल नरेश को सेनापति रूमण्वान ने ललकारा और शीघ्र ही स्वर्ग भेज दिया।" यह सब सुनकर महाराज ने विजयवर्मा को पारितोषिक देने के लिए यौगन्धरायण के पास भेज दिया।

इसी समय कंचनमाला महाराज के पास आई। बोली, "महाराज, महारानी कहती हैं कि उज्जयिनी से सर्वसिद्धि नाम का ऐन्द्रजालिक आया है। महाराज उसे दर्शन दें।"

महाराज बोले, "हमको इन्द्रजाल से बहुत स्नेह है। उसे शीघ्र बुला लाओ।"

ऐन्द्रजालिक तुरन्त वहां आ गया। उसने कहा, "महाराज की जय हो! पृथ्वी पर चन्द्रमा आकाश में पर्वत, जल में आग अथवा दोपहर में संध्या, क्या दिखलाया

जाय? आज्ञा दें। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो कुछ महाराज हृदय से देखना चाहें, वह सब चीजें गुरु-मन्त्र के प्रभाव से मैं दिखा दूंगा।"

महाराज ने सबसे पहले महारानी वासवदत्ता को बुलाया। उनके आने के बाद ऐन्द्रजालिक ने अपना काम आरंभ किया। नाना प्रकार के नृत्य करते हुए वह बोला, "ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्रादि देवताओं, सिद्धों, चारणों और अप्सराओं के समूह को आकाश में दिखाता हूं।"

यह सुनकर सबने ऊपर की ओर देखा। आश्चर्य से चकित होकर महाराज बोले, "आश्चर्य देवी! देखो तो यह कमल में ब्रह्मा, यह चन्द्रशेखर शंकर, धनुष-खड्ग-चक्र-गदा से युक्त, चारों हाथों से विभूषित भगवान् विष्णु, यह ऐरावत पर आसीन इन्द्र और ये दूसरे देवता दिखाई दे रहे हैं। उधर अप्सराएं नूपुर झंकारती हुई नृत्य कर रही हैं।"

इसी समय विदूषक ने उन सबकी दृष्टि बचाकर ऐन्द्रजालिक से कहा, "अरे बेवकूफ, देवी-देवताओं और अप्सराओं को दिखाकर क्या करेगा? यदि तुम महाराज को प्रसन्न करना चाहते हो तो सागरिका को दिखाओ।"

वह इस प्रकार ऐन्द्रजालिक को समझा ही रहा था कि वसुन्धरा ने वहां आकर निवेदन किया, "महाराज, यौगन्धरायण निवेदन करते हैं कि विक्रमबाहु के प्रधान अमात्य वसुभूति कंचुकी बाभ्रव्य के साथ आए हैं। इस शुभ अवसर पर आप उनसे मिल लें। कुछ देर में मैं भी आ रहा हूं।"

यह सुनकर वासवदत्ता ने महाराज से कहा, "तबतक के लिए इन्द्रजाल बन्द रखिए। मामा के घर से प्रधान मन्त्री आए हैं, उनसे मिल लीजिए।"

महाराज ने इस पर ऐन्द्रजालिक से कुछ देर विश्राम करने को कहा। लेकिन जाते समय उसने प्रार्थना की कि "मेरी एक और कला श्रीमान को देखनी होगी।"

महाराज बोले, "देखूंगा।"

महारानी ने भी कांचनमाला से कहा, "कांचनमाले, जाओ, इसे इनाम दिलवाओ।"

उसके जाने के बाद वसन्तक वसुभूति और बाभ्रव्य को बुला लाया। मार्ग में वसुभूति महाराज उदयन के वैभव को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। बोला, "कभी मतवाले हाथी तो हाथों कभी घोड़े मेरी दृष्टि को खींचते हैं। कभी मैं संगीत लहरी में गोते लगाता हूं, कभी राजगोष्ठी का आनन्द लेता हूँ। इन बाहरी कक्षों को देख-

कर मुझे सिंहल नरेश की समृ... भूलती जा रही है। यहाँ की तड़क-भड़क में मैं गँवई गाँव का आदमी हो रहा हूं।"

वह इसी प्रकार सोच रहा था कि वसन्तक ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया। तभी उसकी दृष्टि वसन्तक के गले में पड़ी रत्नमाला पर गई। सोचने लगा कि यह रत्नमाला तो राजा ने राजकुमारी को चलते समय दी थी। फिर सोचा कि इस महान् राजकुल में रत्नों की क्या कमी है। समानता होना असम्भव नहीं है।

यह सोचते हुए वे सब महाराज के पास जा पहुंचे। प्रणाम आदि के अनन्तर सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गए।

महाराज ने पूछा, "मंत्रिवर, महाराज सिंहलेश्वर तो प्रसन्न हैं ?"

वसुभूति दुखित स्वर में बोला, "महाराज, कैसे कहूं, फिर भी कहना ही होगा। सिंहलेश्वर ने जब यह सुना "कि महारानी वासवदत्ता अग्नि में जलकर मर गई हैं तो उन्होंने अपनी पुत्री रत्नावली को आपके पास भेजा था।"

राजा को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। लोक-

वसन्तक ने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

वसुभूति बोले, "जब हम यहां आ रहे थे तो हमारा बेड़ा समुद्र में डूब गया और उसके साथ रत्नावली भी डूब गई ।"

इतना कहते ही वसुभूति की आंखें भर आईं । वह रो पड़ा और उसने सिर झुका लिया । महारानी वासवदत्ता का हृदय भी विचलित हो उठा । उनकी आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे । बड़े दुःख से वह भी रो पड़ीं । बोलीं, "हाय बहन रत्नावली, तुम कहां गईं ? मुझे उत्तर दो ।"

महाराज ने उन्हें ढाढस बँधाया और कहा, "धीरज रखो, देवी । दैव की गति कौन जानता है ! ये लोग भी तो डूब गए थे, लेकिन बच आए । कौन जाने, रत्नावली भी इसी प्रकार बच गई हो !"

वासवदत्ता बोली, "यह तो ठीक है, लेकिन हमारा इतना अहोभाग्य कहां !"

इसी समय सहसा एक ओर कोलाहल हुआ । मालूम हुआ कि "अचानक अन्तःपुर में आग लग गई । लोग कह रहे थे कि आग की लपटों से ऐसा मालूम पड़ रहा है जैसे राजप्रासादों का शिखर सोने का बना हो । वृक्षों के मुरझा जाने से आग की प्रचण्डता प्रकट हो रही है । क्रीड़ा-पर्वत पर फैला हुआ धुआं काले बादलों के समान

दिखाई दे रहा है। भय के कारण ि त्रया आर्त्तनाद कर रही हैं।" ल ला णक ग्राम में देवी वासवदत्ता आग में जल गई—यह जो अफवा , फैल रही थी, मालूम पड़ता है उसे ही सत्य करने के लिए यह आग लगी है।"

यह सुनकर सब व्याकुल होकर देखने लगे।

वासवदत्ता भी घबरा उठी। बोली, "महाराज, क्षमा कीजिये। मैंने ।न ्यता से ा ।गा रका को ेड़ियाँ डलवा दी थीं। वह जल रही है। उ का रक्षा का ि ये। उसे बचा ये।"

"सा ारिका जल रही है।" यह सुनते ही म ाराज दौड़े और उस अग्नि में कूद पड़े। किसी के रोकने पर भी न रुके। यह देखकर वासवदत्ता भी यह कहती हुई—"क्या हमारे ही कहने पर आर्यपुत्र ने अपना जीवन संकट में डाल दिया? तो मैं भी उनक साथ दूं—"स्वामी के पीछे उस अग्नि में घुस गईं। अब तो विदूषक से भी न रहा गया। वह भी उस अग्नि में कूद पड़ा। वसुभूति, बाभ्रव्य सभी उस अग्नि में प्रवेश कर गए। देखते-देखते महाराज अंदर पहुँच गये। वहाँ जाकर देखते क्या हैं कि सागरिका बैठी हुई है। उ ांने जोर से ुकारा, "अरे, ऐसी हालत में तुम चुपचाप कैसे बैठी हो?"

म ,राज को देखते ही सागरिका ने चिल्लाकर कहा, "म ,राज, मुझे बचाइए ।"

म ,राज तेजी से सागरिका को गोद में उठाकर अग्नि से बाहर की ओर भागे । क्षण भर के लिए उनकी आँखें बन्द हो गईं । खुलीं तो चकित रह गए । देखा, कहीं कुछ नहीं है । अन्तःपुर पहले जैसा ही है । वासवदत्ता, वसन्तक, वसुभूति और बाभ्रव्य सभी खड़े हैं । उन्होंने सोचा—क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा यह सब इन्द्रजाल था ?

वसन्तक बोला, "आप सन्देह न करें । यह इन्द्रजाल ही है । आपको याद होगा, उस ऐन्द्रजालिक ने कहा था न कि हमारा एक खेल और महाराज को देखना होगा । यह वही है ।"

म ,राज वासवदत्ता से बोले, "देवि, तुम्हारे कहने से मैं सागरिका को ले आया ।"

वासवदत्ता हँस पड़ी, "आर्यपुत्र, मैं जानती हूँ ।"

वसुभूति ने जब सागरिका को देखा तो पहचान लिया । बोले, "महाराज, यह कन्या कहाँ से आई ?"

महाराज बोले, "महारानी जानती हैं ।"

वासवदत्ता ने कहा, "मान्यवर, मुझे तो इतना ही पता है कि अमात्य यौगन्धरायण ने इसे यह कहकर

मुझे सौंपा था कि यह समुद्र से प्राप्त हुई है, इसलिए इसका नाम सागरिका है।"

राजा ने सोचा—यौगन्धरायण ने मुझसे कहे विना कैसे यह काम किया?

वसुभूति ने चुपचाप बाभ्रव्य से कहा, "वसन्तक के गले की रत्नमाला से और इस कन्या के समुद्र में मिलने से यह स्पष्ट है कि यह सिंहलेश्वर की पुत्री रत्नावली है।"

फिर वह प्रकट रूप में बोला, "आयुष्मति, यह बताओ कि क्या तुम राजकुमारी रत्नावली ही यह मुसीबत भुगत रही हो?"

सागरिका ने वसुभूति को देखा तो आँखों में आँसू भर आए। सुस्थिर होकर बोली, "क्या आप अमात्य वसुभूति हैं?"

दोनों एक-दूसरे को पहचान कर मूर्च्छित हो गए।

वासवदत्ता यह सब देखकर व्याकुल हो उठी। दुख और आश्चर्य से भरकर बोली, "बाभ्रव्य, क्या यह मेरी बहन रत्नावली है?"

बाभ्रव्य ने कहा, "हाँ महारानी, यह वही हैं।"

महारानी ने यह सुनकर रत्नावली को गले से लगा लिया और महाराज से कहा, "आर्यपुत्र, मुझे अपने

कृत्य पर लज्जा हो रही है। आप इसके बन्धन खोल दीजिए।"

महाराज ने तुरन्त सागरिका की बेड़ियाँ खोल दीं। इतने में यौगन्धरायण भी वहाँ आ पहुँचे।

महाराज ने पूछा, "यौगन्धरायण, यह तो बताओ कि तुमने मुझसे बिना पूछे यह सब क्या किया?"

यौगन्धरायण बोले, "महाराज, मैं इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। लेकिन इन सिंहलेश्वर-कुमारी के विषय में एक सिद्ध पुरुष ने कहा था कि जो इससे विवाह करेगा, वह चक्रवर्ती होगा। उसके कथन पर विश्वास कर के मैंने बार-बार सिंहलेश्वर से यह कन्या आपके लिए माँगी, किन्तु सिंहलेश्वर यह समझकर कि ऐसा करने से वासवदत्ता को दुख देगा, हर बार मना करते रहे। तब मैंने एक चाल चली। मैंने यह अफवाह फैला दी कि महारानी वासवदत्ता लावाणक के अग्नि-कांड में जल मरी हैं। इसके बाद बाभ्रव्य को सिंहलेश्वर के पास भेजा।"

महाराज बोले, "इसके आगे मैं सब सुन चुका हूँ। लेकिन तुमने इन्हें देवी के पास क्यों रखा?"

विदूषक बोला, "यह मैं समझ गया। आप अन्तः-पुर में जायंगे और इसे देख लेंगे इसलिए।"

महाराज हँस पड़े। बोले, "मालूम पड़ता है कि

यह इन्द्रजाल भी तुम्हारा ही प्रयोग है।"

यौगन्धरायण ने कहा, "हाँ महाराज, यदि ऐसा न किया जाता तो अन्तःपुर में कैद की गई सागरिका को आप कैसे देख पाते और वसुभूति इसे कैसे पहचानते।"

फिर हँसकर उसने महारानी से कहा, "पहचानने के बाद अब देवी, बहन के साथ जैसा उचित हो, वैसा व्यवहार करें।"

वासवदत्ता भी हँस पड़ी। आंतरिक प्रसन्नता से सिहर कर बोली, "मंत्रिवर, साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि इसे महाराज को सौंप दूं?"

फिर रत्नावली की ओर देखकर बोली, "आओ, रत्नावली, आओ। यह काम भी तो मैं बहन की तरह कर लूं।"

इतना कह कर उसने अपने सब गहने रत्नावली को पहना दिये। अनंतर उसका हाथ पकड़कर उसे महाराज के पास ले गईं और बोलीं, "आर्यपुत्र! इसे स्वीकार करो। इसका नैहर दूर है। आप ऐसा करें, जिससे इसे अपने बन्धु-बान्धवों का अभाव न खटके और घर की याद भूली रहे।"

महाराज की इच्छा पूरी हुई। उन्होंने प्रसन्न होकर रत्नावली को ग्रहण कर लिया। सबको बड़ी प्रसन्नता

हुई। वसन्तक तो नाचने लगा।

यौगन्धरायण ने कहा, "हमारा परिश्रम सफल हुआ। देव, और क्या करूँ, बताइए।"

महाराज बोले, "जो हुआ है, उससे बढ़कर प्रिय और क्या होगा। विक्रमबाहु को अपना सम्बन्धी बना था। पृथ्वी का सार यह सागरिका मुझे मिली। महारानी प्रसन्न हुईं। उनको उनकी खोई बहन मिल गई। कोशल हमारे अधिकार में आ गया। तुम्हारे मन्त्रित्व में मुझे क्या नहीं मिला, जिसकी मैं इच्छा करूँ। फिर भी मैं चाहता हूं कि यथेष्ट वृष्टि करके इन्द्र धरती को हरी-भरी करें। ब्राह्मण यज्ञ से देवताओं को तृप्त करें। अनादिकाल तक सज्जनों का सुखप्रद संगम होता रहे और दुर्जनों की वाणी का अन्त हो जाय।

●

'मंडल' की दूसरी लोकप्रिय पुस्तक-माला

समाज-विकास-माला

इस माला में बालकों और नवसाक्षर प्रौढ़ों के लिए मोटे अक्षरों तथा सरल और रोचक भाषा में छोटी-छोटी सचित्र पुस्तकें निकाली जा रही हैं। हमारे देश की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, इतिहास और प्रकृति की सुन्दर झांकी इन पुस्तकों में मिलेगी। निम्न पुस्तकें तैयार हैं :

१. बद्रीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गौतम बुद्ध
९. गंगाजी
१०. निषाद और शबरी
११. गांव सुखी, हम सुखी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तन्दुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नज़ीर की नज़्में
२९. संत तुकाराम
३०. हज़रत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती

मूल्य प्रत्येक का छः आना

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

२१

कालिदास-कृत

कुमारसंभव

●

श्री सुशील

द्वारा

कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

●

१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५५
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

संस्कृत-सा[illegible]त्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। [illegible] जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवा- सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से [illegible]परिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट [illegible]चनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। फलत: अबतक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

कालिदास के काव्य ग्रंथों में ऋतुसंहार, कुमारसम्भव, रघुवंश और मेघदूत विशेष प्रसिद्ध हैं। रघुवंश और मेघदूत का कथा-सार पाठकों तक पहले ही पहुंच चुका है। अब कुमारसम्भव भी प्रकाशित किया जा रहा है। कुमारसम्भव महाकाव्य है। इसके १८ सर्ग मिलते हैं पर कहते हैं कि पहले आठ ही कालिदास ने रचे हैं। कुछ भी हो, साहित्यिक दृष्टि से कुमारसम्भव का स्थान बहुत ऊंचा है। कुछ विद्वान् तो इसे रघुवंश से भी बढ़कर मानते हैं। इस महा काव्य में कालिदास की आध्यात्मिक विचारधारा का परिचय मिलता है। बिना काम-वासना को जलाए, बिना सच्चे तप के प्रेम की प्राप्ति नहीं होती। काम और प्रेम में क्या अन्तर है, यह इस महाकाव्य में बहुत सुन्दरता से समझाया गया है।

इस महाकाव्य में शिव-पार्वती के विवाह की कथा है। इन्हीं के पुत्र कार्तिकेय थे, जो देवताओं के सेनापति बने और तारक राक्षस का संहार किया। इस महाकाव्य में करुण, शृङ्गार और वीर रस का अद्भुत समन्वय हुआ। प्रकृति-वर्णन भी बड़ा अनूठा है। कवि प्रकृति के विज्ञान से भी परिचित है। नारी के रूप का जो शिष्ट वर्णन कुमार-सम्भव में है, वह भी सुन्दर है। उपमाएं तो अद्भुत हैं। संक्षेप में कालिदास का सारा प्रयत्न प्रेम और समाधि दोनों को एक जगह दिखाने का है। वह शिव के अनन्य भक्त थे, इसीलिए उन्होंने शिव के रूप में दिव्य नायक का दिव्य वर्णन किया है। वैसे भी यह महाकाव्य बड़ा रहस्यमय है। इसके अनेक अर्थ हैं।

—सम्पादक

कुमारसम्भव

: १ :

भारत के उत्तर में हिमालय नाम का एक बहुत बड़ा पर्वत है। वह अनगिनत चमकीले रत्नों और जड़ी-बूटियों का भंडार है। उसकी कुछ चोटियों पर गेरू आदि धातुओं की बहुत-सी रंग-बिरंगी चट्टानें हैं। उनके रंग की छाया जब बादलों पर पड़ती है तो वे सन्ध्या के बादलों-जैसे दिखाई पड़ने लगते हैं। कुछ चोटियां तो इतनी ऊंची हैं कि बादल भी उनतक नहीं पहुंच पाते। यहां भोजपत्र और देवदारु के पेड़ हैं। ऐसे छेदवाले बांस भी बहुत हैं जो, उनमें हवा भर जाने पर, अपने आप बजने लगते हैं। लम्बी-लम्बी गुफाओं में दिन में भी अंधेरा छाया रहता है। और ऊंची चोटियों पर जो ताल हैं, उनमें कमल खिले रहते हैं। उन कमलों को सप्तर्षि पूजा के लिए तोड़कर ले जाते हैं। चूंकि इस पर्वत पर यज्ञ में काम आनेवाली सामग्री पैदा होती है और इसमें धरती को संभाले रखने की शक्ति है, इसलिए ब्रह्माजी ने इसे उन पर्वतों का स्वामी बना

दिया है, जिन्हें यज्ञ में भाग पाने का अधिकार है।

इसी हिमालय की पत्नी का नाम मेना था। वह इसीके समान ऊंचे कुल और शील वाली थीं। उनके मैनाक नाम का एक प्रतापी पुत्र पैदा हुआ। मैनाक के बाद उन्होंने एक कन्या को जन्म दिया। वह कन्या पहले जन्म में महादेवजी की पत्नी सती थी। इस जन्म में पर्वतराज की पुत्री होने के कारण उसे पार्वती कहकर पुकारने लगे। जन्म के समय उसके मुख पर तेज था। उसके अंग बड़े सुन्दर थे। चन्द्रमा की कला के समान वह धीरे-धीरे बढ़ने लगी। वह कभी गेंद खेलती, कभी गुड़िया बनाती। और इसी प्रकार खेल-खेल में उसका बचपन बीत गया। उसने जब पढ़ना शुरू किया, तो पिछले जन्म की सारी विद्याएं उसे अपने-आप याद आ गईं।

जब वह जवान हुईं तो उनका शरीर खिल उठा। उनकी बड़ी-बड़ी आंखें नील कमल के समान चंचल थीं और भुजाएं सिरस के फूलों से भी कोमल। उनके लाल-लाल ओठों पर फैली हुई उनकी मुसकान का उजलापन ऐसा सुन्दर लगता था, जैसे लाल कोंपल में श्वेत फूल रखा हुआ हो। वह बोलती थीं, मानो अमृत झरता था। उनको देखकर ऐसा लगता था,

जैसे ब्रजराज। धरती की सारी सुन्दरता एक साथ देखना चाहते थे।

एक बार घूमते-घामते नारदजी हिमालय के पास आये। वहां उन्होंने पार्वती को देखा और भविष्य-वाणी की कि उनका विवाह महादेवजी के साथ होगा। यह सुनकर उनके पिता बड़े प्रसन्न हुए। वर खोजने जाने की आवश्यकता नहीं रही। फिर भी वह स्वयं पार्वती के विवाह का प्रस्ताव लेकर महादेवजी के पास नहीं गये। सती के मरने के बाद महादेवजी ने दूसरा विवाह नहीं किया था बल्कि तब से वह तप ही कर रहे थे। हिमालय अपनी बेटी को लेकर वहीं पहुंचे। पहले तो उन्होंने स्वयं उनकी पूजा की। फिर पार्वती को आज्ञा दी कि वह महादेवजी की पूजा करे। पार्वती वहीं रहकर नियम से उनकी सेवा करने लगीं।

: २ :

उन्हीं दिनों तारक नाम का राक्षस देवताओं को बहुत सता रहा था। इसलिए वे सब ब्रह्माजी के पास पहुंचे और उनकी स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी उनकी स्तुति से बड़े प्रसन्न हुए। बोले, "मैं आपका स्वागत करता हूं; पर यह तो बताइये कि आप इतने उदास क्यों

दिखा‍ई दे रहे हैं ? आप किसलिए मेरे पास आये हैं ?" यह सुनकर इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति को बोलने का इशारा किया। बृहस्पति बोले, "हे ब्रह्मन् ! आप सब-कुछ जानते हैं। आपका वर पाकर तारक राक्षस ने ऐसा सिर उठा रखा है मानो संसार का नाश करने के लिए धूमकेतु निकल आया हो। सूर्य, चन्द्र, पवन, समुद्र, नाग, इन्द्र सभी उसकी सेवा करते हैं फिर भी वह सबको सताता रहता है। देवताओं की स्त्रियां उसकी जेल में हैं। देवता उसके डर से बाहर नहीं निकलते। विष्णु का चक्र भी उसे नष्ट नहीं कर सका। हे प्रभो, हम उस राक्षस को नष्ट कर सकें, ऐसा एक सेनापति चाहते हैं।"

वृहस्पति जब सब-कुछ कह चुके तब ब्रह्मा बोले; "आप लोगों की इच्छा अवश्य पूरी होगी पर कुछ दिन रुकना पड़ेगा। महादेवजी का पुत्र ही तारकासुर का नाश कर सकता है। इसलिए आप लोग ऐसा प्रयत्न करें, जिससे शंकर महाराज पार्वती से विवाह करलें।"

यह कहकर ब्रह्माजी चले गए। देवता लोग भी स्वर्ग लौट आये। वहां पहुंचकर इन्द्र ने कामदेव को बुला भेजा और उसे सब बातें समझाकर कहा, "अब

तुम ऐसा जतन करो जिससे समाधि में बैठे हुए महादेवजी के मन में पार्वती के प्रति प्रेम पैदा हो जाय।"

"जो आज्ञा," कहकर कामदेव ने उस कठिन काम को करना स्वीकार कर लिया और वह वसन्त को लेकर उस ओर चल पड़ा जिस ओर शिवजी बैठे तप कर रहे थे। उसकी पत्नी रति भी साथ थी पर उसके मन में डर समाया हुआ था कि न जाने आज क्या होनेवाला है। उधर वसन्त के आते ही उस तपोवन में फूल खिल उठे। भौंरे गूंजने लगे। कोयल कूकने लगी। अप्सराओं ने भी अपना नाच-गान प्रारम्भ कर दिया। सब विचलित हो उठे पर शिवजी उसी तरह ध्यान-मग्न समाधि में बैठे रहे। कामदेव ने देखा—उन्होंने वीरासन लगा रखा है, शरीर सीधा और अचल है और वह दोनों कन्धे झुकाकर अपनी गोद में दोनों हथेलियों को ऊपर किए स्थिर बैठे हैं। दृष्टि नाक के अगले भाग पर जमी है। वह तब अविनाशी आत्मा की ज्योति को अपने भीतर देख रहे थे। उनका यह रूप देखकर कामदेव डर गया पर तभी उसने पार्वती को देखा। उनका रूप रति को भी लजानेवाला था। वह जैसे ही

आश्रम के द्वार पर पहुंचीं, वैसे ही महादेवजी ने समाधि तोड़ी। उनकी आज्ञा लेकर नन्दी पार्वती को अन्दर ले गया। पार्वती ने उनकी पूजा करके उन्हें प्रणाम किया। शंकर प्रसन्न होकर बोले, "तुम्हें ऐसा पति मिलेगा, जैसा किसी भी स्त्री को नहीं मिला।"

पार्वती लजा गईं। उस समय वह बहुत सुन्दर लग रही थीं। उन्हें देखकर शंकर का मन डोल उठा। पर वह तुरन्त संभल गये। उन्होंने चारों ओर देखा—मेरे मन में यह खोट कैसे आया? देखते क्या हैं कि एक ओर कामदेव खड़ा है। बस तप में बाधा डालने-वाले कामदेव पर वह एकाएक क्रुद्ध हो उठे। उनका तीसरा नेत्र खुल गया और उसमें से निकलनेवाली आग ने निमिष मात्र में कामदेव को जलाकर राख कर दिया। यह देखकर रति मूर्च्छित हो गई।

इसके बाद शिवजी तुरन्त वहाँ से चले गये। भय के कारण नेत्र मूंदे, उदास मन पार्वती भी घर लौट चलीं। उनके लौट जाने पर रति की मूर्च्छा टूटी। पति को जला हुआ देखकर वह बेहाल हो उठी। मिट्टी में लोट-लोटकर बिलख-बिलखकर वह ऐसे रोई, जैसे सारी वन-भूमि उसके साथ रो रही हो। बसन्त उसे ढाढ़स बंधाने आया तो वह और भी फूट-

ूटकर रोने लगी। स्वजनों को दखकर दुःख ऐसे ही बढ़ जाता है, जैसे किसी रुकी वस्तु को बाहर नि ाल्ने के लिए मार्ग मिल जाय। वह बार-बार वसन्त से अपने लिए चिता तैयार करने को कहने लगी। वह पति के साथ सती होना चाहती थी।

इसी समय आकाशवाणी हुई, "हे रति! थोड़े दिन बाद ुम्हारा पति तुम्हें मिल जायग । ब्रह्मा के शाप के कारण ही शिवजी ने उसे भस्म किया है। जब प र्वता की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी उनसे विवा , कर लेंगे, तब कामद- को भी वह पहले-जैसा शरीर दे देंगे।"

यह सुनकर रति ने प्राण देने का विचा छोड़ दिया। शाप बीतने की अवधि की वह उसी प्रकार बाट जोहने लगी, जैसे दिन में दिखाई देनेव ले तेज-हीन चन्द्रम की किरण सांझ होने की बाट जोहती है।

: ३ :

कामदेव के भस्म हो जाने के बाद पार्वती ने भी कठिन तप करके शिवजी को प्रसन्न करने का निश्चय किया। उनकी माता ने उन्हें बहुत समझाया पर वह नहीं मानीं। पिता तो सब-कुछ जानते ही थे। उन्होंने

पार्वती को तप करने की आज्ञा दे दी। पार्वती ने अपना वेश उतारकर वल्कल-वस्त्र पहन लिये और जटा रख ली। कमर में उन्होंने मूंज की तगड़ी बांधी और हाथों में रुद्राक्ष की माला ली। वह हाथों का तकिया बनाकर बिना बिछी हुई भूमि पर बैठी-बैठी सो जाती थीं।

वह पौधों को प्रेम से सींचतीं। हरिणों को अपने हाथ से दाना खिलातीं। जब वह वल्कल-वस्त्र पहन-कर पाठ-पूजा करतीं तो दूर-दूर से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उन्हें देखने आते। उनके आश्रम में सदा हवन की अग्नि जलती रहती। लेकिन जब उन्होंने देखा कि इस सरल तप से कुछ नहीं होगा तो उन्होंने बड़ी कठोर तपस्या करनी आरम्भ कर दी। गरमी की ऋतु में वह अपने चारों ओर आग जलाकर उसके बीच में खड़ी रहने लगीं। वर्षा ऋतु में वह केवल वर्षा का जल पीतीं। घनघोर वर्षा और तूफानों में वह खुले मैदान में शिला पर लेटी रहतीं। पूस की ठिठरती रातें वह जल में बैठकर बिता देतीं। अपने आप गिरे हुए पत्ते खाकर रहना तप की पराकाष्ठा समझी जाती है, पर पार्वतीजी ने पत्ते खाने भी छोड़ दिए।

इसी बीच एक दिन ब्रह्मचर्य के तेज से दीप्त

एक ब्रह्मचारी वहां आया। पार्वती ने बड़े आदर से उसकी पूजा की। पूजा के बाद उस ब्रह्मचारी ने एकटक पार्वतीजी को देखते हुए बोलना शुरू कर दिया। आश्रम और उनके तप के बारे में बहुत-कुछ कहने के बाद उसने पूछा, "आपने ब्रह्मा के वंश में जन्म लिया है। तीनों लोकों की सुन्दरता आपके शरीर में भरी है। धन इतना है कि पूछना ही क्या? फिर बताइए आप तप क्यों कर रही हैं? आपको किसीसे बदला नहीं लेना। आपके लिए स्वर्ग की इच्छा व्यर्थ है। आप यदि अपने योग्य पति पाने के लिए तप कर रहीं हैं तो वह भी व्यर्थ है, क्योंकि मणि किसीको खोजने नहीं जाती, लोग स्वयं मणि को खोजने जाते हैं।

"आप लम्बी सांस ले रही हैं। समझा, आप योग्य पति पाने के लिए तपस्या कर रही हैं। पर वह ऐसा कौन है जिसे आप चाहती हैं और वह आपको नहीं मिला? ऐसा निर्दयी कौन है, जो तपस्या से सूखे आपके शरीर को देखकर रो नहीं पड़ता? मालूम होता है उसे अपनी सुन्दरता का झूठा घमण्ड है। लेकिन आप कबतक तप करती रहेंगी? मैंने बहुत तप किया है। उसका आधा भाग आप ले लीजिए और अपनी सब साधें पूरी कर लीजिए। पर यह बता

दीजिए कि वह है कौन ?"

ये बातें सुनकर पार्वतीजी लजा गईं और उन्होंने अपनी सखी को उस प्रश्न का उत्तर देने का इशारा किया। सखी ने बताया, "हे साधु ! यदि आप सुनना ही चाहते हैं तो मैं बताती हूं कि हमारी सखी महादेवजी से विवाह करने का निश्चय कर चुकी हैं। उसीके लिए यह ऐसा कठोर तप कर रही हैं।"

पार्वती के मन की बात जानकर ब्रह्मचारी तनिक भी प्रसन्न नहीं हुआ; बल्कि चकित होकर पूछने लगा, "क्या यह सच है ? कहीं आपकी सखी हंसी तो नहीं कर रही ?"

बहुत देरतक पार्वतीजी कुछ न बोलीं, फिर धीरे-धीरे उन्होंने कहा, "आपने जैसा सुना है, मेरे मन में वैसा ही ऊंचा पद पाने की साध जाग उठी है और यह तप मैं उन्होंको पाने के लिए कर रही हूं।"

यह सुनकर उस ब्रह्मचारी ने महादेवजी की निन्दा करनी शुरू कर दी। बोला, "वह श्मशान में रहते हैं, जहां भूत-प्रेतों के बाल बिखरे रहते हैं। उनके तीन आंखें हैं, उनके जन्म का कोई ठिकाना नहीं। वह सदा नंगे रहते हैं। इसीसे आप समझ लेंगी कि उनके घर में क्या होगा ? हे मृगनयनी !

वर में जो गुण खोजे जाते हैं, उनमें से एक भी महा-
देवजी में नहीं है।"

महादेवजी की निन्दा सुनकर पार्वतीजी क्रोध से
कांप उठीं। बोलीं, "आप उन्हें न जानते हैं और न
पहचानते हैं। खोटे लोग ही महात्माओं के अनोखे
कामों को बुरा बताते हैं।" और बहुत-सी बातें कह-
कर अन्त में उन्होंने कहा, "आपने उन्हें जैसा सुना वे
वैसे ही सही, पर मेरा मन तो उन्हीं में रम गया है।
जब किसीका मन किसीपर लग जाता है तो वह
किसीके कहने-सुनने पर ध्यान नहीं देता।"

ब्रह्मचारी ने फिर कुछ कहना चाहा, पर तभी
पार्वतीजी सखी से बोलीं, "इनसे कह दो अब एक
शब्द भी न बोलें। जो बड़ों की निन्दा करता है, वही
पापी नहीं होता, जो सुनता है उसे भी पाप लगता
है।"

यह कहकर वह उठीं; लेकिन जैसे ही उन्होंने आगे
बढ़ने को कदम उठाया, वैसे ही महादेवजी ने अपना
सच्चा रूप धारण कर लिया और मुस्कराते हुए
उनका हाथ थाम लिया। उन्हें देखकर पार्वतीजी
सिहर उठीं। न आगे बढ़ सकीं, न पीछे हट सकीं।
शिवजी बोले, "हे कोमलांगी! तुमने मुझे अपने

तप से मोल ले लिया है। मुझे अपना दास समझो।"

इतना सुनना था कि पार्वती के सब कष्ट दूर हो गये। उन्होंने सखी से कहलवाया कि उनका विवाह करने का अधिकार उनके पिता को है। शिवजी उनसे ही बात करें।

और वह चली गई। उनके जाने के बाद महादेवजी ने सप्त ऋषियों को याद किया। अरुन्धती सहित वे सातों ऋषि तुरन्त ही वहां आ पहुंचे। उन्होंने प्रेम से पुलकित होकर शिवजी की पूजा की और पूछा, "आपने हमें किसलिए याद किया? कहिए हमें क्या करना होगा?"

महादेवजी मन्द-मन्द मुस्कराए और उन्होंने सब बातें सप्त ऋषियों को समझाकर कहा, "आप लोग मेरी ओर से जाकर हिमालय से पार्वती को मांग लीजिए और महाकोशी नदी के झरने पर आकर मुझसे मिलिए।"

सप्त ऋषि तुरन्त हिमालय की राजधानी ओषधिप्रस्थ की ओर चल पड़े। हिमालय ने बड़े आदर से विधिपूर्वक उनकी पूजा की और फिर बड़े विनय से उनके आने का कारण पूछा। सप्त ऋषियों में बातचीत करने में सबसे चतुर अंगिरा ऋषि थे।

उन्होंने हिमालय की प्रशंसा करते हुए, बड़ी कुशलता से शिवजी का सन्देशा कह सुनाया। बोले, "उनसे अपनी पुत्री का विवाह करके आप उन महादेवजी से भी बड़े बन जाइए, जो स्वयं किसी की स्तुति नहीं करते, पर संसार जिनकी स्तुति करता है।"

हिमालय तो यही चाहते थे। मेना ने भी इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया। फिर तो तीन दिन बाद विवाह की तिथि निश्चित करके ऋषि लोग वहां से महादेवजी की ओर चल पड़े।

: ४ :

तीन दिन पीछे हिमालय ने अपने भाई-बन्धुओं को बुलाकर शंकरजी के साथ अपनी बेटी का विवाह कर दिया। वह लग्न के सातवें घर में पड़ी हुई शुक्ल पक्ष की शुभ तिथि थी। नगर ऐसा सजाया गया था मानो स्वर्ग ही उतर आया हो। पार्वतीजी के शृङ्गार का क्या कहना! नाना प्रकार के रत्नजड़ित आभूषण और मणि-मुक्ताओं के धारण करने से उनकी स्वाभाविक सुन्दरता और भी निखर उठी। अपने उस रूप को देखकर वह स्वयं विस्मित हो उठीं। उनकी मां मेना भी आनन्द से बेसुध हो गईं।

इधर हिमालय विवाह के प्रारम्भिक काम करके

रहे थे, उधर कैलास पर महादेवजी की बारात की तैयारी हो रही थी। उन्होंने कोई शृङ्गार नहीं किया बल्कि अपनी शक्ति से अपने ही वेश को विवाह-योग्य बना लिया। वह अपने बैल पर बैठकर ही चले। जब गणों ने मंगल-तुरही बजाई, तब सूर्य ने विश्वकर्मा द्वारा बनाया हुआ छत्र शिवजी पर लगा दिया। गंगा-यमुना चंवर डुलाने लगीं। ब्रह्मा-विष्णु जय-जयकार करने लगे। इन्द्रादि देवता भी दर्शन करने आ पहुंचे। आगे-आगे विश्वावसु आदि प्रसिद्ध गन्धर्व गीत गाते चल रहे थे।

क्षणभर में ही वे सब ओषधिप्रस्थ पहुंच गये। पर्वतराज हिमालय इस सम्बन्ध से बड़े प्रसन्न थे। बन्धु-बान्धवों सहित बड़े प्रेम से उन्होंने बारात का स्वागत किया। नगर की स्त्रियां सुध-बुध खोकर उन्हें देखने दौड़ीं और शिवजी की सुन्दरता को सराहने लगीं। स्त्रियों की मीठी-मीठी बातें सुनते हुए महादेवजी हिमालय के घर पहुंचे। सबसे पहले हिमालय ने उन्हें वस्त्रादि प्रदान किये। फिर कैलास के सेवक उन्हें पार्वतीजी के पास ले गये। वहां पुरोहितजी ने विधिपूर्वक दोनों को परिणय-सूत्र में बांध दिया। दोनों ने सबसे पूर्व ब्रह्माजी को प्रणाम

किया। फिर सब लोगों ने विधिपूर्वक उनपर गीले और पीले अक्षत छिड़के। लक्ष्मीजी उनपर कमल का छत्र लगाकर खड़ी हो गईं। सरस्वतीजी उनकी प्रशंसा करने लगीं। अप्सराओं ने एक सुन्दर नाटक खेला। उसके बाद देवताओं ने उनसे कामदेव को फिर से जिला देने की प्रार्थना की।

अब महादेवजी उस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सके। वह एक माह तक तो आनन्दपूर्वक हिमालय के घर पर रहे और फिर विदा मांगकर यहां-वहां घूमने लगे। मेरु पर्वत, मंदराचल, कैलास, मलय पर्वत, नंदनवन होते हुए वे गंधमादन पर्वत पर जा पहुंचे। वहां बहुत काल तक वे पार्वतीजी के साथ विहार करते रहे। कोई उनके दर्शन करने आता तो भी वह बाहर न निकलते। यह देखकर देवताओं ने अग्नि को उनके पास भेजा। वह कबूतर का रूप धर कर वहां गया। कबूतर को देखकर शंकर पहले तो प्रसन्न हुए, पर जब उन्हें पता लगा कि वह अग्नि है तो वे क्रुद्ध हो उठे। अग्नि ने यह देखा तो अपना असली रूप प्रकट कर दिया और सब बातें सच-सच कह दीं, "हे भगवन्! इन्द्रादि सब देवता आपके दर्शन के लिए बैठे बाट जोह रहे हैं। उन्हींके कहने

से मैं आपको ढूंढने ।न ला हूं । मुझे क्षमा कीजि । ोलिए कि शत्रुओं से ।रकर और अपमानित होकर आपकी शरण में आये हुए देवता भला कबतक मन मारे बैठे रहेंगे ।"

अग्नि की ये सब बातें सुनकर उनका क्रोध जाता रहा । उचित अवसर पर उन्होंने देवताओं को दर्शन दिये और फिर वहां से चलकर वह कैलास आ गये ।

: ५ :

उनके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसके छः मुख थे । उसे गोद में लिए पार्वतीजी ऐसी सुन्दर लगती थीं जैसे आकाश-गंगा में कमल खिल उठा हो या पूर्व दिशा में चन्द्रमा निकल आया हो । उसके जन्म के उपलक्ष में एक बड़ा उत्सव मनाया गया । वह उत्सव इतना बड़ा था कि एक ओर तो संसार के सभी चर और अचर प्राणी हर्ष से फूल उठे, दूसरी ओर तारक राक्षस की राजलक्ष्मी कांप उठी ।

माता-पिता को सुख देता हुआ वह बालक धीरे-धीरे बढ़ने लगा । वह अपनी बाल-लीलाओं से सबको रिझाया करता । उसकी लीलाओं में आनन्द लेते हुए शंकर-पार्वती इतने मगन हो उठते कि उन्हें पता ही

नहीं रहता कि कब दिन चढ़ा और कब रात आई। इस प्रकार छठे दिन ही वह बालक बड़ा विद्वान और जवान हो गया। छह ही दिन में उसे सब शास्त्र और शस्त्र-विद्याएं भली प्रकार आ गईं।

तब एक दिन सब देवताओं को साथ लेकर, तारक राक्षस के डर से दुःखी इन्द्र, लुकते-छिपते शंकरजी के पास आये। उस समय वह बहुत-से बड़े-बड़े गणों से घिरे बैठे थे और बड़े चाव से कुमार कार्तिकेय की शस्त्र और अस्त्र-विद्या का अभ्यास देख रहे थे। उन्हें देखकर इन्द्र को आशा होने लगी कि अब हम शत्रु को अवश्य जीत लेंगे। नन्दी के बताने पर जब शंकर ने उन्हें देखा, तो सबने धरती पर माथा टेककर प्रणाम किया। शंकरजी ने पूछा, "आप उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं? इतने मनस्वी, महिमाशाली और स्वर्ग-निवासी होकर भी, स्वर्ग छोड़कर साधारण मनुष्यों के समान इधर-उधर क्यों मारे-मारे फिर रहे हैं? कहीं आपने तारक से झगड़ा तो नहीं कर लिया? यदि ऐसी बात है तो उसको क्षण में ही वश में कर सकता हूं।"

यह सुनकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए। इन्द्र ने उन्हें सब कथा कह सुनाई और निवेदन किया,

"भगवन् ! जैसे गरमी के सूर्य की तपन से जले हुए लता-वृक्षों को नए बादल हरा कर देते हैं, वैसे ही अपने पुत्र को हमारा सेनापति बनाकर आप भी हमें जिला दीजिए ।"

इन्द्र के मुंह से तारक के अत्याचारों की कथा सुनकर शंकर क्रोध से भर उठे । बोले, "मैं तुम्हारी सहायता करूंगा । मैंने पार्वती से इसीलिए विवाह किया था कि इनका पुत्र तारक को मार डाले । इस-लिए आप लोग उसे सेनापति बनाकर शत्रु का नाश कीजिए ।" और उन्होंने पुत्र से कहा, "तारक देवताओं का शत्रु है । जाओ, तुम उसे मार डालो ।"

कार्तिकेय तुरन्त तैयार हो गये । उन्हें पाकर इन्द्र आनन्द से खिल उठे ।

युद्ध का बाना पहनकर जब पुत्र ने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया तो उसे आशीर्वाद देकर शंकर बोले, "हे वीर पुत्र, जाओ ! शत्रु को मार कर इन्द्र को फिर से उनके पद पर आसीन करो ।" पार्वतीजी ने पुत्र को कसकर हृदय से लगाते हुए कहा, "पुत्र ! युद्ध में जय पाकर यह सिद्ध कर दो कि मैं वीर माता हूं ।"

इस प्रकार विदा होकर कुमार देवताओं के साथ

स्वर्ग-लोक पहुंचे। द्वार पर पहुंचकर देवता लोग ठिठक गए। तारक के डर से वे अन्दर नहीं जा सके और कातर होकर कुमार की ओर देखने लगे। कुमार ने आगे बढ़कर कहा, "अब डरने की क्या बात है ? आप निडर होकर आगे बढ़िए। मैं तो चाहता हूं कि तारक से यहीं भेंट हो जाय और मैं उसका नाश कर डालूं।" कुमार की ये बातें सुनकर देवता बहुत प्रसन्न हुए। इन्द्र और नारद मुनि तो वस्त्र बदलकर उनके मित्र हो गए। गन्धर्व, विद्याधर और सिद्ध उनकी बड़ाई करते हुए उनकी जय की कामना करने लगे। इसके बाद जिस प्रकार त्रिपुरासुर का नाश करने के लिए जाते समय शंकर के पीछे उनके गण चले थे, उसी प्रकार तारक को मारने की इच्छा करनेवाले कुमार के पीछे देवताओं ने स्वर्ग में प्रवेश किया। सबसे पहले उन्होंने आकाश-गंगा को देखा। बहुत दिन बाद उसे देखने पर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। कुमार भी बड़े अचरज से उसे देखने लगे। फिर भक्ति-भाव से उसे प्रणाम किया और उसकी वन्दना की। उसके आगे नन्दनवन था। तारक ने वृक्ष काट कर उस सुन्दर वन की शोभा नष्ट कर दी थी। उसकी यह दुर्दशा देखकर कुमार बड़े क्रुद्ध हुए। विश्व की

सबसे श्रेष्ठ नगरी अमरावती की तो और भी बुरी दुर्दशा हो रही थी। उसके लीला-भवन नष्ट कर दिये गये थे और ऊंचे-ऊंचे भवन गिरा दिये गये थे। कुमार का क्रोध और भी बढ़ गया। वह युद्ध के लिए उतावले हो उठे और इसी अवस्था में उन्होंने देवताओं की राजधानी में प्रवेश किया। भीतर और भी बुरा हाल था। इन्द्र उन्हें अपने वैजयन्त नाम के सुन्दर भवन में ले गये। वहां कल्प-वृक्ष स्वयं बन्दनवार बना हुआ था और ढेर-के-ढेर पारिजात-पुष्प बिखरे पड़े थे। वहींपर कुमार ने देव-दानव वंश के सबसे बूढ़े महर्षि कश्यप और देवताओं की आदि माता अदिति के चरणों में प्रणाम किया। इन्द्र-पत्नी शची तथा दूसरे देवताओं की पत्नियों को भी उन्होंने प्रणाम किया। महर्षि कश्यप की जो दूसरी सात और पत्नियां थीं, उन्हें भी कुमार ने प्रणाम किया। सबने उनको यही आशीर्वाद दिया, "तुम्हारी जय हो।"

इसके पश्चात् देवताओं ने विधिपूर्वक कुमार को अपनी सेना का सेनापति नियुक्त किया। उनके यह पद संभालते ही सबको विश्वास हो गया कि अब उनकी जीत निश्चित है। इस विश्वास ने उनका सब शोक दूर कर दिया।

: ६ :

युद्ध की तैयारी होने लगी। कुमार के कहने पर सब देवताओं ने अस्त्र-शस्त्र बांधने शुरू कर दिये। धनुषधारी पराक्रमी कुमार 'विजित्वर' नामक रथ पर सवार हुए। वह रथ मन से भी अधिक वेग से चलता था और जो उसपर चढ़ता था उसकी विजय निश्चित थी। कुमार के सिर पर सोने का शत्रुनाशक छत्र लगा हुआ था। उनके दोनों ओर चंवर डुलाये जा रहे थे। उनके आगे-आगे किन्नर, सिद्ध और चारण उनकी प्रशंसा में गीत गाते चल रहे थे।

देवता लोग भी अपने-अपने शक्तिशाली वाहनों पर सवार होकर उनके पीछे-पीछे चले। हाथ में पर्वतों को विदीर्ण करनेवाला वज्र लिये इन्द्र ऐरावत पर सवार थे। मदोन्मत्त मेढ़े पर सवार अग्नि के हाथ में भयंकर दहकता हुआ अस्त्र था। यमराज काले-कलूटे भैंसे पर सवार थे और उनके हाथ में दण्ड था। वह भैंसा अपने सींगों से बादलों को फाड़ता हुआ चलता था। नैऋत राक्षस तारक से अप्रसन्न होकर इधर आ मिला था। वह भी मतवाले प्रेत पर चढ़कर कुमार के पीछे-पीछे चला। वरुण घड़ियाल पर बैठे थे और उनकी अचूक फांस उनके हाथ में थी। पवन का वाहन

हिरण था, जो धरती और आकाश सब कहीं बिना रुके चौकड़ी भरता रहता था। कुबेर गदा लेकर पालकी पर सवार हुए और हाथों में पिनाक, धनुष व जलते हुए त्रिशूल लेकर ग्यारहों रुद्र बैलों पर बैठे थे। सब देवता प्रसन्न थे और उछलते-कूदते चल रहे थे। उनके नगाड़ों की घोर ध्वनि की गूंज सुनकर दैत्यों की राज-लक्ष्मी भी कांप उठी। सेना के चलने से जो धूल उड़ रही थी उससे आकाश भर उठा और ऐसा सुन्दर दिखाई देने लगा मानो सन्ध्या हुए बिना ही सुनहले बादलों के झुंड-के-झुंड उमड़ आए हों।

इस प्रकार युद्ध करने को उत्सुक देवराज की सेना सुमेरु पर्वत से नीचे उतरी। उस समय अमरावती के निवासी उन्हें बड़े चाव से देख रहे थे। पहले तो वह सेना धरती पर फैल गई; लेकिन जब वहां न समा सकी तो आकाश में जा पहुंची। जब वहां भी स्थान की कमी हो गई तो वह घबरा उठी। हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट और रथों की घड़-घड़ाहट से सब ऐसे परेशान हुए मानो सांस घुट रही हो। चारों ओर कोलाहल मचने लगा। संसार-भर में गड़बड़ी फैल गई। लेकिन सेना बढ़ती ही जा रही थी। ऐसा लगता था मानो असुरों के महानाश के समय

घनघोर स्वर में गरजता हुआ म .ासागर उमड़ चला हो।

उधर जब दैत्यों को पता चला कि कार्तिकेय को से. ापति बनाकर इन्द्र युद्ध करने आ रहे हैं, तो वहां बड़ी खलबली मची। उन्होंने तुरन्त तारक को इस बात की सूचना दी। तारक हँस पड़ा, "जो आजतक मुझे नहीं जीत सका, वह अब कुमार के भरोसे मुझसे लड़ने चला है।" यह कहते-कहते उसके ओठ कांपने लगे और उसने अपने सेनापतियों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी। तुरन्त ही बड़े-बड़े दैत्य अस्त्र-शस्त्र बांधकर तारका ुर के पास आ पहुंचे। महायुद्ध के समुद्र में हलचल मचाने में सब एक-से-एक बढ़ कर थे। उन्हें देखकर तारक भी अपने रथ पर चढ़कर चल पड़ा। वह रथ अकेला ही इन्द्र की सेना को तहस-नहस कर सकता था। पर्वत, समुद्र सब कहीं वह जा सकता था। उसकी घरघरा .ट सुनकर हाथी चिंघाड़ना भूल जाते थे। दैत्यों की सेना उसके पीछे-पीछे चली। वह समुद्र के गर्जन के समान कोलाहल मचा रही थी। जब वे चले तो उनके आगे ऐसे बुरे-बुरे असगुन होने लगे जिनसे पता लगता था कि तारक किसी भारी विपत्ति में डूबनेवाला है। गिद्ध और

कौए पांति बांध-बांधकर उनपर मंडरा रहे थे। आकाश में आंधियां उठ रही थीं। भयंकर सांप सेना का मार्ग काटकर निकल जाते थे। दिन के समय ही तारे बड़े वेग से टूटने लगे। बिना बादल ही भयंकर बिजली तड़प उठी। आकाश से आग, लहू और हड्डियों की वर्षा होने लगी। चारों ओर कान फाड़ देनेवाला हल्ला होने लगा। तभी ऐसा भूकम्प आया कि समुद्र हिलोरें लेने लगा, पर्वतों में दरारें पड़ गईं, हाथी-घोड़े लड़खड़ाने लगे। यह सब हुआ पर उस दैत्य ने युद्ध में जाने से मुंह नहीं मोड़ा। हवा के झोंके से उसका राज-छत्र भूमि पर गिर पड़ा। उसके झंडे पर भयंकर काला सांप आ लिपटा। उसके रथ में आग लग गई पर वह फिर भी नहीं लौटा। यहांतक कि जब आकाश-वाणी ने कार्तिकेय की प्रशंसा करके युद्ध में जाने से रोका तब भी उसपर कोई असर नहीं हुआ। रथ बढ़ा कर वह शीघ्र ही इन्द्र के सामने जा पहुंचा।

भयंकर युद्ध मचने लगा। दोनों सेनाएं एक-दूसरे पर टूट पड़ीं। समुद्र के समान हिलोरें लेती हुई दैत्यों की सेना देखकर देवता डर गये, पर निडर कार्तिकेय समझ गये कि इसमें कुछ जान नहीं है। उन्होंने देवताओं को इशारा किया कि डरो मत।

युद्ध करते चलो। ऐसा ही हुआ। प्रलय के समय जैसे दो समुद्र एक दूसरे से टकराकर बढ़ चलते हैं, वैसे ही ये दोनों सेनाएं बढ़ रही थीं। पैदल पैदल से, रथी रथी से, घुड़सवार घुड़सवार से और हाथी-सवार हाथी-सवार से भिड़ गए। चारण वीर सैनिकों की प्रशंसा में गीत गाने लगे।

उस समय वहां का दृश्य बड़ा ही अद्भुत था। सूर्य की किरणें पड़ने से लहू से लाल तलवारें चमक उठती थीं। भयंकर भाले ऐसे लगते थे, जैसे यम की लपलपाती जीभ। विषैले बाणों से आकाश भर गया था। योद्धा लोग अपनी जोड़ी के रणबांकुरों को ढूंढ रहे थे और नाना प्रकार से [illegible] दिखा रहे थे। जिनके सवार मार डाले गये थे, वे मनमाना घूमने वाले हाथी ऐसे लग रहे थे जैसे प्रलय की आंधी में पहाड़ इधर-उधर उड़ रहे हों। जब वे परस्पर टकराते तो उनके दांतों की चोट से ऐसी आग उठती कि मरे हुए सैनिक जल उठते। घुड़सवार भाले से एक-दूसरे पर चोट करते। रथी धनुष-बाण द्वारा एक-दूसरे का सिर काट डालते। सिर कट जाने पर धड़ भी बहुत देर तक तलवार लिए रणभूमि में नाचते रहते।

इस प्रकार जब देव-दानवों का युद्ध शुरू हो गया

और वे रक्त की नदी के तीर पर ही डूबने लगे तब देवताओं का शत्रु तारक लाल-लाल आंखें करके, युद्ध करने की इच्छा से, इन्द्रादि के सामने आ डटा। वह भयंकर रूप से अट्टहास करता हुआ धुंआधार बाण बरसाने लगा। इन्द्रादि दिक्पालों के बाण वह ऐसे काट देता था, जैसे बहुत-से गरुड़ सांपों के झुण्ड को काट देते हैं। उसके छोड़े बाण सांप की भांति भयंकर बन कर देवताओं के गले में कसकर चिपट गये। उनका दम घुटने लगा और वे कार्तिकेय के पास दौड़े। उनके आंख भर देख लेने से नाग-फांस के फंदे खुल गए। यह देखकर वह दैत्य क्रुद्ध हो उठा और तुरन्त उनके सामने पहुंचा। बोला, "मेरे बाणों से बिधकर क्यों प्राण देना चाहते हो? जाओ, यहां से भागकर माता-पिता की गोद में छिप जाओ।" यह सुनकर कार्तिकेय के नेत्र जल उठे। वह बोले, "घमण्ड में न रहना दैत्य-राज! मैं तुम्हारे बल की थाह लेने आया हूं। उठाओ अपने अस्त्र।"

फिर तो भयंकर बाण-युद्ध आरम्भ हो गया पर तारक शंकर-पुत्र कार्तिकेय को न जीत सका। उनका प्रबल प्रताप देखकर उसने तुरन्त माया-युद्ध आरम्भ कर दिया और अन्धड चलानेवाला 'वायव्य' नाम का

बाण धनुष पर चढ़ाया। उस अन्धड़ ने देव-सेना को त्रस्त कर दिया। हा ाकार मच गया पर कुमार कार्तिकेय ने देखते-देखते ऐसा जादू किया कि जैसे अन्धड़ आया ही नहीं था। इसी प्रकार उन्होंने तारक के अग्नि-बाण को व णास्त्र चलाकर व्यर्थ कर दिया। अब तो उस क्रोधी तारक ने रथ छोड़ दिया और तलवार लेकर कुमार पर टूट पड़ा। तब उन्होंने हँस-कर प्रलय की अग्नि-जैसी भयंकर अपनी शक्ति उसपर फेंकी। ठीक वह तारक के हृदय में जाकर लगी। उस ा चोट से वह तुरन्त मरकर गिर पड़ा। यह देखकर देवता हर्ष से उछल पड़े। उनके मुख खिल उठे और आनन्द में झूमते हुए वे कुमार की भुजाओं के बल की बड़ाई करने लगे। आ ाश से कल्पतरु के फूल बरस े लगे।

इस प्रकार विजयी कार्तिकेय ने जब, तीनों लोकों के हृदय में कांटे के समान खटकनेवाले, तारक को मार डाला तो इन्द्र फिर स्वर्ग के स्वामी हो गये। देवता उन्हें प्रणाम करने लगे।

●

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

२२

भवभूति-कृत

महावीर-चरित

●

श्री सुशील

द्वारा

कथा-सार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

सम्पादित

●

१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५५
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। फलत: अबतक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

संस्कृत के नाटककारों में भवभूति अपने मौलिक चिन्तन के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने तीन रसों को लेकर तीन नाटक लिखे। 'उत्तर-राम-चरित' में करुण रस, 'मालती-माधव' में शृंगार रस और प्रस्तुत नाटक 'महावीर-चरित' में वीर रस की प्रधानता है। उनकी कला हर दृष्टि से ऊँची है। मधुर छंद गूंथने में उनके समान कोई नहीं है। 'ध्वनि' के लिए वह प्रसिद्ध हैं ही।

'महावीर-चरित' की कथा रामायण पर आधारित है, परन्तु कुछ परिवर्तन भी उन्होंने किये हैं। जैसे राम वन-गमन की कथा मिथिला में ही घटित हो गई है। रावण ने बालि को राम को मारने के लिए भेजा, यह बात भी नई है। सारे षड्यंत्र का सूत्रधार माल्यवान को बनाकर तो भवभूति ने एकदम नई कल्पना कर डाली है। ऐसे ही और भी कई [illegible] हैं, पर कथा की मूल धारा में कोई अन्तर नहीं पड़ा है।

विद्वानों का अनुमान है कि भवभूति आठवीं शताब्दी में हुए थे। उनका जन्म दक्षिण में विदर्भ देश के पद्मपुर गांव में हुआ था। उनके दादा का नाम भट्ट गोपाल, पिता का नीलकंठ और माता का जा[illegible]कर्णी था। वह कश्यप-गोत्रीय यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के पंडित थे। उन्हें राजाश्रय शायद नहीं मिला, क्योंकि उनके नाटकों का अभिनय राजसभा में न होकर [illegible]जायनी में म[illegible]काल की यात्रा के समय इकट्ठी हुई जनता के सामने हुआ था। ऐसा जान पड़ता है कि इस काल के विद्वान भी उनका आदर नहीं करते थे। यह विद्रोही जो थे! कुछ भी हो, आज वह एक महान नाटकका[illegible] माने जाते हैं। आगे भी माने जाते रहेंगे।

—सम्पा[illegible]

महावीर-चरित

: १ :

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का नाम किसने नहीं सुना। वह कौशकी नदी के तट पर कुटी बनाकर रहते थे और उनके रहने का स्थान 'सिद्धाश्रम' के नाम से प्रसिद्ध था। उन दिनों राक्षस-लोग ऋषियों के यज्ञ में बड़ा विघ्न डाला करते थे। इसलिए जब विश्वामित्र ने यज्ञ करने का विचार किया तो वह महाराज दशरथ के पास अयोध्या गये और यज्ञ की रक्षा के लिए उनसे राम और लक्ष्मण को मांग लाये। राजा जनक को भी इस यज्ञ में आने का निमन्त्रण भेजा गया था। इसीलिए उन्होंने अपने भाई कुशध्वज को सीता और उर्मिला के साथ यज्ञ में भाग लेने के लिए भेजा। यह समाचार पाकर विश्वामित्र उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़े। राम और लक्ष्मण भी उनके साथ थे। यथोचित स्वागत के बाद विश्वामित्र ने अतिथियों का परस्पर परिचय कराया। राम-लक्ष्मण को देखकर राजा कुशध्वज बड़े प्रभावित हुए। सीता और उर्मिला

ने भी उन्हें देखा और उस प्रथम मिलन के अवसर पर ही वे सब एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो उठे।

जब वे आश्रम की ओर लौट रहे थे तब एक ओर से उन्हें 'जय जगतपति राम की जय' ये शब्द सुनाई पड़े। सब चकित होकर उस ओर देखने लगे। वह एक नारी का स्वर था। विश्वामित्र ने बताया कि वह गौतम ऋषि की धर्मपत्नी अहल्या है। किसी कारण ऋषि ने क्रुद्ध होकर उनको पत्थर हो जाने का शाप दे दिया था। आज राम के चरणों का स्पर्श पाकर अहल्या ने फिर से अपना पहला रूप पा लिया है। राम की ऐसी महिमा देखकर सीता बहुत प्रभावित हुईं। कुशध्वज ने तो मन-ही-मन इस बात का निश्चय कर लिया कि यदि राजा जनक शिव के धनुष की प्रतिज्ञा को बीच में न डालें तो मैं सीता का विवाह इन्हीं तेजस्वी राम से करूंगा।

इसी समय रावण के साथ सीता के विवाह का प्रस्ताव लेकर एक राक्षस वहां आया। इस प्रस्ताव से सबको बड़ा दुःख हुआ, क्रोध भी आया; पर वे यह निश्चय नहीं कर सके कि उसे क्या उत्तर दिया जाय। वे इसी दुविधा में थे कि एक ओर से कोलाहल उठता सुनाई पड़ा। ऋषि लोग भय के कारण चिल्ला रहे थे।

पता लगाने पर मालूम हुआ कि ताड़का नाम की एक भयंकर राक्षसी उनको परेशान कर रही है। विश्वामित्र ने तुरन्त राम को आदेश दिया कि वह उस राक्षसी को मार डाले। राम बोले, "गुरुदेव, यह तो स्त्री है। मैं इसे कैसे मार सकता हूं ?"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "यह राक्षसी कई ब्राह्मणों को मार चुकी है। ऐसी स्त्री को मारने में कोई डर नहीं है।"

तब राम ने एक ही बाण से ताड़का को मार गिराया। उनकी ऐसी वीरता देखकर सब लोगों को और भी आश्चर्य हुआ। महर्षि विश्वामित्र ने उसी समय अनेक दिव्य अस्त्र राम को दिये। राम बोले, "भगवन्, मेरी प्रार्थना है कि ये दिव्यास्त्र लक्ष्मण सहित मेरे अधीन हों।" विश्वामित्र ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। अब राम ने उन अस्त्रों से प्रकट होने की प्रार्थना की और फिर विसर्जन कर दिया। यह अद्भुत घटना देखकर राजा कुशध्वज मौन न रह सके। उन्होंने प्रस्ताव किया कि सीता का विवाह राम से होना चाहिए। विश्वामित्र भी यही चाहते थे। उन्होंने राजा से कहा कि वह शिव-धनुष का स्मरण करें। स्मरण करते ही शिव-धनुष वहां प्रकट

हो गया और राम ने अनाय स उसे तोड़ डाला। देर तक उसके टूटने की ध्वनि वातावरण में गूंजती रही।

राक्षस ने जब यह देखा तो वह डर गया, लेकिन राजा कुशध्वज के हर्ष का कोई ठिकाना न था। वह जो चाहते थे वह उनको मिल गया था। उन्होंने सीता का विवाह राम से स्थिर कर दिया। यही नहीं, उन्होंने उर्मिला का विवाह लक्ष्मण के साथ और अपनी दोनों कन्याओं माण्डवी और श्रुतकीर्ति का विवाह भी भरत और शत्रुघ्न के साथ निश्चित कर दिया।

राक्षस और भी जल उठा। उसने रावण की बहुत प्रशंसा की, परन्तु किसी ने उसकी बात न सुनी। इसी समय सुबाहू और मारीच नाम के राक्षसों ने यज्ञ में विघ्न डालने के लिए वहां प्रवेश किया। राक्षस इनको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ; लेकिन उसकी वह प्रसन्नता देर तक न टिक सकी। राम ने उन दोनों को तुरन्त पराजित कर दिया। सुबाहू वहीं मारा गया और मारीच भाग निकला।

: २ :

राक्षस से यह सब समाचार पाकर रावण का नाना माल्यवान बहुत दुःखी हुआ और वह इस बारे

में शूर्पणखा से सलाह करने लगा। यह मंत्रणा चल ही रही थी कि उन्हें महर्षि परशुराम का पत्र मिला। उन्होंने लिखा था, "विराध और कवन्ध आदि राक्षस दण्डकवन में रहनेवाले ऋषियों को सताते हैं। उन्हें रोका जाय। ऐसा करोगे तो मैं तुम्हारा मित्र रहूंगा, नहीं तो तुम जानते ही हो।..." यह पत्र पाकर माल्यवान ने सोचा कि क्यों न परशुराम को राम के विरुद्ध भड़काया जाय ? परशुराम शिव के बड़े भक्त हैं और राम ने शिव के धनुष को तोड़ा है।

उसने ऐसा ही किया। तबतक राम जनकपुरी पहुंच गये थे। समाचार पाकर परशुराम भी वहीं पहुंचे। उन्हें देखकर सब लोगों को बड़ी चिन्ता हुई, परन्तु राम तनिक भी नहीं घबराए। वह शान्त-मन परशुराम के पास पहुंचे। उन्हें देखकर परशुराम सहसा पुलकित हो उठे। राम की विनय ने उनका मन मोह लिया। लेकिन उन्होंने शिव का धनुष तोड़ा था और शिवद्रोही को वह कैसे क्षमा कर सकते थे ? उन्होंने राम को युद्ध के लिए ललकारा। राजा जनक और ऋषि शतानन्द ने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु उनका क्रोध कम न हुआ। इसी समय कंचुकी ने आकर सूचना दी, "कंकण खोलने की विधि के लिए देवियाँ

कट्ठा होगई हैं। महाराज वर को भेजें।"

राम ने परशुराम की ओर मुड़कर पूछा, "आपकी आज्ञा हो तो जाऊं।" परशुराम बोले, "लोकाचार पूरे करलो, परन्तु वनवासी गांव में देर तक नहीं ठहरते, जल्दी आना।" राम चले गए। जनक और शतानन्द भी परशुराम को लेकर विश्वामित्र के पास पहुंचे। वहांपर महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र ने भी उन्हें बहुत समझाया। उनकी विद्या, तपस्या और कुल-परम्परा की बहुत प्रशंसा की। परशुराम इन बातों से बड़े प्रभावित हुए, लेकिन उन्होंने कहा, "राम ने शिव का धनुष तोड़ा है। मैं उनका वध किए विना नहीं रह सकता। उन्होंने मेरे गुरु का अपमान किया है।"

विश्वामित्र बोले, "आप गुरु की इतनी चिन्ता करते हैं, लेकिन मेरा कुछ भी ध्यान नहीं करते! हम भी तो सब परस्पर सम्बन्धी हैं!"

परशुराम दुविधा में तो पड़ गए, लेकिन वह राम को क्षमा करने की बात स्वीकार न कर सके। इसपर शतानन्द को क्रोध आ गया और वह परशुराम की निन्दा करने लगे। राजा जनक ने भी बहुत खरी-खोटी सुनाई और युद्ध के लिए तैयार हो गये। अब तो परशुराम का पारा एकदम चढ़ गया और वह फरसा उठा कर

उन्हें मारने दौड़े। लेकिन म ारज दशरथ उनके बीच में आ गए और उन्हें समझाने लगे। परशुराम हँस पड़े। बोले, "बहुत दिनों के बाद मुझे समझा ेवाला मिला है। लेकिन मुझे समझानेवाले तो केवल शिव ही हैं। जो क्षत्रियों का संहार करनेवाला है, उसे क्षत्रिय कैसे समझ। सकता है ?"

तभी राम फिर वहां आ गये। अब तो युद्ध अनिवार्य हो उठा। परशुराम राम को ललकारते हुए बोले, "राजकुमार, आओ परशुराम से युद्ध करो। उसको जीतो, लेकिन तुम उसे जीत न सकोगे। वह रेणुका का पुत्र तुम्हारा काल है। संसार में वन की तरह जिस धनुष का शब्द फैला हुआ है, वह मेरा भयानक धनुष अग्नि की तरह प्रलय उपस्थित कर देगा।"

लेकिन सबके देखते-देखते राम ने परशुराम को भी पराजित कर दिया।

: ३ :

पराजित होकर परशुराम तप करने के लिए चले गये। यह समाचार जब माल्यवान के पास पहुंचा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगे कि अब राम को किस प्रकार दबाया जाय। वह इसी प्रकार उन्नति करते रहे तो हमपर संकट आ सकता है।

एकाएक उन्हें एक युक्ति सूझी। उन्होंने शूर्पणखा से कहा, "राजा दशरथ ने भरत की माता रानी कैकेयी को एक बार दो वर देने का वचन दिया था। उसी कैकेयी की मन्थरा नाम की एक दासी है। महाराज दशरथ का कुशल समाचार लेने के लिए वह अयोध्या से जनकपुर जा रही है। तुम उसके शरीर में प्रवेश कर जाओ।" इसके बाद उन्होंने शूर्पणखा के कान में कुछ कहा। उसे सुनकर शूर्पणखा बोली, "इससे क्या लाभ होगा ?"

माल्यवान ने कहा, "राम यदि इधर आये तो हम उन्हें बहुत कष्ट देंगे। राजनीति से उन्हें ठगना भी आसान होगा। रावण सीता से विवाह करना चाहता है। हम सीता को बड़ी आसानी से चुरा लायेंगे। ऐसा होने पर राम या तो मर जायंगे या संधि के लिए प्रार्थना करेंगे। यदि उन्होंने हमपर आक्रमण भी कर दिया तो हो सकता है, रावण का मित्र वालि उन्हें मार डाले ?"

शूर्पणखा ने पूछा, "यदि बालि राम को न मार सके तो क्या होगा ?"

माल्यवान ने कहा, "तब तो राक्षस-कुल का सर्वनाश हो जायगा। केवल विभीषण बचेगा। वह राम

का भक्त है। धर्मात्मा राम उसीको राज दे देंगे।"

माल्यवान ने शूर्पणखा को यह भी बताया कि रावण के कुल में फूट पड़ी हुई है। खर-दूषण पैसे के लिए रावण का साथ दे रहे हैं। कुम्भकर्ण का होना, न होना बराबर है, क्योंकि वह सदा सोया रहता है और उजड्ड भी है। यह सब बताते हुए वह बहुत दु:खी हो उठा। लेकिन उसे कोई और उपाय न सूझा और उसने शूर्पणखा को अपना काम करने के लिए भेज दिया।

इधर परशुराम ने जाते समय राम को अपना धनुष दिया था और दण्डक-वन के तपस्वियों की रक्षा करने का भार सौंपा था। वह वहां जाने की बात सोच ही रहे थे कि मन्थरा के वेष में शूर्पणखा ने वहां प्रवेश किया। उन्हें देखते ही वह उनपर मोहित हो गई। राम ने मझली माता कैकेयी का कुशल समाचार पूछा। मन्थरा ने राजा दशरथ के नाम एक पत्र उन्हें दिया। उसमें राजा को दोनों वरों की याद दिलाई गई थी। लिखा था—एक वर से भरत राजा हों, दूसरे वर से राम, सीता और लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष के लिए वन में जाकर रहें। यह पढ़कर लक्ष्मण बड़े क्रुद्ध हुए। लेकिन राम के समझाने पर वह वन जाने के लिए

तैयार हो गए ।

इधर जब इस प्रकार बातें हो रही थीं तो उधर मामा को साथ लेकर भरत महाराज दशरथ के पास जा रहे थे। वहां पहुंचकर मामा युधाजित ने प्रजा की इच्छा के अनुमार राम को राजतिलक करने की सलाह दी। दशरथ तो पहले ही यह चाहते थे । उनकी इच्छा थी कि राजतिलक के साथ-साथ परशुराम को जीतने का उत्सव भी मनाया जाय। तभी राम और लक्ष्मण उनके पास पहुंचे और उन्होंने माता कैकेयी की ओर से वे दो वर राजा से मांगे । उन वरों की बात जानकर महाराज दशरथ और जनक दोनों मूर्च्छित हो गए। भरत तो इतने दुःखी हुए कि वह अपने मामा की निंदा करने लगे । उन बेचारों को इस कुचक्र का कुछ पता नहीं था । वह राम को वन जाने से रोकने लगे, परंतु राम अपनी बात पर अटल रहे और सीता के आ जाने पर वह वन की ओर चल पड़े। युधाजित और भरत भी उनके पीछे-पीछे चले । युधाजित ने कहा, "राम, देखो, तुम्हारे चरणों का सेवक भरत तुम्हारे पीछे आ रहा है ।"

राम बोले, "इनको तो पिता ने प्रजा की रक्षा करने की आज्ञा दी है ।"

भरत ने कहा, "यह काम लक्ष्मण या शत्रुघ्न कर लेंगे।"

राम बोले, "मैं या तुम या और कोई भी पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते।"

यह सुनकर भरत मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब उन्हें होश आया तो उन्होंने मामा से कहा, "आप राम से मेरे लिए खड़ाऊं मांग लें। जटा बढ़ाकर इस नन्दीग्राम में, जबतक राम नहीं लौटेंगे, तबतक मैं इस पृथ्वी का पालन करता रहूंगा।"

राम ने खड़ाऊं भरत को दे दीं और फिर एक-दूसरे से गले मिलकर वे लोग अपने-अपने रास्तों पर चल पड़े।

राम, सीता और लक्ष्मण को वन जाते हुए देखकर प्रजा बहुत दुखी हुई। सब लोग हाहाकार करने लगे और उनके पीछे दौड़ने लगे। राम ने मामा युधाजित से उन्हें समझाने की प्रार्थना की। युधाजित ने प्रजा को सब प्रकार से समझाया और राम की प्रशंसा करते हुए कहा, "हर युग में लोग इस पवित्र कहानी को गायेंगे और हर युग में राम के पावन चरित का प्रचार होगा।"

राम वहां से निषादराज गुह की बस्ती की

ओर चल पड़े। उनकी इच्छा थी कि पहले गुह को तंग करनेवाले राक्षसों को समाप्त किया जाय और फिर चित्रकूट पर्वत पर पहुंचा जाय। वहां से वह उस वन में जाना चाहते थे, जहां जटायु रहते थे।

४

जटायु और संपाति दोनों भाई-भाई थे। जटायु जन-स्थान में रहते थे और संपाति मलय पर्वत पर। उनकी महाराज दशरथ से बड़ी मित्रता थी और उनको इन सारी घटनाओं का पता लग गया था। वह यह भी सुन चुके थे कि महाराज दशरथ की मृत्यु हो चुकी है। इन्हीं दिनों एक वार जटायु अपने बड़े भाई से मिलने के लिए मलय पर्वत पर गये तो संपाति ने पूछा, "राम का पितृ शोक कम हुआ या नहीं?"

जटायु बोले, "राम स्वभाव से बड़े गंभीर हैं। विद्या और तप में भी उनकी गति है। इसलिए अब उनका शोक कम हो गया है। अगस्त्य मुनि के कहने से वे इस समय पंचवटी में रहते हैं। एक बार अपनी इच्छा पूरी करने के लिए शूर्पणखा उनके पास गई थी।"

यह सुनकर संपाति को बड़ा आश्चर्य हुआ। कहने लगा, "वह बहुत बेशर्म है। राम ने उसके साथ कैसा बर्ताव किया?"

जटायु बोले, "लक्ष्मण ने उसकी नाक, कान और ओठ काट डाले। इस पर खरदूषण ने राक्षसों की एक बड़ी सेना लेकर राम पर आक्रमण किया, लेकिन राम ने सबको मौत के घाट उतार दिया।"

संपाति ने कहा, "इसका मतलब तो यह है कि राम और रावण में भयंकर शत्रुता ठन गई है। भाई, तुम इन लोगों का ध्यान रखना। रावण बदला लेने के लिए जरूर आयगा।"

इसी प्रकार बहुत-सी बातें कर के जटायु वापस लौट चले। आकाश में उड़ते हुए उन्होंने देखा कि राम एक मायावी मृग के पीछे भागे चले जा रहे हैं। एक ओर लक्ष्मण उनकी खोज करते फिर रहे हैं और दूसरी ओर उनकी कुटी में एक तपस्वी प्रवेश कर रहा है। वह तुरन्त समझ गये कि यह [illegible]ात्मा रावण है। दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा कि रावण सीता को रथ में बैठा कर कहीं ले जा रहा है। जटायु भय से कांप उठे, लेकिन वह डरनेवाले नहीं थे। उन्होंने रावण को ललकारा और सीता की रक्षा के लिए सब प्रयत्न किये, लेकिन रावण ने उनके पर काटकर उनको बेकार कर दिया और सीता को लेकर भाग गया।

उधर जब राम और लक्ष्मण अपनी कुटी में लौटे

तो सीता वहां नहीं थीं। केवल घायल जटायु तड़प रहे थे। उन्होंने राम को सीता चुराने की सब कहानी सुनाई। इसके बाद वह स्वर्ग सिधार गए। राम यह सब कथा सुनकर बड़े दुखी हुए। उन्होंने जटायु का विधिवत् दाहकर्म किया और फिर सीता को खोजने के लिए आगे बढ़े। उनका मन बहुत ही दुखी था। रह-रह कर सीता की याद उनको सता रही थी। वह अपने को बहुत ही कोस रहे थे कि उनके कारण ही पिता के परम मित्र जटायु का इस प्रकार अन्त हुआ। लक्ष्मण उनको सान्त्वना दे रहे थे और वे दोनों बराबर आगे बढ़ रहे थे।

मार्ग में उनको एक भयानक स्थान दिखाई पड़ा। उस वन में कबन्ध नामक राक्षस रहता था। इतने में ही उन्होंने सुना, कोई नारी करुण कण्ठ से पुकार रही है, "बचाओ, बचाओ, कबन्ध राक्षस मुझे लिये जा रहा है।"

यह सुनकर राम ने तुरन्त लक्ष्मण को वहां जाने की आज्ञा दी। कुछ क्षण बाद लक्ष्मण एक शबरी को लेकर राम के पास लौट आये। इस शबरी ने राम को बताया कि रावण का भाई विभीषण अपने बन्धुओं को छोड़कर ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के पास आ

गया है। उसने आपके लिए यह पत्र दिया है। विभीषण ने उस पत्र में लिखा था :

"जिनका भाग्य बिगड़ गया है, वैसे लोगों के लिए दो ही शरण हैं : या तो वह धर्म का आचरण करे या आपकी शरण में आये। आप धर्म के रक्षक हैं।"

यह पत्र पढ़कर राम ने प्रतिज्ञा की कि वह विभीषण को अपना प्रिय मित्र मानेंगे और उसको लंका का राजा बनायंगे।

अब तो शबरी बहुत प्रसन्न हुई और उसने बताया कि जब रावण सीता को लिये जा रहा था तब उनका दुपट्टा गिर पड़ा था। उसपर 'अनुसूया' नाम लिखा हुआ है और उसे सुग्रीव ने उठा लिया है। यह सुनकर राम का जी भर आया और वह सुग्रीव, विभीषण और हनुमान आदि से मिलने के लिए शबरी के साथ चल पड़े।

मार्ग में उन्हें एक दिव्य पुरुष मिला। उसने बताया, "मैं लक्ष्मी का पुत्र दनु हूं। एक शाप के कारण कबन्ध राक्षस हो गया था। आपने मुझे मुक्त कर दिया है। मैं आपका उपकार मानता हूं और आपको यह सूचना देता हूं कि माल्यवान ने आपको मारने के लिए बालि को नियत किया है।"

यह कहकर वह दिव्य पुरुष चला गया और राम शबरी से बातें करते हुए पम्पापु की ओर बढ़ने लगे। कुछ दूर जाने पर उन्होंने वालि को देखा। उसने सोने के आभूषण पहने हुए थे। उसका लाल शरीर ऐसे शोभा दे रहा था, जैसे बिजली से महा मेघ शोभायमान होते हैं। अपने अंग सिकोड़ कर जब वह उछलता था तो मेरु के पर्वत के समान मालूम होता था। दूत के द्वारा उसे राम और विभीषण की मित्रता का पता लग गया था। जब उसने राम को देखा तो वह बहुत प्रभावित हुआ। उसके हृदय में पवित्र भावना पैदा होने लगी; लेकिन वह युद्ध करने की प्रतिज्ञा कर चुका था, इसलिए उसने राम को युद्ध के लिए ललकार। पर राम ने एक ही बाण में उसको बुरी तरह घायल कर दिया।

इसी समय विभीषण और सुग्रीव आदि सब वहां आ पहुंचे। सारी कथा जानकर उन्हें बड़ा दुख हुआ। सुग्रीव की आंखें भर आईं। वालि ने उसे ढाढ़स बंधाया और उसे तथा अंगद को राम के हाथों में सौंप दिया। यही नहीं, उसने उन दोनों में परस्पर मित्रता भी करवा दी। अन्त में वह बोला, "मेरे प्राण निकल रहे हैं। मुझे झरने के किनारे ले चलो।"

यह सुनकर वानर [illegible] करने लगे। बालि ने कहा, "बानरो, सुग्रीव और अंगद का प्रभुत्व आप पर निर्भर है। मेरे स्नेह के कारण इनकी मदद करते रहना। राम और रावण के युद्ध में मेरे स्नेह की परीक्षा होगी। आपके पराक्रम के बारे में कुछ कहनेवाला मैं कौन होता हूं।"

: ५ :

बालि की मृत्यु का समाचार पाकर [illegible]न बहुत दुखी हुआ। उसने समझ लिया कि भाग्य उनके विरुद्ध है। जब राम ने बालि जैसे योद्धा को मार डाला तो और कोई भी काम उनके लिए कठिन नहीं है। सुना है, सीता की खोज करने के लिए उन्होंने अपने चतुर दूत चारों ओर भेज दिए हैं। इतने में ही एक भयंकर शब्द उन्हें सुनाई पड़ा। कोई आर्त स्वर में पुकार रहा था, "लंका जल रही है और वीर लोग छिप-छिप कर इधर-उधर भाग रहे हैं।" इस सूचना के साथ-ही-साथ त्रिजटा व्याकुल-मन रोती-पीटती वहां आई।

उसने बताया, "एक वानर ने सारी नगरी जला डाली है। उसने राक्षसों को खींच-खींच कर उस आग में जला दिया है। उसने अक्षयकुमार को भी मार डाला है। उसने सीता से भी भेंट की है।" यह सुनकर

माल्यवान समझ गया कि हो न हो, यह हनुमान ही है। जब एक बानर ऐसा काम कर सकता है तो सुग्रीव के पास तो ऐसे करोड़ों बानर हैं। लेकिन उसने त्रिजटा को ढाढस वंधाया। बोला, "रावण धर्मात्मा है; लेकिन दैव उसके प्रतिकूल जान पड़ता है।"

और वह त्रिजटा के साथ रावण के पास चला। उस समय रावण अपने महल की अटारी पर बैठा हुग्रा सीता को देख रहा था और मंदोदरी उसे समझा रही थी। उसने रावण को बताया कि राम ने समुद्र को पराजित कर लिया है और बानरों ने उसपर एक पुल बांध दिया है।

लेकिन रावण ने इन बातों पर विश्वास नहीं किया। वह हँसकर बोला, "महारानी, तुम्हें धोखा हुआ है। समुद्र पर पुल कौन बांध सकता है? सारे द्वीपों पर जितने पर्वत हैं, उन सबसे समुद्र का एक कोना भी नहीं भरेगा।"

लेकिन इसी समय चारों ओर कोलाहल मचने लगा। सेनापति प्रहस्त ने आकर सूचना दी कि लंका को चारों ओर से घेर लिया गया है।

रावण को अब भी विश्वास नहीं आया। लेकिन तभी रामदूत अंगद ने वहां प्रवेश किया। उसने कहा,

"राम की आज्ञा से मैं तुमसे निव न करने आया हूं कि सीता को छोड़ दो। सब भाइयों को लेकर राम-लक्ष्मण की शरण में चलो, नहीं तो वे तुम्हें मार डालेंगे।"

रावण क्रोध से भर उठा। उसने अंगद के अंग-भंग करने की आज्ञा दी। प्रहस्त ने उन्हें समझाया कि दूत पर क्रोध नहीं किया जा सकता, लेकिन रावण ने कुछ न सुना।

यह सब द कर अंगद वहां से चला गया। उसके चले जाने के बाद रावण ने लंका के फाटक खोल देने की आज्ञा दी। भयंकर युद्ध शुरू हो गया।

उस युद्ध को देखने के लिए इन्द्र और चित्ररथ आदि देवता और गन्धर्व वहां आ पहुंचे। इन्द्र ने अपना युद्ध-रथ राम के पास भेज दिया, क्योंकि रावण रथ पर बैठा हुआ था। देखते-देखते युद्ध की भयंकरता बढ़ गई। वीर लोग हताहत होने लगे। रण-भूमि उनसे भर उठी। रावण अपने पुत्रों और भाइयों से घिरा हुआ था। उसके बाईं ओर मेघनाद था और दाईं ओर कुम्भकर्ण। दूसरे बन्धु-बान्धव उसके पीछे थे। लेकिन राम पर इन बातों का कोई प्रभाव न था। वह निडर होकर बड़ी तेजी से बाण चला रहे थे। सुग्रीव उनके आगे था, अंगद पीछे। उनके दाएं-बाएं जामवन्त और

विभीषण थे। हनुमान लक्ष्मण के साथ थे और वे मेघनाद से युद्ध कर रहे थे। तभी रावण ने देखा कि उसके कई पुत्र मारे गए हैं। वह मेघनाद के पास पहुंचा, लेकिन शीघ्र ही उसे युद्ध के मैदान से भाग जाना पड़ा। उधर कुम्भकर्ण राम के बाणों से घायल हो गया। यह देखकर उसके पुत्र कुम्भ ने राम पर आक्रमण किया, परन्तु सुग्रीव ने उसे तुरन्त मार डाला और उसके बाद कुम्भकर्ण की नाक काट डाली।

रावण फिर युद्ध-भूमि में आ पहुंचा। इसी समय लक्ष्मण ने मेघनाद पर एक अद्भुत अस्त्र फेंका। उसे मेघनाद ने काट डाला। लेकिन रावण ने जो अस्त्र लक्ष्मण पर फेंका उसे काटने का वह अवसर न पा सके और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यह समाचार सुनकर राम बहुत व्याकुल हुए। लेकिन वह उस समय कुम्भकर्ण से युद्ध कर रहे थे। शीघ्र ही उसे मारकर वह लक्ष्मण को देखने गए। कुछ क्षण बाद हनुमान भी नाना प्रकार की औषधियोंवाले द्रोण पर्वत को लेकर वहां आगए। उसकी गन्ध से लक्ष्मण को होश आगया।

युद्ध अभी चल रहा था। राक्षसों में केवल रावण और मेघनाद बच रहे थे। सो राम रावण

से और लक्ष्मण मेघनाद से भयंकर युद्ध करने लगे। उनके सिंहनाद से आकाश गूंज उठा। अन्त में राम और लक्ष्मण ने रावण और मेघनाद को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। बस क्षण भर में उनके सिर कट कर पृथ्वी पर लोटने लगे।

रावण को मरा हुआ देखकर चारों ओर आनन्द छा गया। आकाश से फूल बरसने लगे।

: ६ :

रावण की मृत्यु के बाद लंकापुरी की देवी लंका अपने स्वामी के लिए बहुत बुरी तरह से विलाप करने लगी। उसका शोक इसलिए और भी बढ़ गया था कि रावण के कुल में उसे कोई भी जीवित नहीं दिखाई दे रहा था। इसी समय अलका देवी वहां आईं। वह उसकी बड़ी बहन थीं। उन्होंने उसे बहुत धीरज बंधाया। लेकिन वह धीरज कैसे रख सकती थी। कहने लगी, "केवल स्त्रियां ही तो बच रही हैं। कहने को विभीषण भी बचा हुआ है, लेकिन वह शत्रु के साथ मिला हुआ है।"

अलका बोली, "बहन, ऐसा न कहो। वह रावण के शत्रु थे, हमारे नहीं। फिर त्रिलोकी के भला करने वाले राम हमारा भी भला करनेवाले हैं।"

लंका बोली, "अगर ऐसा है तो उन्होंने रावण को क्यों मारा ?"

अलका ने कहा, "रावण सीता को चुरा लाया था इसालए ।"

और फिर उन्होंने बताया कि रावण के सौतेले भाई कुबेर के कहने पर वह राक्षसों को समझाने के लिए आई है। विभीषण का राज्याभिषेक भी वह देखेगी और पुष्पक विमान को राम को सौंप देगी।

कुबेर भी राम-भक्त हैं, यह जानकर लंका को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसी समय उन्होंने सुना, कोई कह रहा था, "तीनों लोकों के रहने वालो, सावधान! सब देवता लोग सती सीता का अभिनन्दन कर रहे हैं। आग में बैठकर उन्होंने अपने सतीत्व का परिचय दे दिया है। हे रघुनन्दन! संसार की मर्यादा की रक्षा करनेवाली सीता का अब आदर करो।"

राम ने सीता को स्वीकार कर लिया और उसके बाद विभीषण का राज्याभिषेक भी कर दिया। यह सब समाचार सुनकर अलका और लंका राम के दर्शन करने के लिए चल पड़ीं। जब वे वहां पहुंचीं तो विभीषण राम से निवेदन कर रहा था, "आपकी आज्ञानुसार मैंने सब बन्दियों को मुक्त कर दिया है। सदा इच्छा

के अनुसा चलने वाला यह पुष्पक विमान मैं आपको सौंपता हूं। इसे स्वीकार कीजिए।"

पुष्पक विम न को देखकर राम बड़े प्रसन्न हुए। तभी सुग्रीव ने उन्हें बताया कि जव हनुमान द्रोण पर्वत को लेकर आ रहे थे तब वह भरत से मिले थे। नुमान ने उन्हें तबतक के सब समाचार बता दिये थे। आगे के समाचार न जानकर इस समय वह बहुत दुखी हो रहे होंगे, इसलिए हमें हनुमान को शीघ्र ही भरत के पास भेजना चा ए।

नुमान को भरत के पास भेजकर राम भी सीता और लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण आदि सबको लेकर विमान पर सवार हो गए। चौदह वर्ष समाप्त होने में अब एक ही दिन बचा था। ये लोग अयोध्या की ओर चल पड़े। राम मार्ग में सीता को वे सब स्थान दिखाते आ रहे थे, जहां-जहां प्रवास-काल में वे रह चुके थे। समुद्र का पुल, दण्डक वन, विन्ध्याचल और ऋषियों के अनेक आश्रम उन्होंने देखे। राम ने सीता को वह सारी कथा सुनाई, जो रावण के सीता को हर ले जाने के बाद उनके साथ घटी थी। उस कथा को नकर सीता को बार-बार रोमांच हो आता था। जिस समय वे दण्डक वन में पहुंचे तो राक्षसों के युद्ध की क ानी।

सुनकर सीता फिर गम्भीर हो उठीं । राम ने उन्हें सान्त्वना दी और वे आगे बढ़ गये । उसी समय आकाश-मार्ग में उन्होंने किन्नरों की जोड़ी को देखा । वे कुबेर का संदेश लेकर आये थे ।

उन्होंने कहा, "जबतक शेषनाग पर यह पृथ्वी है और जबतक तारे आकाश में हैं तबतक आपका निर्मल यश लोग गाया करेंगे ।"

ये सब बातें करते हुए वे लोग विश्वामित्र के आश्रम में पहुंच गए । यहां आकर राम ने विमान से उतरना चाहा, परन्तु विश्वामित्र मन-ही-मन इस बात को समझ गये और उन्होंने आज्ञा दी, "सीधे चले जाओ । वशिष्ठ आदि तुम्हारी राह देख रहे हैं । मैं भी दो घण्टे में वहीं आता हूं ।" विमान फिर चलने लगा । उधर हनुमान से राम के आने की सूचना पाकर भरत सेना सहित उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़े । जिस समय विमान अयोध्या में उतरा, ऐसा लगता था मानो चारों ओर से आनन्द का समुद्र उमड़ आया हो ।

चिरकाल से बिछड़े भाई ललककर एक दूसरे से मिले । उनका मिलना देखकर सब पुलकित हो उठे । राम ने चरणों में पड़े हुए भरत को अंक में भर लिया ।

लक्ष्मण ने भरत के चरण छुए और फिर उनके गले से चिपक गये। शत्रुघ्न दोनों भाइयों के चरणों में प्रणाम करने लगे। फिर सब लोग सीता से मिले। राम ने अपने मित्रों का सबसे परिचय कराया। भरत ने निवेदन किया, "राजतिलक की तैयारी हो चुकी है। महाराज वशिष्ठ आपकी राह देख रहे हैं। चलिए।"

सब लोग राजमहलों की ओर चल पड़े। वहां वशिष्ठ सहित अरुन्धती, कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी बड़ी उत्सुकता से उनकी राह देख रही थीं। उन सबके वहां पहुंचते ही एक बार फिर प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। कैकेयी का मन शंकाओं से भरा हुआ था, लेकिन अरुन्धती ने उसी समय उन्हें वह रहस्य बताया, जिसके अनुसार माल्यवान के कहने पर शूर्पणखा ने मन्थरा का रूप धारण किया था। यह सुनकर सब स्त्रियां चकित हो उठीं और उनका हर्ष दुगुना हो गया।

विश्वामित्र भी वहां आ पहुंचे और सब लोगों ने बड़े उत्साह के साथ राम का राज-तिलक किया। आकाश में दुंदुभी बजने लगी, मंगल-गान होने लगा, फूल बरसने लगे। वशिष्ठ और विश्वामित्र ने आशीर्वाद दिया, "हे गुणों के समूह रामचन्द्र, अपने भाइयों के साथ तुम उस राज्य-भार को उठाओ, जिसको चिर-

काल से इक्ष्वाकु-वंश के राजा उठाते आए हैं।"

विश्वामित्र बोले, "बेटा राम, अब तुम सुग्रीव और विभीषण को विदा कर दो। इस पुष्पक विमान को भी कुबेर को लौटा दो। आवश्यकता होने पर फिर मंगा लेंगे।"

राम ने उनकी आज्ञा का पालन किया।

विश्वामित्र फिर बोले, "बेटा राम, तुमने अपने पिता के आदेश का पालन किया, धर्म की रक्षा की, राक्षसों का नाश करके त्रिलोकी को अभय प्रदान किया, देवताओं के मनोरथ पूरे किए, प्रवास से आकर राज्य पाया। अब और क्या इच्छा है?"

राम बोले, "इससे अधिक मैं और क्या चाह सकता हूं। लेकिन यदि आप प्रसन्न हैं तो, राजा लोग आलस्य को छोड़कर प्रजा की रक्षा करें, मेघ समय पर बरसें, राष्ट्र में खूब अन्न पैदा हो, कवि लोग प्रसाद-गुण से युक्त कविता में रुचि लें और विद्वान लोग दूसरों की रचनाओं को पढ़कर आनन्द प्राप्त करें।"

विश्वामित्र बोले, "ऐसा ही हो।"

●

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

१ आत्मकथा (गांधीजी) ५)
२ प्रार्थना प्रवचन २ भाग ,, ५॥)
३ गीता-माता ,, ४)
४ पंद्रह अगस्त के बाद १॥),२)
५ धर्मनीति ,, १॥),२)
६ द० अफीका का सत्याग्रह ३॥)
७ मेरे समकालीन ,, ५)
८ आत्म-संयम ,, ३)
९ गीता-बोध ,, ॥)
१० अनासक्तियोग ,, १॥)
११ ग्राम-सेवा ,, ।=)
१२ मंगल-प्रभात ,, ।=)
१३ सर्वोदय ,, ।=)
१४ नीति-धर्म ,, ।=)
१५ आश्रमवासियों से ,, ।=)
१६ हमारी मांग ,, १)
१७ सत्यवीर की कथा ,, ।)
१८ संक्षिप्त आत्मकथा ,, १॥)
१९ हिंद-स्वराज्य ,, ॥।)
२० अनीति की राह पर ,, १)
२१ बापू की सीख ,, ॥)
२२ गांधी-शिक्षा (तीन भाग) १=)
२३ आज का विचार ,, ।=)
२४ ब्रह्मचर्य (दो भाग),, १॥।)
२५ गांधीजी ने कहा था ३ भाग ॥।)
२६ शान्ति-यात्रा (विनोबा) १॥)
२७ विनोबा-विचार : २ भाग १)
२८ गीता-प्रवचन ,, १), १॥।)
२९ जीवन और शिक्षण ,, २)
३० स्थितप्रज्ञ-दर्शन ,, १)
३१ ईशावास्य वृत्ति ,, ॥।)
३२ ईशावास्योपनिषद ,, =)
३३ सर्वोदय-विचार ,, १=)
३४ स्वराज्य-शास्त्र ,, ॥।)
३५ गांधीजी को श्रद्धांजलि ,, ।=)
३६ भू-दान-यज्ञ (विनोबा) ।)
३७ राजघाट की संनिधि में ।=)
३८ विचार-पोथी ,, १)
३९ सर्वोदय का घोषणा-पत्र ,, ।)
४० जमाने की मांग ,, =)
४१ मेरी कहानी (नेहरू) ८)
४२ हिन्दुस्तान की समस्याएं २॥)
४३ लड़खड़ाती दुनिया ,, २)
४४ राष्ट्रपिता ,, २)
४५ राजनीति से दूर ,, २)
४६ हमारी समस्यायें ,, ॥।)
४७ विश्व-इतिहास की झलक २१)
४८ सं० हिन्दुस्तान की कहानी ५)
४९ नया भारत ,, ।)
५० आजादी के आठ साल ,, ।)
५१ गांधीजी की देन (राजेन्द्र०) १॥)
५२ गांधी-मार्ग ,, =)
५३ महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
५४ कुब्जा सुन्दरी ,, २)
५५ शिशु-पालन ,, ॥)
५६ मैं भूल नहीं सकता ,, २॥)
५७ कारावास-कहानी (सु.नै.) १०)
५८ गांधी की कहानी (फिशर) ४)
५९ भारत-विभाजन की कहानी ४)
६० बापू के चरणों में २॥)
६१ इंग्लैंड में गांधीजी २)
६२ बा, बापू और भाई ॥)
६३ गांधी-विचार-दोहन १॥)
६४ सर्वोदय-तत्त्व-दर्शन ७)
६५ सत्याग्रह-मीमांसा ३॥)
६६ बुद्धवाणी (वियोगी हरि) १)
६७ सन्त सुधासार ,, ११)
६८ प्रार्थना ,, १)
६९ प्रार्थना ,, ॥)
७० अयोध्याकाण्ड ,, १)

७१	भागवत-धर्म (ह. उ.)	६॥)
७२	श्रेयार्थी · मनालालजी ,,	६॥)
७३	[illegible] की ओर ,,	४)
७४	बापू के आश्रम में ,,	१)
७५	मनन ,,	१॥)
७६	मानवता के झरने (माव.)	१॥)
७७	बापू (घ० बिड़ला)	२)
७८	रूप और स्वरूप ,,	॥=)
७९	डायरी के पन्ने ,,	१)
८०	ध्रुवोपाख्यान ,,	।)
८१	स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१)
८२	मेरी मुक्ति की कहानी ,,	१॥)
८३	प्रेम में भगवान ,,	२)
८४	जीवन-साधना ,,	१।)
८५	कलवार की करतूत ,,	।)
८६	सामाजिक कुरीतियां ,,	२)
८७	हमारे जमाने की गुलामी ,,	॥।)
८८	बुराई कैसे मिटे ? ,,	१)
८९	बालकों का विवेक ,,	॥।)
९०	हम करें क्या ? ,,	३॥)
९१	धर्म और सदाचार ,,	१।)
९२	अंधेरे में उजाला ,,	१॥)
९३	ईसा की सिखावन ,,	१)
९४	कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल)	२)
९५	लोक-जीवन (कालेलकर)	३॥)
९६	साहित्य और जीवन	२)
९७	कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१॥)
९८	हिमालय की गोद में ,,	२)
९९	कहावतों की कहानियां ,,	२)
१००	राजनीति प्रवेशिका	१)
१०१	जीवन-संदेश (ख. जिब्रान)	१।)
१०२	अशोक के फूल	१)
१०३	जीवन-प्रभात	५)
१०४	कां० का इतिहास ३ भाग	३०)
१०५	पंचदशी	१॥)
१०६	सप्तदशी	२)
१०७	रीढ़ की हड्डी	१॥)
१०८	अमिट रेखायें	३)
१०९	एक आदर्श महिला	१)
११०	राष्ट्रीय गीत	।)
१११	तामिल-वेद (तिरुवल्लुवर)	१॥)
११२	आत्म-रहस्य	३)
११३	थेरी-गाथाएं	१॥)
११४	बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
११५	जातक-कथा (आनंद कौ.)	२॥)
११६	हमारे गांव की कहानी	१॥)
११७	खादी द्वारा ग्राम-विकास	॥।)
११८	साग-भाजी की खेती	३)
११९	ग्राम-सुधार	१।)
१२०	पशुओं का इलाज (प.प्र.)	॥)
१२१	चारा-दाना ,,	।)
१२२	रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)	।=)
१२३	रोटी का सवाल (क्रोपा०)	६)
१२४	नवयुवकों से दो बातें ,,	।=)
१२५	पुरुषार्थ (डा० भगवानदास)	६)
१२६	काश्मीर पर हमला	२)
१२७	शिष्टाचार	॥)
१२८	तट के बंधन	२)
१२९	भारतीय संस्कृति	३॥)
१३०	आधुनिक भारत	५)
१३१	फलों की खेती	२॥)
१३२	मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार	॥।)
१३३	म[illegible] जागरण का इतिहास	३)
१३४	गांधीजी की छत्रछाया में	२॥)
१३५	भागवत-कथा	३॥)
१३६	जय अमरनाथ	१॥)
१३७	हमारी लोककथाएं	१॥)
१३८	संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२२ पुस्तकें)	८।)
१३९	समाज-विकास-माला (४२ पुस्तकें)	१५॥।)

संस्कृत-साहित्य-सौरभ
२४

भास-कृत

पंचरात्र

●

श्री सुशील
द्वारा
कथासार

●

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

●

१९५६
सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५६
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। इस विचार को इस माला द्वारा मूर्त रूप दिया जा रहा है।

इस पुस्तकमाला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का संपादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। कई आगे निकलेंगी। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'पंचरात्र' [illegible] भास की रचना है। भास बड़े प्रसिद्ध कवि हुए हैं। कालिदास, बाणभट्ट और राजशेखर आदि स्वनामधन्य कवियों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की है। अभिनव गुप्त, वामन और भामह आदि आचार्यों ने भी उनके रूपकों का उल्लेख किया है, लेकिन खेद है कि इतनी प्रसिद्धि होने पर भी इनके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि यह कब और कहां हुए। अधिकांश विद्वान मानते हैं कि यह तीसरी सदी में हुए थे।

इनके लिखे तेरह रूपकों का पता चला है। पर बहुत-से विद्वानों को इस बारे में शंका है कि वे सब भास के लिखे हुए हैं। जो हो, जबतक कुछ निश्चित नहीं हो जाता, हम 'पंचरात्र' को भासकृत ही मानेंगे। भास ने अधिकांश रूपक रामायण और महाभारत के आधार पर लिखे हैं। पंचरात्र की कथा का आधार महाभारत है, परन्तु दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। जुए में हारकर पाण्डव जब वन चले गये और बारह वर्ष बीत जाने पर तेरहवें वर्ष छुपकर रहे तभी की यह कथा है। महाभारत में दुर्योधन बिना युद्ध के राज्य लौटाने को तैयार नहीं होता। महाभारत के बाद ही पाण्डव राज्य ले पाये। पर इस नाटक में भास ने दुर्योधन को उदार दिखाया है। वह यज्ञ करता है और दक्षिणा में गुरु द्रोण जब यह मांगते हैं कि पांडवों को आधा राज्य लौटा दो, तो वह इस शर्त पर तैयार हो जाता है कि यदि पांडव पांच रात के भीतर प्रकट हो जायंगे तो मैं राज्य लौटा दूंगा। वे प्रकट हो जाते हैं और मामा शकुनि के विरोध करने पर भी दुर्योधन राज्य लौटा देता है।

कथा से मतभेद हो सकता है, पर नाटकीय तंत्र की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है। भास छोटे-छोटे वाक्य लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु भाव इनमें भरे रहते हैं। इनकी भाषा सरल, स्वाभाविक और भावपूर्ण है। यह मानव हृदय के सच्चे पारखी हैं। प्रकृति-चित्रण में भी यह किसी से पीछे नहीं हैं। जयदेव ने इन्हें कविता कामिनी का हास माना है।

—सम्पादक

पंच ात्र

: १ :

कौरव और पाण्डवों में बचपन से ही द्वेषभाव चला आता था। कारण कुछ भी हो, परन्तु कौरव यह नहीं सह सकते थे कि पाण्डवों की उन्नति हो। श्रीकृष्ण की सहायता से जब पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ पूरा कर लिया और सारे भारत में उनका यश फैल गया तब कौरवों को बहुत दुःख हुआ। लेकिन वे जानते थे कि युधिष्ठिर धर्मात्मा होते हुए भी जुए का खिलाड़ी है। धर्मराज की इस दुर्बलता का लाभ उठाकर उन्होंने पाण्डवों को जुआ खेलने का न्योता दिया। वे आये और मामा शकुनि के कपट-जाल में फँस गये। अपना सब राजपाट हार गये। यही नहीं, तेरह वर्ष तक उन्होंने वन में रहना भी स्वीकार किया। तेरहवें वर्ष उन्हें इस प्रकार छिप कर रहना था कि कोई उनका पता न लगा सके।

बारह वर्ष वन में रहने के बाद पाण्डव वेष बदल-कर राजा विराट के यहां रहने लगे। युधिष्ठिर ने ब्राह्मण का रूप धारण किया और अपना नाम भगवान

रखा। अर्जुन नर्तकी के रूप में राजकुमारी उत्तरा को नाच-गाना सिखाने लगे। उनका नाम बृहन्नला हुआ। भीम रसोइया बना। महारानी द्रौपदी दासी के वेष में विराट की रानी की सेवा करने लगी। नकुल-सहदेव भी घोड़े और गउओं की देख-भाल करने लगे।

जिस समय वे इस प्रकार अज्ञात वेष में अपने दिन बिता रहे थे उसी समय दुर्योधन हस्तिनापुर में एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहा था। उस यज्ञ में उसने ब्राह्मणों को दिल खोलकर दान-दक्षिणा दी। उसने इतना दान दिया कि राजधानी में कोई याचक नहीं रहा। यज्ञ में इतनी सामग्री डाली गई कि उसकी गंध से सारा वायुमण्डल भर उठा, यहां तक कि आग ने भी उस सामग्री के सामने हार मान ली। इन सब बातों का यह परिणाम हुआ कि चारों ओर दुर्योधन का यश छा गया। उसका यह धर्म-कार्य देखकर सब लोग प्रशंसा करने लगे। इससे राजा दुर्योधन की बुद्धि ही विमल नहीं हुई, बल्कि वह काम भी अच्छे करने लगा। उससे पितामह भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य भी बहुत प्रसन्न रहने लगे। दोनों को इस बात की बहुत खुशी हुई कि उनका पौत्र और शिष्य

कुचाल छोड़कर अच्छे रास्ते पर चलने लगा है।

एक दिन जब राजा दुर्योधन अपने मामा और मित्रों के साथ इस यज्ञ के सम्बन्ध में बात कर रहा था और यज्ञ करने से क्या लाभ होते हैं, यह समझा रहा था तो उसी समय पितामह भीष्म और गुरु द्रोण भी वहां पधारे। दुर्योधन ने उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम किया और जिस प्रकार चाहिए था उसी प्रकार उनका स्वागत-सत्कार भी किया। उन्होंने दुर्योधन को सूचना दी कि देश के बहुत-से राजा यज्ञ के लिए भेंट लाये हैं। उनमें दक्षिण से महाराज भूरिश्रवा, द्वारिका से महाराज श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि उनका भानजा और अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु तथा मगध-नरेश जरासंध का पुत्र सहदेव प्रमुख हैं। यह समाचार पाकर दुर्योधन को बहुत प्रसन्नता हुई। लेकिन इन नामों में मत्स्य देश के राजा विराट का नाम नहीं था। "वह क्यों नहीं आया?"—यह प्रश्न उठाने पर शकुनि ने सूचना दी कि इस बात का पता लगाने के लिए दूत भेजा गया है और वह अब आने ही वाला होगा।

यज्ञ के इस प्रकार सकुशल समाप्त हो जाने पर महाराज दुर्योधन ने गुरु द्रोण से प्रार्थना की कि वह

भी अब अपनी दक्षिणा लेने की कृपा करें। वह युद्ध-विद्या और धर्म-कार्य दोनों ही के आचार्य थे। गुरु द्रोण बोले, "मैं तो तुम्हारे आसरे में ही रहता हूं। मैं क्या दक्षिणा लूंगा।"

यह बात सुनकर दुर्योधन को बहुत दुःख हुआ। वह समझ गया कि आचार्य उससे अप्रसन्न हैं। उसने वेदना-भरे स्वर में कहा, "गुरुदेव, आपने मुझे युद्ध-विद्या की शिक्षा दी है। आप मुझे बहुत प्यार करते हैं। मैं अपनी प्यारी गदा हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करता हूं कि आप जो मांगेंगे, वही दूंगा। आपकी जो भी इच्छा होगी, पूरी करूंगा।"

आचार्य की आंखों में आंसू आ गये। दुर्योधन को और भी दुःख हुआ। वह नाना प्रकार से आचार्य से प्रार्थना करने लगा। उसने एक सेवक को जल लाने की आज्ञा दी जिससे आचार्य अपना मुंह धो सकें।

आचार्य बोले, "जल की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा मुंह तो तुम्हारे कामों से ही धुलेगा।"

दुर्योधन आवेश में भर उठा, "गुरुजी, धिक्कार है मुझे। मैं आपके दुख का कारण बन रहा हूं। क्या आपका मुझपर विश्वास नहीं है ? क्या आप [illegible]

हूं कि मैं वही पुराना कर्मा दुर्योधन हूं ? मैं जो कहता हूं वही करूंगा। लीजिए, मैं यह जल हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करता हूं कि आपकी जो भी इच्छा होगी, उसे पूरा करूंगा।"

गद्गद् होकर आचार्य बोले, "पुत्र मैं प्रसन्न हूं। मुझे तुमपर विश्वास है। मेरा भ्रम जाता रहा। मेरी इच्छा जानना चाहते हो तो सुनो, मेरा मन पाण्डवों के लिए बहुत व्याकुल है। बारह वर्ष बीत चुके हैं। न जाने वे अब कहां होंगे। उन्हें बुला लो और उनका राज्य उन्हें सौंप दो। इसे चाहे तुम दक्षिणा समझो, चाहे भीख समझो। मेरी यह इच्छा है। तुमने प्रतिज्ञा की है, उस प्रतिज्ञा को पूरा करो।"

यह सुनना था कि मामा शकुनि क्रोध में भर उठा। बोला, "यह धोखा है, विश्वासघात है। आपने दुर्योधन की प्रतिज्ञा का अनुचित लाभ उठाया है।"

द्रोणाचार्य भी क्रोध में भर उठे, "हां, यह धोखा है! पाण्डवों को उनका राज्य वापस करने की मांग करना अन्याय है! मांगने पर दे देना अधर्म है! धर्म और उचित तो तभी होगा जब वे आकर बल-पूर्वक तुमसे यह राज्य छीन लेंगे।"

बल-प्रयोग की बात सुनकर सबको क्रोध आ

गया। परन्तु पितामह भीष्म अब भी शान्त बने हुए थे। उन्होंने दुर्योधन को समझाया, "बेटा, तुमने प्रतिज्ञा की है। हिमालय के समान तुमको उस पर अडिग रहना चाहिए। तुम शकुनि की बातों पर क्यों ध्यान देते हो ? यह अपना होकर भी अपना नहीं है। यह तुम्हें सर्वनाश की ओर ले जा रहा है। आज पाण्डव द्रौपदी के साथ वनों में भटकते फिर रहे हैं। वह सब इसी दुष्ट शकुनि के कुत्सित परामर्श के कारण तो है। यह नहीं होता तो क्या वे तुम्हारे शत्रु होते ? तुम उनसे इस प्रकार वैर रखते ? वे तुम्हारे भाई हैं। इस समय निराश्रित हैं। तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उन्हें आश्रय दो।"

दुर्योधन बोला, "दादा, आप ठीक कहते हैं, परन्तु आचार्य ने जो अभी बल-प्रयोग की बात कही, वह मैं नहीं सह सकता। क्या उनमें इतनी शक्ति है कि वे मुझसे राज्य छीन लें ? उस दिन उनका वह बल कहां था जिस दिन भरी सभा में द्रौपदी का अपमान हुआ था ?"

आचार्य और भी भभक उठे, "यह प्रश्न मुझसे क्यों पूछते हो ? पूछो उस जुआरी युधिष्ठिर से, जिसने भीमसेन को रोक दिया था, नहीं तो उसकी

गदा उसी दिन तुम्हारा नाश कर देती।"

पितामह ने यह दृश्य देखा तो वह बड़े चिन्तित हुए। उन्हें आशा हुई थी कि गुरु-दक्षिणा के बहाने दुर्योधन पाण्डवों को राज्य दे देगा। बिगड़ी हुई बात बन जायगी। लेकिन यह तो फिर अग्नि भभक उठी। उन्होंने पहले गुरु द्रोण को और फिर दुर्योधन को समझा-बुझाकर शान्त करने की चेष्टा की। कर्ण ने भी गुरु द्रोण के क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न किया। वह बोले, "आचार्य आप क्रोध न कीजिए। दुर्योधन तो क्रोधी है ही। वह अच्छे आदमी की बड़ाई ही नहीं सुनना चाहता। इसे जरा शान्ति से समझाइए।"

गुरु द्रोण शान्त हो गये। दुर्योधन भी स्थिति को समझ गया। आचार्य ने कहा, "दुर्योधन, तुम समझते हो कि मैं तुम्हें ठग रहा हूं। लेकिन यदि इसी ठगी से कौरव-कुल का झगड़ा समाप्त होता है तो इसमें बुराई क्या है?"

दुर्योधन इस तर्क को अस्वीकार न कर सका। उसने कहा, "मैं उनका राज्य लौटाने को तैयार हूं; लेकिन शर्त्त यह है कि मामा शकुनि सम्मत हो जायं। मैं अपने मित्र अंगराज कर्ण से भी परामर्श लेना

चाहता हूं ।"

गुरु द्रोण को बड़ा दुःख हुआ । लेकिन दुर्योधन कर्ण और शकुनि को अकेले में ले जाकर सलाह करने लगा । दुर्योधन ने कहा, "मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूं । अब तो राज्य लौटा देना ही ठीक होगा ।"

शकुनि बोला, "यदि यह बात है तो मुझसे क्या पूछते हो ?"

कर्ण ने कहा, "राज्य देने न देने के बारे में मैं कुछ नहीं जानता, आपकी इच्छा है । मैं तो यह चाहता हूं कि आप सब भाई मिल जायं । लेकिन यदि युद्ध हुआ तो मैं आपका साथी हूं ।"

इस प्रकार बहुत देर तक विचार होता रहा और वे ऐसा रास्ता ढूंढ़ने का प्रयत्न करते रहे, जिससे उनकी कोई विशेष हानि भी न हो और प्रतिज्ञा भी पूरी हो जाय । सहसा कपटी शकुनि के मस्तिष्क में एक बात आ गई । उसने दुर्योधन से कहा, "गुरुदेव से कहो कि मैं पाण्डवों को राज्य लौटाने को तैयार हूं, लेकिन एक शर्त है कि पाण्डव पांच रात के भीतर प्रकट हो जायं ।"

जब यह शर्त्त आचार्य ने सुनी तो वह बोले, "यह तो न देने की बात हुई । मैंने तो उन्हें बारह वर्ष से नहीं देखा । अब पांच रात में कैसे ढूंढ़ लाऊंगा ।"

पितामह ने फिर समझाया, "बेटा, वीर लोग ऐसा छल-कपट नहीं किया करते। तुमने प्रतिज्ञा की है। तुम्हें पाण्डवों का राज्य लौटा देना चाहिए। भले ही वे सौ वर्षों में मिलें।"

परन्तु दुर्योधन झुकनेवाला नहीं था। आचार्य बहुत दुखी हो उठे। संयोग से इसी समय विराटनगर को भेजा हुआ दूत वापस आ गया। उसने सूचना दी, "विराट-राज यज्ञ में न आ सके, इसके लिए क्षमा चाहते हैं। वह एक बड़े संकट में फंस गये हैं। उनके साले और सेनापति महाबली कीचक को उसके सौ भाइयों के साथ किसीने रात को छिप कर मार डाला है। उनके शरीर पर शस्त्रों के घावों का कोई निशान नहीं है। किसीने गला घोट कर ही उनकी जान निकाली है।"

यह समाचार सुनकर पितामह भीष्म की आँखें चमक उठीं। वह समझ गये कि यह काम किसका है। उन्होंने संकेत से आचार्य को समझाया कि अब चिन्ता का कोई कारण नहीं है। उनको दुर्योधन की शर्त्त स्वीकार कर लेनी चाहिए। आचार्य भी समझ गए। उन्होंने शर्त्त स्वीकार कर ली। दुर्योधन ने तीन बार यह प्रतिज्ञा दोहराई "यदि पाण्डव पाँच रात के भीतर-

भीतर प्रकट हो जायंगे तो मैं उनका राज्य उन्हें लौटा दूंगा ।"

दुर्योधन के यह प्रतिज्ञा कर लेने के बाद पितामह भीष्म ने विराटनगर जाने का भी एक उपाय ढूंढ़ निकाला। उन्होंने दुर्योधन को सलाह दी कि उनकी विराट से पुरानी शत्रुता है। इस यज्ञ में न आकर उसने और भी बुरा किया है। हमें चाहिए कि उससे इस अपमान का बदला लें और उसपर आक्रमण कर के उसकी गउएं छीन लायं। दुर्योधन तुरन्त तैयार हो गया। विराटनगर पर चढ़ाई करने के लिए उसने तुरन्त आदेश दे दिया। फिर क्या था, सब वीरों ने अपने-अपने शस्त्र संभाले। पितामह ने अपना धनुष निकाला। शकुनि ने अपना हाथी मांगा। गुरु द्रोण ने आज्ञा दी कि उनका रथ तुरन्त लाया जाय। कर्ण भी पीछे रहनेवाला नहीं था।

द्रोण ने यह सब देखकर दुर्योधन की बड़ी प्रशंसा की और कहा, "तुम निश्चय ही अपनी प्रतिज्ञा का पालन करोगे। तुम गुरुजनों का आदर करते हो।" फिर मामा शकुनि से बोले, "इस युद्ध का संचालन तुमको करना चाहिए। तुम्हारा हाथी सबसे आगे रहेगा।"

: २ :

विराटनगर में ग्वाले महाराज की मंगल-कामना के लिए एक उत्सव मना रहे थे। चारों ओर आनन्द छा रहा था। पशुओं को खूब सजाया गया था। उनके गले में तरह-तरह की रंगबिरंगी मालाएं पड़ी थीं। लेकिन इस राग-रंग के बीच कभी-कभी 'कांव-कांव' की आवाज भी सुनाई दे जाती थी। अमंगल का यह शब्द सुनकर बड़े-बूढ़े घबरा तो उठते थे, लेकिन नाचने-गाने का कार्य पहले की तरह चल रहा था। तभी सहसा एक ओर से उन्हें धूल उड़ती हुई दिखाई दी। युद्ध के बाजों का शब्द पास आने लगा और उसीके साथ तीरों की बौछार भी होने लगी। देखते-देखते अनेक घुड़सवारों ने उनकी गउओं को लूटना शुरू कर दिया। यह कौरवों का आक्रमण था। ग्वाले भाग कर महाराज विराट को समाचार देने पहुंचे।

राजा विराट ने जब यह समाचार सुना तो उन्हें क्रोध आ गया। वह जानते थे कि जिन कौरवों ने अपने भाइयों के साथ बुरा बर्ताव किया है, वे कुछ भी कर सकते हैं। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। सोचने लगे—मैं पाण्डवों का पक्षपाती हूं। मैं दुर्योधन के यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुआ, इसी कारण ये लोग मेरे गोधन को चुराने आये

हैं। कुछ भी हो, वे इस अपमान को नहीं सह सकते थे। उन्होंने तुरन्त अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। पर जाने से पहले उन्होंने कौरवों की शक्ति का पता लगा लेना आवश्यक समझा और इसलिए उन्होंने भगवान ब्राह्मण को बुला भेजा। राजा यह तो नहीं जानते थे कि यह स्वयं महाराज युधिष्ठिर हैं, लेकिन यह अवश्य जानते थे कि यह ब्राह्मण हस्तिनापुर में पाण्डवों के साथ रह चुका है।

भगवान ने आकर देखा—सेना युद्ध के लिए तैयार हो गई है। पूछा, "महाराज, आज के दिन युद्ध की यात्रा कैसी ?"

राजा बोले, "मैं किसीसे युद्ध करना नहीं चाहता।" कौरवों ने हमारा गोधन छीन लिया है। मैं उनसे इस अपमान का बदला लेना चाहता हूं।"

ब्राह्मण रूप-धारी युधिष्ठिर को यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। कौरवों की निन्दा उनकी निन्दा भी तो थी। आखिर वे सब एक ही कुल के तो थे। वह इसी प्रकार सोच रहे थे और उन्हें अपनी अवस्था पर दुःख हो रहा था कि रणभूमि सेसमाचार आया—दुर्योधन अकेला नहीं है। आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण और शल्य आदि सब लोग अपने-अपने

रथों पर सवार होकर आये हैं।

पितामह का नाम सुनते ही विराट घबरा उठे और हाथ जोड़ कर सिंहासन पर खड़े हो गये। भगवान ने जब यह देखा तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। लेकिन वह सोचने लगे कि पितामह आखिर आये क्यों हैं? उन जैसा महान पराक्रमी इस छोटी-सी लड़ाई में! कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्हें हमारा पता लग गया हो और वे हमें खोजने आये हों?

विराट डर तो गये थे, लेकिन युद्ध-भूमि में तो उन्हें जाना ही था। पितामह उनके अतिथि थे न। उन्होंने तुरन्त सारथी को रथ लाने की आज्ञा दी, लेकिन सारथी ने बताया कि राजकुमार उत्तर उस रथ को लेकर रणभूमि में चला गया है।

भगवान ने जब यह सुना तो उन्होंने तुरन्त राजकुमार को लौटा लाने को कहा। वह वीर तो हैं परन्तु अभी उनका अनुभव कहां है और कौरव बड़े दुष्ट हैं। विराट ने भी सारथी को दूसरा रथ लाने के लिए कहा और फटकारा कि वह राजकुमार के साथ क्यों नहीं गया। सारथी बोला, "महाराज, मैं कैसे जाता! बृहन्नला उस रथ को हांक कर ले गई है।"

महाराज बड़े चिन्तित हुए। नाचने-गाने वाली

क्या रथ हांकगी? लेकिन भगवान ने कहा, "महाराज, चिन्ता न कीजिए। वह रथ चलाने में बड़ी चतुर है। समझ लीजिए कि शत्रु परास्त हो चुका है।"

इसी समय युद्ध-भूमि से एक और समाचार आया कि राजकुमार उत्तर को शत्रु ने मार्ग में ही रोक दिया था, इसलिए अब उनका रथ श्मशान की ओर चला गया है। भगवान इस बात को समझता था। उनके अस्त्र-शस्त्र तो वहीं रखे थे। उन्होंने विराट को समझाया कि अवश्य ही इसमें कोई बात है, जो बृहन्नला उस रथ को श्मशान में ले गई है। बृहन्नला की प्रशंसा सुनकर विराट को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने चाहा कि भगवान को डांट दें, लेकिन वह जानते थे, कि भगवान कभी झूठ नहीं बोलता। इसलिए वह शान्त रहे।

उधर बड़ा भयंकर युद्ध हो रहा था। उसका स्वर वहां तक सुनाई दे रहा था। इसीलिए वे लोग वहीं बैठे हुए भी उसकी भयंकरता की कल्पना कर सकते थे। कुछ ही देर में एक योद्धा ने आकर समाचार दिया, "महाराज, कुछ देर श्मशान में रहकर राजकुमार उत्तर जब युद्ध-भूमि में पहुंचे तब पासा ही पलट गया। महाराज, राजकुमार ने वह वीरता दिखा।

कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। चारों ओर बाण-ही-बाण दिखाई देने लगे। ऊपर नीचे, रथ, घोड़े सब बाणों से बिंध गये। बाणों ने युद्ध-भूमि को चारों ओर से घेर लिया।"

भगवान-रूपी युधिष्ठिर समझ गये कि ये बाण अर्जुन के तर्कश के बाण हैं। राजा बड़े प्रसन्न हुए और शत्रुओं के [illegible] पूछने लगे। सैनिक ने बताया, "सुना है कि धनुष की टंकार सुनते ही आचार्य द्रोण चकित रह गये। अस्पष्ट स्वर में उन्होंने कुछ कहा और वहाँ से चले गये। जिस समय एक बाण पितामह की ध्वजा पर लगा तो उन्होंने कहा, 'ठीक है।' और वह भी युद्ध-भूमि से चले गए। कर्ण आदि दूसरे वीर घायल होकर भाग गए। लेकिन एक योद्धा है, जो न हटता है, न डरता है। वह है अर्जुन का बेटा अभिमन्यु।"

अभिमन्यु का नाम सुनते ही भगवान-रूपी युधिष्ठिर घबरा उठे। बाप और बेटा एक-दूसरे से युद्ध कर रहे हैं, यह उन्हें अच्छा न लगा। उन्होंने तुरन्त कहा, "महाराज, अभिमन्यु बहुत बड़ा वीर है। बृहन्नला कुछ नहीं कर सकेगी। आप दूसरा सारथी भेजिए।"

विराट कहने लगे, "वाह भगवान, जिस राज-

कुमार उत्तर ने पिताम , आचार्य द्रोण और कर्ण जैसे वीरों को परास्त कर दिया है वह क्या अपनी आयु वाले अभिमन्यु से हार जायगा।" यह कहकर उ ने एक और योद्धा को युद्ध के समाचार लाने को भेजा।

तबतक युद्ध सम प्त हो चुका था। गउएं भी मुक्त हो गई थीं। शत्रु भाग गये थे। राज मार उत्तर अपने सब वीरों को रस्कार बांट रहे थे। लेकिन अर्जुन का मन आज बहुत दुखी था। उसे नारी के वस्त्र पहनकर राजकुमारी को नाच-गाने की शिक्षा देनी पड़ती थी। उसी वेष में उसे युद्ध करना पड़ा। यह तो अच्छा हुआ कि धूल उठने के कारण कोई उसे देख न सका। यदि कोई देख लेता तो क्या होता। इसी प्रकार सोचते-सोचते वह महलों की ओर चले गये।

राज मारा उत्तरा ने अपने भाई को विजय दिला के उपलक्ष में उन्हें बहुत-से गहने और कपड़े इनाम में दिए। म वीरों को परास्त क देने को यह इनाम! इसी समय म राज ने उन्हें दरबा में बुला लिया। वह अनेक बातें सोचते हुए दरबा में पहुंचे। वह सोच रहे थे कि मैं दुःशासन को बांध कर क्यों नहीं लाया और जब उन्होंने गवान के वेष में

धर्मराज युधिष्ठिर को देखा तो उनका मन और भी दुःखी हो उठा। युधिष्ठिर अपने वास्तविक रूप में नहीं थे, लेकिन उनका तेज अब भी कम नहीं था। उन जैसे तेजस्वी की यह दशा! अर्जुन अपने को भूल गये। सबसे पहले उन्होंने भगवान-रूपी युधिष्ठिर को प्रणाम किया और फिर राजा की जय-जयकार की। राजा सोच रहा था कि इस नाचनेवाली ने कितना बड़ा काम किया है। लोग व्यर्थ ही अपने उच्च कुल का मान करते हैं। काम ही से आदमी ऊंचा-नीचा होता है। यह सोचते हुए उन्होंने कहा, "बृहन्नले, मैं युद्ध के विस्तृत समाचार सुनना चाहता हूं।"

बृहन्नला रूप-धारी अर्जुन उत्तर देना ही चाहते थे कि एक और दूत झपटता हुआ आया। वह बहुत प्रसन्न हो रहा था। उसने कहा, "महाराज, राजकुमार अभिमन्यु पकड़ लिये गए।"

अर्जुन और युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन जब उन्हें यह पता लगा कि उसे पकड़नेवाला महाराज का रसोइया है तो वह चिन्तामुक्त हो गये। समझ गये कि भीमसेन प्रेम के कारण ही उसे ले आया है। उसके लिए यह काम असम्भव नहीं।

राजा जानते थे कि अभिमन्यु पाण्डवों का पुत्र

और या...ं का धेवता है, इसलिए उन्होंने बड़े आदर के साथ राजसभा में लाने की आज्ञा दी। सोचा, द्रुपद का धेवता होने से वह मेरा भी तो धेवता है।

बृहन्नला-रूपी अर्जुन अभिमन्यु को लेने चले। अकेले में अपने पुत्र से मिलकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ ही देर में भीमसेन और अभिमन्यु को लेकर वह राजसभा में लौट आये। भीमसेन भी आज बहुत प्रसन्न थे। कैसे वह युद्धभूमि में पहुंचे और शत्रुओं के बीच से अभिमन्यु को रथ से उतार कर ले आये। उस समय अभिमन्यु सोच रहा था कि यह कौन है? यह इतनी आसानी से मुझे कैसे पकड़ लाया? और जब उसने बृहन्नला को देखा तो और भी आश्चर्य हुआ। स्त्रियों जैसा रूप लेकिन तेज इतना, यह क्या बात है? ऐसा लगता है, जैसे शिव ने पार्वती का रूप धर लिया हो।

इसी समय अवसर पाकर अर्जुन ने चुपके से भीमसेन से कहा, "यह तुमने क्या किया? तुमने इसे पकड़ा, इसपर यह कलंक रहेगा। सुभद्रा रो-रो कर जान दे देगी। और कृष्ण! उनके क्रोध की कौन कल्पना कर सकता है?"

भीम ने उत्तर दिया, "सब कुछ जानता हूं।

लेकिन भाई अपने बेटे को शत्रु के पास कैसे रहने देता ? फिर इसे देखकर द्रौपदी कितनी खुश होगी ?"

राजसभा में राजा की आज्ञा से जब बृहन्नला ने अभिमन्यु का नाम लेकर पुकारा तो वह क्रोध में भर उठा, "ये लोग बड़े अशिष्ट हैं। मेरा नाम लेकर पुकारते हैं। नीच लोग भी क्षत्रियों का नाम लेकर पुकारने लगे ! अभिमन्यु का क्रोध उस समय और भी बढ़ गया जब बृहन्नला ने उसकी माँ का समाचार पूछा और उसके मामा कृष्ण को 'देवकी पुत्र केशव' कहकर पुकारा। वह चौंक उठा, "मेरी मां का कुशल समाचार पूछनेवाले तुम कौन होते हो ? तुम मेरे मामा का नाम लेते हो ? तुम तो बिल्कुल मेरे पिता अर्जुन बन गये हो ! ऐसे बोल रहे हो जैसे पूजनीय धर्मराज और आदरणीय भीमसेन हों।"

यह सुनकर भीम और अर्जुन एक-दूसरे को देखकर हंसने लगे। अर्जुन ने कहा, 'वाह राजकुमार, आप धनुर्धारी अर्जुन के बेटे, जनार्दन कृष्ण के भानजे और ऐसे सुन्दर शरीरवाले ! फिर भी पकड़े गए ! वाह बेटा, वाह !"

अभिमन्यु और भी उत्तेजित हो उठा, "अपनी प्रशंसा अपने मुंह से करने की मेरे कुल की रीति नहीं

है। लेकिन फिर भी समझ कर बात करो। युद्ध में आहत होनेवाले वीरों की पीठ में जो बाण लगे हैं, क्या तुमने उनपर किसी और का नाम पढ़ा है ?"

अर्जुन सबकुछ जानते थे, लेकिन फिर भी उन्होंने अभिमन्यु को छेड़ने के लिए कहा, "कुछ भी हो, तुमको एक मामूली-से पैदल सिपाही ने पकड़ा है।"

अभिमन्यु ने तुरन्त कड़ककर उत्तर दिया, "पकड़ा है, लेकिन उस समय मैं निहत्था था। यदि किसीमें साहस है तो मुझे शस्त्र दे और फिर मुझे पकड़े ! क्या समझा है तुमने ? मैं अर्जुन का बेटा हूं।"

राजा विराट और भगवान-रूपी युधिष्ठिर अभिमन्यु की ये बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। बृहन्नला ने उससे विराट को प्रणाम करने को कहा, लेकिन उसने प्रणाम नहीं किया। हां, भगवान को अवश्य प्रणाम किया। महाराज विराट को यह अच्छा नहीं लगा।

उन्होंने पूछा, "इसको किसने पकड़ा है ?"

रसोइया रूपी भीमसेन आगे आगये। अभिमन्यु ने उनसे कहा, "हां, अब महाराज से कहो कि मैंने इसे बिना शस्त्र लिए ही पकड़ा है।"

भीम बोले, "तुम बच्चे हो। युद्ध की बातें क्या जानो! हमारी तो ये विशाल भुजाएं भी अस्त्र-शस्त्र हैं। हम तो इन्हींके सहारे ही युद्ध जीता करते हैं। धनुष का सहारा तो तुम्हारे जैसे निर्बल ही लिया करते हैं!"

यह सुनकर अभिमन्यु सोचने लगा—यह कौन है? इतना बल तो मामा बलराम और चाचा भीमसेन में ही है।

उसने कहा, "आपने मुझे बन्दी बनाया हुआ है। आप जो चाहें कर सकते हैं, लेकिन यह याद रखियेगा कि मेरे पिता अर्जुन और मेरे चाचा भीमसेन शीघ्र ही मुझे छुड़ा लेंगे।"

जिस समय यह वार्तालाप चल रहा था उसी समय राजकुमार उत्तर ने वहां प्रवेश किया। उनको सब बातों का पता चल गया था। उन्होंने अपने पिता को प्रणाम किया और फिर भगवान-रूपधारी युधिष्ठिर को भी प्रणाम किया।

पिता ने पूछा, "पुत्र, तुमने वीरों को उचित पुरस्कार दिया न? उनकी पूजा ठीक प्रकार हुई है न?"

उत्तर ने जवाब दिया, "पिताजी, सब कुछ ठीक हो चुका है; लेकिन अभी जो पूज्यों के पूज्य हैं उन वीरों

का सत्कार होना बाकी है। जि..ंने .मारा रक्षा की है वे इस समय यहीं हैं। आप उन्हें देख सकते हैं। आपको सन्देह हो रहा है। यह बृ.भला नहीं है, महाराज! ये गाण्डावधा.ी म.ावार अर्जुन हैं। मैं भला युद्ध में क्या जीत सकता था!"

अब तो पाण्डव छिपे न रह सके। अर्जुन ने सब कुछ प्रकट कर दिया। म.ाराज विराट को इस बात का पता लगा तो वे हर्ष से भर उठे। वे शीघ्रता से अपने आसन से उठे। सबसे अपने अपराध की क्षमा मांगी और उनका बहुत-बहुत सत्कार किया। पाण्डव एक वर्ष उनके यहां छिप कर रहे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। इस बात से विराट ने अपने को धन्य समझा।

अभिमन्यु को तो मानो स्वर्ग ही मिल गया हो। अपने पिता और सब चाचा.ों को एक-साथ देखक. वह गद्गद् हो उठा। उसने सबके चरण छुए। विराट को भी प्रणाम किया और उन्हांने उसे उठा कर अपने पास बैठा लिया। उसे बहुत-बहुत आशोवा. दिये। यही नहीं, विराट ने अपनी पुत्री उत्तरा का ।ववा. अर्जुन से करने का प्रस्ताव भी रखा। लेकिन उत्तरा तो अर्जुन की शिष्या थी। वह इस प्रस्ताव को

कैसे ‍ ाकार कर सकते थे। मना करना भी सम्भव नहीं था, इसलिए उन्होंने प्रस्ताव किया कि उत्तरा को मैं अपनी पुत्र-वधू के रूप में स्वीका‍ कर सकता हूं।

विराट इसे अस्वीकार न कर सके और उन्होंने तुरन्त ही ‍ववा‍ करने की इच्छा प्रकट की। युधिष्ठिर ने इस समाचार के साथ राज‍ुमार उत्तर को पिताम‍ भीष्म के पास भेजा। उनके कुल में सबसे बड़े वही थे। उनकी आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता था।

: ३ :

कौरवों को जव इस बात का समाचार मिला कि अभिमन्यु पकड़ा गया तो वे घबरा उठे। कृष्ण अब अवश्य बदला लेने आयंगे। पाण्डवों को वनवास देने-वाले कौरवों ने उनके पुत्र अभिमन्यु को अपने सामने पकड़ा जाने दिया, यह कम कलंक की बात नहीं थी। आचार्य द्रोण क्रोध से कांप रहे थे। भीष्म ने पूछा, "कौन है वह जिसने अभिमन्यु को पकड़ा है?" दुर्योधन आवेश में थे, "मैं अभिमन्यु को अवश्य छुड़ाऊंगा। मेरा वैर उसके पिता और च‍ ‍ाओं से है, लेकिन उनके पहले वह मेरा बेटा है। मुझे वह उनसे अधिक प्यारा है। मैं उसे यमराज के घर से भी लाऊंगा।" कर्ण

उनसे पूरी तरह सहमत थे। उनका कहना था कि यदि हम अभिमन्यु को नहीं छुड़ा सकते तो हमें वल्कल वस्त्र पहनकर साधु बन जाना चाहिए। लेकिन धूर्तराज शकुनि अब भी अपनी मूर्खता से बाज नहीं आया। कहने लगा, "अरे, उसको कौन कैद कर सकता है? क्यों चिन्ता करते हो, आप ही छूट जायगा। वह बलराम का भानजा है।"

लेकिन जब सारथी ने यह बतलाया कि अभिमन्यु को पकड़नेवाला एक पैदल सिपाही था और वह रथ में घुसकर राजकुमार अभिमन्यु को हाथों में उठा कर ले गया तो पितामह भीष्म सबकुछ समझ गये। बोले, "अब चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। अभिमन्यु को हाथों में उठाकर ले जाने वाला भीमसेन के अतिरिक्त कोई नहीं है।" आचार्य ने भी पितामह की बात का समर्थन किया।

लेकिन शकुनि! वह तो अब भी उनकी हँसी उड़ाने लगा, "पितामह और आचार्य को इस दुनिया में पाण्डव ही पाण्डव दिखाई देते हैं। उनसे बढ़कर बलवान तो कोई है ही नहीं।"

भीष्म बोले, "मैं पागल नहीं हूं। ऐसा काम दो ही व्यक्ति कर सकते हैं—भीम या बलराम। लेकिन

बलराम के वहां होने का प्रश्न ही नहीं हो सकता। इसलिए वह भीम ही है।"

शकुनि ने व्यंग्य किया, "आप एक छोटे-से लड़के उत्तर से पराजित हो गये, उसे भी आप अर्जुन कह दीजिए।"

इसका उत्तर दिया आचार्य ने, "तो तुम्हें इसमें, कुछ सन्देह है क्या ? वे बाण उत्तर के नहीं, अर्जुन के ही थे। सूरज छिप जाय ऐसी बाण-वर्षा उसके अतिरिक्त कौन कर सकता है ?"

भीष्म बोले, "बात स्पष्ट है। कीचक के मारे जाने का समाचार पाकर ही हम समझ गए थे कि पाण्डव महाराज विराट के पास हैं। तभी तो हमने वह शर्त्त स्वीकार की थी। पांच रात में वह मिल गए हैं। उन्हें उनका राज्य वापस कर दीजिए।"

इसी समय सैनिक पितामह की ध्वजा को काटनेवाला बाण लेकर वहां जा पहुंचा। उसपर अर्जुन का नाम स्पष्ट लिखा था। अब तो शकुनि का मुंह पीला पड़ गया। लेकिन कहा उसने अब भी यही कि अर्जुन किसी और का नाम भी हो सकता है और यह कहकर उसने उस बाण को उपेक्षा से दूर फेंक दिया। वह आचार्य द्रोण के चरणों के पास जा गिरा।

आचार्य बाण उठाकर बोले, "अर्जुन ने पहले पितामह के रथ की ध्वजा काटकर उनको वीरों के योग्य प्रणाम किया। अब वह वाण मेरे चरणों पर गिर कर मुझे प्रणाम कर रहा है।"

अब दुर्योधन पितामह और आचार्य की बात को अस्वीकार न कर सका।

सब हर्ष से भर उठे और इसी समय राजकुमार उत्तर अपनी बहन के विवाह का प्रस्ताव लेकर वहां आ पहुंचा। उसने कहा, "पितामह, धर्मराज ने मुझे भेजा है। उन्होंने उत्तरा को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार कर लिया है। वह आपसे पूछना चाहते हैं कि यह विवाह कैसे और कहां होना चाहिए?"

इस समाचार से उनको और भी प्रसन्नता हुई। लेकिन जो दुष्ट हैं वे तो दुष्ट ही रहते हैं। शकुनि और भी जल उठा। उसने तुनक कर कहा, "यह विवाह यहां नहीं होगा, वहीं कीजिए।"

परन्तु और सब लोगों ने सर्वसम्मति से उत्तर से कहा, "आपके पिता जहां उचित समझें वहीं यह विवाह होना चाहिए।"

उत्तर लौट गया तो द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा, "युधिष्ठिर मिल गया है। पांच रात अभी पूरी

नहीं हुई हैं। अब मुझे मेरी दक्षिणा या भिक्षा जो कुछ भी तुम समझते हो, मुझे दे दो।"

दुर्योधन जानता था कि जो इस संसार में आता है वह मरता भी है। मरने के बाद संसारवाले उनको ही याद करते हैं, जो सत्य का पालन करते हैं। यह सोच-कर उसने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी, "आचार्य, आप उन्हें बुला लीजिए। मैं आधा राज्य देता हूं।"

●

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

२५

हर्ष-कृत

प्रियदर्शिका

●

श्री नारायणदत्त पाण्डे

द्वारा

कथासार

●

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

सम्पादित

●

१ ९ ५ ६

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५६
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान् सामग्री का अत्यंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें और इस कार्य को संस्कृत-प्रेमी श्री हरदयालुसिंह जी से तभी प्रारम्भ भी करा दिया था। उन्होंने कई ग्रंथों का कथासार हमारे लिए कर दिया था। हिन्दी के पाठकों की सेवा में उस तथा कुछ अन्य सामग्री को सम्पादित करके उपस्थित किया जा रहा है।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

संस्कृत-साहित्य में महाराज हर्षवर्द्धन के तीन रूपक ग्रंथ उपलब्ध हैं—रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द। दो की कथा आप पढ़ चुके हैं। तीसरी कथा अब पढ़िये। रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनों के नायक वत्सराज उदयन हैं। एक में रत्नावली के साथ उनका परिणय [illegible] गया है, और दूसरे में प्रियदर्शिका के साथ। ऐसे ही कथानक को लेकर कई शताब्दियों पूर्व [illegible] ने मालविकाग्निमित्र की रचना की थी; पर प्रियदर्शिका में जो स्वाभाविकता और भावों की सरलता है, वह रस श्रृंगार के सभी ग्रंथों में नहीं पायी जाती। रत्नावली की तरह यह भी श्रृंगार-रस-प्रधान नाटक है। इसकी कथा में भी वही कौतूहल है। चरित्र-चित्रण बड़ा सफल है। भाषा, शैली सभी सहज और सरस है।

महाराज हर्ष ने सन् ६०६ से ६४८ तक भारत के एक बड़े भाग पर शासन किया। उन्हें बहुत संघर्ष करना पड़ा; पर फिर भी धर्म और ललित कलाओं से उन्हें बड़ा प्रेम था। उनकी दान-वीरता प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युआन चुआंङ का जैसा स्वागत उन्होंने किया, वह उनकी उदारता को प्रकट करता है। बाणभट्ट ने 'हर्ष-चरित' में इन्हीं महाराज हर्ष का चरित्र लिखा है।

—सम्पादक

प्रियदर्शिका

पूर्व-कथा

प्राचीन काल में अंग देश में दृढ़वर्मा नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी पुत्री का नाम प्रियदर्शिका था। वह बहुत सुन्दर थी। महाराज ने उसका विवाह कौशाम्बी-नरेश वत्सराज उदयन के साथ करने का निश्चय किया था। उनका पड़ोसी कलिंग का राजा भी राजकुमारी के साथ विवाह करना चाहता था। किन्तु राजा पहले ही वत्सराज को वचन दे चुके थे, इसलिए कलिंग-नरेश से उन्होंने नाहीं कर दी। इस पर कलिंग-नरेश क्रोध में भर उठे और उन्होंने अंग देश पर आक्रमण कर उसे रौंद डाला। यही नहीं उन्होंने दृढ़वर्मा को बन्दी भी बना लिया। जिस समय राजधानी में भयंकर युद्ध हो रहा था और चारों ओर भगदड़ मची हुई थी, उस समय राजा का स्वामिभक्त कंचुकी विनयवसु राजकुमारी को वहां से बाहर निकाल लाया। उसे अपने स्वामी के वचन का ध्यान था। इसीलिए वह राजकुमारी को वत्सराज को सौंपने के

विचार से कौशाम्बी की ओर चल पड़ा। रास्ते में विन्ध्यारण्य पड़ता था। वहां का अधिपति विन्ध्यकेतु राजा दृढ़वर्मा का मित्र था। कञ्चुकी ने राजकुमारी को उसको सौंप दिया और स्वयं पास के अगस्त्य-तीर्थ में स्नान करने चला गया। वहां से लौटा तो देखा कि उसके पीछे अचानक किसी शत्रु ने विन्ध्यारण्य पर आक्रमण कर दिया है और विन्ध्यकेतु को मार डाला है। राजकुमारी का भी कहीं पता नहीं है। उसने चारों ओर खोजा, किन्तु कहीं कुछ पता न चला। अब वह वत्सराज के पास क्या मुंह लेकर जाता। इसलिए वहां से लौट पड़ा। उसने यह निश्चय किया कि अब वह कारागार में पड़े हुए अपने स्वामी ही की सेवा में रहेगा।

१

वत्सराज उदयन कौशाम्बी के राजमहल में अपने विदूषक मित्र वसन्तक के साथ बातचीत कर रहे थे। वह उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के यहां बन्दी होकर रहे थे। उस दशा में उन्हें राजकुमारी वासवदत्ता को वीणा सिखाने का काम सौंपा गया था। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगे और एक दिन अपने मंत्रियों की सहायता से वत्सराज राजकुमारी सहित उज्जयिनी

से भाग निकले। अब वासवदत्ता उनकी पटरानी थी और वे एक समृद्ध राज्य के स्वा ।थे।

उनकी बातचीत का विषय यही था। वत्सराज बड़े प्रसन्न थे कि उनका बन्दी होना कितना अच्छा हुआ। विदूषक कह रहा था कि यदि बन्दी होना अच्छा है तो राजा दृढ़वर्मा को बन्दी बनाने के कारण वह कलिंग-नरेश पर क्रोध क्यों कर रहे हैं।

राजा उदयन मुस्कराकर बोले, "मूर्ख! सब कोई वत्सराज नहीं हैं। लेकिन छोड़ो इन बातों को। विजयसन को विन्ध्यारण्य गये बहुत दिन हो गए। कोई सूचना नहीं मिली। रुमण्वान् को बुलाओ।" इसी समय द्वारपालिका ने आकर सूचना दी कि सेनापति वि यसन और मंत्री मण्वान् द्वार पर आये हैं। राजा ने उन्हें तुरन्त बुला भेजा। रुमण्वान् ने आकर बताया कि विजयसेन विन्ध्यकेतु को समुचित दंड देकर लौट आये हैं। इससे राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और युद्ध का हाल पूछने लगे। विजयस ने कहा, "महाराज! मारी सेना ने तीन ही दिन में लम्बा मार्ग पार कर लिया था। हमने ठीक भोर के समय विन्ध्यके पर आ मण किया। वह अपने थोड़े-से अ यायियां सहित बड़ी ीरता से लड़ा। उसके सभी सैनिक मारे गए। उस

सारी देह घावों से भर गई, फिर भी वह भयंकर युद्ध करता रहा। अकेला ही पराक्रम दिखाता रहा। अन्त में अत्यन्त शिथिल हो जाने पर ही वह वीर गति को प्राप्त हुआ।"

महाराज यह सुनकर बड़े लज्जित हुए। उन्होंने विन्ध्यकेतु की वीरता की प्रशंसा की और पूछा, "क्या उसके कोई पुत्र नहीं है?"

विजयसेन बोला, "विन्ध्यकेतु अपने सभी परिजनों सहित मारा गया तो उसकी पत्नियों ने भी उसका अनुसरण किया। वह सारा स्थान जन-शून्य हो गया। केवल विन्ध्यकेतु के घर की एक कुमारी विलाप करती हुई पाई गई। उसे हम साथ ले आये हैं। द्वार पर खड़ी है। महाराज उसके लिए जैसा उचित समझें, आज्ञा करें।"

राजा ने द्वारपालिका को आदेश दिया कि वह स्वयं जाकर उस कुमारी को महारानी वासवदत्ता को सौंप आये और उनसे कह दे कि वह उसे अपनी बहन के समान समझें। उसके लिए उच्च कुल की कुमारी के योग्य नृत्य, संगीत आदि की शिक्षा का प्रबन्ध कर दें, और जब वह सुशिक्षित होकर विवाह के योग्य हो जाय तो सूचित करें।

उसके बाद दोपहर हो जाने पर राजा स्नान के लिए उठ खड़े हुए। जाते-जाते रुमण्वान् से बोले, "कलिंग के दुष्ट राजा को दण्ड देने के लिए विजयसेन को आज ही कलिंग पर हमला करने के लिए भेजना है। इसलिए आप भी भीतर चलिये।"

२

महारानी वासवदत्ता के उपवास का दिन था। स्वस्ति-वाचन के लिए उन्होंने वसन्तक को बुलवा भेजा। ब्राह्मण महारानी से मिष्ठान्न और दक्षिणा पाने की आशा से बहुत प्रसन्न था। मीठी-मीठी कल्पनाएँ करता हुआ वह धारागृह के पास के उद्यान में सरोवर पर स्नान करने के लिए चला जा रहा था। इतने में उसने देखा कि महाराज भी उसी ओर चले आ रहे हैं। वह महाराज के लिए रुक गया।

राजा महारानी वासवदत्ता से मिलने के लिए उधर चले आये थे। वसन्तक को प्रसन्न देखकर उन्होंने उससे कारण पूछा। विदूषक बोला, "राज-प्रासाद में चारों, पाँचों या छहों वेदों के पारंगत सहस्रों विद्वान् ब्राह्मण हैं। लेकिन उनके रहते हुए भी महारानी ने स्वस्ति-वाचन के लिए मुझे ही बुलाया है।"

राजा ने हँसकर कहा, "आपका महाब्राह्मणत्व तो आपके द्वारा बतलाए गए वेदों की संख्या से ही स्पष्ट हो रहा है।"

इसके बाद दोनों आगे बढ़े। बकुल, जूही, गुड़हल आदि अनेक प्रकार के फूलों के खिलने से उद्यान की शोभा अपूर्व हो रही थी। लता-वृक्षों से गिरे हुए फूलों से शिलातल ढके हुए थे। कमलों की सुगन्ध से महकता हुआ पवन चल रहा था। कहीं-कहीं तमाल वृक्षों की सघनता के कारण सूर्य का प्रकाश भी रुक रहा था। बिखरे हुए शेफाली फूलों के वृत्तों से भूमि ऐसी लगती थी जैसे मूंगे के टुकड़ों से ढक दी गई हो। फूले हुए सप्तपर्णों के कारण हाथियों के मद की-सी गन्ध चारों ओर फैल रही थी। कमलों के पराग में सने हुए और मकरन्द पीकर मदमस्त भौंरे मधुर गुंजार कर रहे थे।

जिस समय राजा और वसन्तक उद्यान की शोभा का निरीक्षण करते हुए चले जा रहे थे, उसी समय दूसरी ओर से महारानी की परिचारिका इन्दीवरिका और आरण्यिका भी सरोवर की ओर आ रही थीं। महारानी को महर्षि अगस्त्य को अर्घ्य चढ़ाना था। इसके लिए इन्दीवरिका को शेफाली के

पुष्पों की माला तैयार करनी थी और आरण्यिका को सरोवर में से कमल के फूल लाने थे। उसे सरोवर का पता न था। इसी कारण इन्दीवरिका उसके साथ जा रही थी। आरण्यिका थकी हुई और खिन्न-सी मालूम होती थी। सरोवर पर पहुँचकर वे दोनों उसमें उतर गईं।

तभी राजा और वसन्तक भी वहां आ पहुँचे। भरा हुआ वह स्वच्छ जलाशय बहुत ही मनोहर दिखाई दे रहा था। उसके पास पहुँचने पर सहसा वसन्तक की दृष्टि आरण्यिका पर पड़ी। कोमल किसलय के समान उसके सुन्दर सुकुमार हाथ थे। उसकी वेणी में गुंथे हुए फूल के चारों ओर भौंरे मंडरा रहे थे। इससे वह साक्षात् वन-देवी सी मालूम होती थी। उसने महाराज से पूछा, "यह कौन है।" राजा ने भी इससे पहले उसे कभी नहीं देखा था। उसकी सुन्दरता को देखकर वह चकित रह गए और उसके सम्बन्ध में अपने मन में अनेक-तर्क वितर्क करने लगे। इतने में वसन्तक को महारानी की परिचारिका इन्दीवरिका दीख पड़ी। उसे देखकर वे दोनों पेड़ की आड़ में हो गये।

इन्दीवरिका ने कमल का एक पत्ता तोड़ा और

आरण्यका से बोली, "तुम तबतक कमल तोड़ो, मैं भी इस पत्ते में शेफाली के फूल चुनूं। फिर महारानी के पास चले चलेंगे।" आरण्यका ने उससे कहा, "मैं तुम्हारे बिना यहाँ अकेली एक क्षण भी नहीं रह सकती।"

इन्दीवरिका ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "जैसा आज महारानी कहती थीं, तुम्हें अब चिरकाल तक मेरे बिना ही रहना पड़ेगा।"

आरण्यका ने उदास होकर पूछा, "महारानी क्या कहती थीं?"

इन्दीवरिका बोली, "तुम्हारे आने पर महाराज ने महारानी से यह कहलाया था कि यह विन्ध्यकेतु की कन्या जब विवाह-योग्य हो जाय तो मुझे सूचित करना। अब महारानी महाराज को सूचित करने को कहती थीं, जिससे वह तुम्हारे लिए कोई योग्य पात्र ढूंढने की चिन्ता करें।"

यह सुनकर आरण्यका ने दोनों हाथों से अपने कान बन्द कर लिये और क्रुद्ध-सी होकर परिचारिका से बोली, "चलो, दूर हटो। तुम्हारी इस व्यर्थ की बकवास से मुझे कुछ नहीं लेना है।" इन्दीवरिका जाकर फूल चुनने लगी।

राजा पेड़ की आड़ से यह सब वार्तालाप सुन रहे थे। यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि यह आरण्यिका दृढ़वर्मा की कन्या है। आज तक उसे नहीं देखा—इसके लिए उनके मन में पश्चात्ताप-सा होने लगा। वह वसन्तक से बोले, "मित्र, वास्तव में वह पुरुष धन्य होगा जिसे इसके पाणिग्रहण का सौभाग्य प्राप्त होगा।"

राजा और वसन्तक कमल-पुष्पों को चुनती हुई आरण्यिका के अपूर्व सौंदर्य को चकित होकर देखते रहे। वास्तव में जल के ऊपर कमलों के बीच विचरण करता हुआ उसका हाथ उन पुष्पों से भी अधिक सुन्दर तथा सुकुमार दीखता था, और यह आश्चर्य-सा ही था कि उसके मुखचन्द्र की कान्ति के सामने भी कमल के फूल खिले ही रहे, सिकुड़ नहीं गए।

कमलों को चुनते चुनते एकाएक आरण्यिका चिल्ला उठी। पुष्पों से उड़कर भौंरे उसके मुख के चारों ओर मंडराने लगे थे। उनसे भयभीत होकर उसने साड़ी के छोर से अपना मुंह ढक लिया और इन्दीवरिका को पुकारकर बोली, "सखी! शीघ्र आकर इन दुष्ट भौंरों से मेरी रक्षा करो। ये चारों ओर से आकर मेरे ऊपर आक्रमण कर रहे हैं।"

न्दीवरिका कुछ दूर चली गई थी । इसलिए वसन्तक की सलाह से राजा ही आरण्यका की सहायता के लिए चले गये। मुंह ढका होने से आरण्यका उन्हें देख न पाई । राजा अपने उत्तरीय से भौंरों को भगाते हुए आरण्यका से बोले, "घबराने की आवश्यकता नहीं है, कुमारी । तुम्हारे मुख को कमल समझकर ये भौंरे उसपर मंडरा रहे हैं ।'

राजा का स्वर सुनते ही आरण्यका डर गई । उसने मुंह पर से वस्त्र हटा दिया । देखा सामने पर-पुरुष है तो वह इन्दीवरिका को शीघ्र आने के लिए पुकारने लगी ।

वसन्तक बोल उठा, "सारी पृथ्वी की रक्षा करने वाले स्वयं वत्सराज के रहते हुए परिचारिका को रक्षा के लिए क्यों पुकारती हो ?"

यह सुनकर आरण्यिका एक साथ लज्जा और स्नेह से भर उठी । उसने राजा की ओर संकोच भरी दृष्टि से देखा और सोचने लगी, 'यही महाराज हैं, जिनसे पिता जी ने मेरा विवाह करने का निश्चय किया था ।'

इतने में इन्दीवरिका भी आ पहुंची । उसे देख-कर राजा और वसन्तक पास ही के कदली-कुंज में

चले गये। आरण्यिका भी सरोवर से निकलकर स्नेह-पूर्ण दृष्टि से उस ओर देखती हुई इन्दीवरिका के साथ अन्तःपुर को लौट गई।

सायंकाल हो चला था। राजा और वसन्तक भी कदली-कुंज से निकलकर आरण्यिका के सम्बन्ध में वार्तालाप करते हुए प्रासाद की ओर चले गये।

३

कौमुदी-महोत्सव के अवसर पर अन्तःपुर में खेलने के लिए वृद्धा संन्यासिनी सांकृत्यायिनी ने महाराज और महारानी के जीवन-सम्बन्धी घटनाओं को लेकर 'उदयन चरित' नामक एक रूपक तैयार किया था। महारानी वासवदत्ता की भूमिका में आरण्यिका को, और महाराज की भूमिका में महारानी की परिचारिका मनोरमा को अभिनय करने का कार्य सौंपा गया था। पहले दिन अनमने होने के कारण आरण्यिका ने अभिनय करने में कुछ भूलें कर डाली थीं। इस आशंका से कि कहीं वह आज फिर उसी प्रकार की भूलें दुहराकर महारानी को क्रुद्ध न कर डाले, मनोरमा आरण्यिका को सावधान करने के लिए उसे उद्यान में ढूंढ़ रही थी। इतने में उसने देखा कि वह मन-ही-मन कुछ बड़बड़ाती हुई सरोवर-तट पर के कदली-कुंज में

प्रवेश कर रही है। उसके हृदय की बातों को जानने के लिए [illegible] पास ही एक झाड़ी की आड़ में खड़ी होकर सुनने लगी।

आरण्यक दुःख भरे स्वर में बड़बड़ा रही थी, 'मेरे हृदय! दुर्लभ [illegible] को प्राप्त करने की आकांक्षा से तू मुझे इस प्रकार क्यों पीड़ित कर रहा है? महाराज देखने में कितने सौम्य हैं। फिर भी वह मुझे इस प्रकार क्यों जला रहे हैं? किन्तु इसमें उनका क्या अपराध? यह तो मेरा ही दुर्भाग्य है....।'

यह सुनकर म[illegible] को पहले दिन अपनी प्रिय सखी के उदास होने का कारण मालूम हो गया। यह जानकर कि आरण्यिका का हृदय किसी ऐसे-वैसे व्यक्ति की ओर नहीं, किन्तु स्वयं म[illegible]राज की ओर आ[illegible]ष्ट हुआ है, उसने मन-ही-मन उसकी प्रशंसा की। यही नहीं उसकी इस भावना को उसने उसकी कुला[illegible]ता से उपयुक्त ही ठहराया।

इधर कदली-कुंज में [illegible]का का बड़बड़ाना चालू था। अपने हृदय की व्यथा के भार को कुछ हलका करने के लिए वह अपनी प्रिय सखी मनोरमा से अपनी इन सारी बातों को कहना चा[illegible]ता थी, किन्तु फिर [illegible] थी, 'लज्जा के कारण उससे कैसे कह सकूंगी?'

मनोरमा ने अब सब कुछ जान लिया था। वह अपनी प्रिय सखी को धीरज बँधाकर यथाशक्ति उसकी सहायता करना चाहती थी। इसलिए एकाएक कदली-कुंज में जाकर वह आरण्यिका से बोली, "ठीक तो है री! अपनी अन्तरंग सखी से भी लज्जा ही करनी चाहिए।"

आरण्यिका समझ गई कि मनोरमा ने सब कुछ सुन लिया है। उसने स्नेहपूर्वक अपनी सखी का हाथ थामकर कहा, "सखी! गुस्सा न होओ। लज्जा के कारण ही मुझे तुमसे कहने का साहस नहीं हुआ।" इसके बाद उसने जो कहना शेष रह गया था, कह डाला।

मनोरमा को निश्चय था कि आरण्यिका जैसी अपूर्व सुन्दरी को देख लेने पर महाराज भी उसकी ओर खिचे बिना नहीं रह सकते, वह स्वयं ही इससे मिलने के लिए आकुल होंगे। इसलिए वह अपनी सखी के लिए निश्चिंत थी।

इतने ही में किसीके आने की आहट सुनाई पड़ी, और मनोरमा ने देखा कि महाराज का मित्र वसन्तक चला आ रहा है।

आरण्यिका को देखने के बाद से महाराज की

दशा भी उसीकी जैसी हो रही थी। वह निरंतर उसी के बारे में सोचते रहते थे। राज्य के कार्यों में भी उनका मन नहीं लगता था। उनकी ऐसी अवस्था देखकर, एक सच्चे मित्र के नाते, वसन्तक आरण्यिका के हृदय की थाह लेने के लिए उसे खोज रहा था। सारे अन्त:पुर को छान डालने पर भी जब उसे वह न मिली तो उद्यान में ढूंढता हुआ वह इधर सरोवर की ओर चला आया था। वह महाराज के संताप के उपचार के लिए कमल की पत्तियां तोड़कर ले जाना चाहता था। उसके बड़बड़ाने से मनोरमा को महाराज की दशा का आभास मिल गया था। वह शीघ्र कदली-कुंज से बाहर निकलकर वसन्तक के पास आई। बेचारा विदूषक, जो महाराज की स्थिति के बारे में बड़बड़ाता हुआ फिर रहा था, मनोरमा को देखकर भयभीत हो गया, कि कहीं मेरी बातें सुन लेने पर वह महारानी वासवदत्ता से मेरी चुगली न कर दे।

मनोरमा ने तुरन्त उसकी आशंका को दूर करते हुए कहा, "डरो मत, जैसी अवस्था तुम अपने मित्र की बताते हो, उससे दूनी बुरी अवस्था मेरी सखी की है। देखो न।" यह कहकर वह वसन्तक को कदली-

कुंज में ले गई। आरण्यिका लज्जा के कारण उठ बैठी। उसे देखकर वसन्तक बहुत प्रसन्न हुआ। एकान्त में वह मनोरमा से बोला, "राजा से इसका मिलन किस प्रकार हो सकता है।" मनोरमा ने उसके कान में कुछ कहा, जिसे सुनकर वह बहुत खुश हुआ और वहां से चला गया। मनोरमा भी आरण्यिका को साथ लेकर रंगशाला में पहुँच गई।

महारानी वासवदत्ता, सांकृत्यायिनी और परिवार के दूसरे लोग सभी रंगशाला की ओर जा रहे थे। महारानी सांकृत्यायिनी की बड़ी प्रशंसा कर रही थीं कि उन्होंने महाराज और महारानी के गुप्त जीवन की घटनाओं को बड़ी सफलतापूर्वक नाटक में चित्रित किया है।

नाट्यशाला बड़े सुन्दर ढंग से सजाई गई थी। सुनहरे स्तम्भों पर रत्न जड़े हुए थे और मोतियों की झालरें लटक रही थीं। अप्सराओं के समान सजी हुई स्त्रियां इधर-उधर घूमती हुई उसकी शोभा बढ़ा रही थीं।

वहां पहुँचकर महारानी ने अपने शरीर के आभूषण उतारकर आरण्यिका को पहनने के लिए दिए और मनोरमा से कहा, "इन्दीवरिका से वे आभू-

षण लेकर पहन लो जो आर्यपुत्र को पिताजी ने दिए थे। उन्हें पहनकर तुम ठीक महाराज के समान ही लगोगी।"

मनोरमा और आरण्यिका आभूषण लेकर अन्दर चली गईं। कुछ देर के बाद नाटक भी आरम्भ हो गया। राजकुमारी वासवदत्ता की भूमिका में आरण्यिका ने रंगमंच पर प्रवेश किया। हाथ में वीणा लिए हुए कांचनमाला उसके साथ थी। दोनों वीणाचार्य उदयन की राह देखने लगीं। जब वह कुछ देर तक नहीं आए तो उन्होंने कंचुकी से उन्हें तुरन्त भेज देने को कहा। तबतक राजकुमारी स्वयं वीणा लेकर उसकी झंकार के साथ स्वर मिलाकर गाने लगी। उधर मनोरमा के स्थान पर अपनी भूमिका में स्वयं राजा मंच पर प्रवेश करने ही वाले थे कि उन्होंने कांचनमाला और आरण्यिका को बातें करते सुना। वह यह जानने के लिए रुक गए कि अब किस प्रसंग का अभिनय चल रहा है। कांचनमाला कह रही थी, "राजकुमारी जो चाहें सो पूछें।"

आरण्यिका ने पूछा, "क्या यह सच है कि वीणा बजाते हुए वत्सराज यदि पिताजी को प्रसन्न करलें तो वह निश्चय ही उन्हें बन्दीघर से मुक्त कर देंगे।"

ठीक इसी समय म ,राज ने प्रवेश किया और कहा, "इसमें कोई सन्देह नहीं। परिजनों सहित राजा प्रद्योत को अपनी वीणा-वादन से मोहित कर मैं शीघ्र ही व सवदत्ता को ले जाऊँगा।"

म ,राज के इस प्रकार रंगमंच पर प्रवेश करते ही दर्शकों में बैठी हुई महारानी वासवदत्ता एकाएक खड़ी हो गईं और उनके मुख से वरबस ही निकल पड़ा, "आर्यपुत्र की जय हो।" सांकृत्यायिनी ने उन्हें याद दिलाया यह तो नाटक है। वह फिर बैठ गईं और इन्दीवरिका से बोली, "आर्यपुत्र ने जब मुझे वीणा सिखाई थी तब उनके पाँवों में बेड़ियां पड़ी थीं। इसलिए इस कमल की माला से मनोरमा के पाँव बाँध दो।"

यह कहकर उन्होंने अपने गले की माला उसे दे दी। यह सब तो हो गया लेकिन मन-ही-मन वह यह सोचने लगीं—मनोरमा किस प्रकार रूप में, स्वर में, सब बातों में म ,राज का इतना सच्चा अनुकरण कर रही है। शाबाश मनोरमा शाबाश! तुम तो सचमुच बहुत अच्छा अभिनय कर लेती हो।

रूपक आगे बढ़ने लगा। ्राण्यका गाकर वीणा बजा रही थी। उसने इतना सुन्दर गाया कि महा-

राजा प्रसन्न होकर बोले, "अहो, तेरा गाना [illegible] है और वीणा बजाना भी अद्‌भुत है।" आरण्यिका ने यह सुनकर वीणा को हृदय से लगा लिया और आसन से उठकर राजा को प्रेमपूर्वक प्रणाम किया। महाराज मुस्कराकर बोले, "तुम्हारे लिए जो तुम चाहती हो वह तुम्हें मिले।"

कांचनमाला ने आरण्यिका के आसन की ओर इशारा करके कहा, "महाराज, यहां बैठिए।"

महाराज बैठ गए और बोले, "राजपुत्री कहां बैठेंगी ?"

कांचनमाला मुस्कराई, "अभी आपने राजकुमारी की विद्या की बड़ी प्रशंसा की थी इसलिए वे गुरु के पास बैठने योग्य हो गई हैं।"

राजा ने आरण्यिका को आधे आसन पर बैठने को कहा, तब वह झिझक गई। लेकिन जब कांचनमाला ने विवश किया तब वह लजा कर वहां बैठ गई।

यह देखकर दर्शकों में बैठी वासवदत्ता ने सांकृत्यायिनी से कहा, "भगवती, यह [illegible] सूक्ष्म है। उस समय मैं उनके साथ एक आसन पर नहीं बैठी थी।"

सांकृत्यायिनी बोली, "काव्य ऐसा ही होता है।"

नाटक और आगे बढ़ा। आगे चलकर जब राजा ने आरण्यका का हाथ पकड़ा तो वासवदत्ता तिलमिला उठी, बोली, "भगवती, यह तुम देखो। मैं काल्पनिक काव्य का यह मिथ्या अभिनय नहीं देख सकती।"

और वह सांकृत्यायिनी के मना करने पर भी वहां से चली गईं। मन-ही-मन उनका सन्देह भी बढ़ रहा था। इतने में ही कांचनमालिका ने उन्हें बताया कि रंगशाला के द्वार पर वसन्तक गाढ़ी नींद में सोया हुआ है। अब तो महारानी का सन्देह विश्वास के रूप में बदल गया। उन्होंने कहा, "यदि वसन्तक यहाँ है तो महाराज को भी यहीं होना चाहिए।" उन्होंने वसन्तक को जगाया। आँखें बन्द किए ही वह बड़बड़ाने लगा, "क्यों मनोरमा, क्या महाराज अभिनय करके लौट आए?"

अब क्या था। सारा भेद खुल गया। मनोरमा बेचारी पास ही खड़ी सिमटी हुई यह तमाशा देख रही थी। महारानी ने उससे कहा, "शाबाश मनोरमा शाबाश, तुमने बहुत सुन्दर अभिनय किया।" भय से कांपती हुई मनोरमा महारानी के चरणों में गिर पड़ी, "महारानी, इसमें मेरा कोई भी अपराध नहीं। इस

निगोड़े वसन्तक ने मेरे हाथ से सारे आभूषण छीन लिये। मैं बहुत चिल्लाई परन्तु मृदंग के शब्द के कारण किसीने मेरा चिल्लाना नहीं सुना।"

वासवदत्ता ने कहा, "मैं सबकुछ जान गई। इस नाटक का सूत्रधार यह वसन्तक ही है। तुम इसके हाथ-पांव मजबूती से बांध दो। मैं रंगशाला में जाती हूँ।" भीतर जाकर वह महाराज से बोलीं, "आर्यपुत्र! मैंने आपको मनोरमा समझकर आपके श्रीचरणों में कमल की इस माला का बंधन डलवा दिया था इस अशुभ कार्य के लिए मुझे क्षमा किया जाय।"

यह कहकर उन्होंने बन्धन खोल दिए। राजा लजा गए। आरण्यिका भय से कांपती हुई एक कोने में जाकर खड़ी हो गई और सांकृत्यायिनी चुप हो वहाँ से चली गई।

महाराज ने रानी वासवदत्ता को प्रसन्न करनें के लिए बार-बार क्षमा मांगी। लेकिन महारानी का क्रोध दूर नहीं हुआ। वह आरण्यिका से बोली, "महाराज तुमसे क्षमा मांग रहे हैं। उनके पास जाओ।"

यह कहकर वह उसे खींचकर महाराज के पास ले गई। कांपती हुई आरण्यिका ने कहा, "महारानी, मैं कुछ नहीं जानती।"

क्रोध में भरी हुई म ारानी बोलीं, "हाँ, तू कैसे जानने लगी। अच्छा मैं तुम्हें बताती हूँ।" यह कहकर उ ोंने इन्दीवरिका को आदेश दिया कि इसको बन्दी बना लो।

म ाराज ने फिर उनके चरण छुए लेकिन वह तो बिना कुछ बोले ही अपने महल में चली गईं।

४

आरण्यक को बन्दी हुए बहुत दिन बीत गए। लेकिन म ारानी का क्रोध शान्त नहीं हुआ। दुखी होकर उसने आत्महत्या करनी चाही लेकिन किसी प्रकार मनोरमा ने समझा-बु ाकर उसे ऐसा करने से रोका। और महाराज तक उसका हाल पहुंचाने के लिए वह वसन्तक के पास गई।

इसी समय महारानी वासवदत्ता को उज्जयिनी से उनकी माता का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—अंगदेश के राजा दृढ़वर्मा मेरे ब नोई होने के कारण ुम्हार पिता के समान हैं। एक वर्ष से भी अधिक हो गया वह कलिंग-नरेश के बन्दी हैं। तुम्हारा पति उनका पड़ ी है, शक्तिशाली है। इसलिए उनका इस घटना के प्रति उ ान रहना ठीक नहीं है।

ंगशाला की घटना के कारण रानी बहुत दुखी

थीं। इस पत्र ने उन्हें और भी अशान्त बना दिया। यह सोचकर वह और भी दुखी थीं कि अब महाराज को मेरे सम्बन्धियों से क्यों प्रेम होने लगा। सांकृत्यायिनी ने उन्हें समझाया कि वत्सराज ऐसे नहीं हैं। अंगदेश के राजा का यह अपमान देखकर वह चुप नहीं बैठेंगे। महारानी ने इस बात पर विश्वास नहीं किया। बोलीं, 'आप भी कैसी भोली हैं? नाटक के समय जो-कुछ हुआ उसको देखकर आप यह सब कैसे कहती हैं कि महाराज मुझसे तथा मेरे सम्बन्धियों से प्रेम करते हैं। मां बेचारी क्या जानें कि वासवदत्ता अब महाराज के लिए वह नहीं रहीं जो पहले थी।"

और वह रोने लगीं। उसी समय महाराज वसन्तक के साथ वहां आ पहुंचे। वह महारानी को प्रसन्न करने के लिए आए थे। महारानी उन्हें देखकर खड़ी हो गईं और प्रणाम करके भूमि पर बैठ गईं। राजा भी वहीं बैठ गए और हाथ जोड़कर उनसे प्रसन्न होने की प्रार्थना करने लगे। इस पर सांकृत्यायिनी ने कहा, "महाराज, महारानी के दुखी होने का कारण कुछ और ही है।" और उन्होंने सब बातें कह सुनाईं। राजा हंस पड़े। रानी से बोले, "यदि यही कारण है तो चिन्ता मत करो। मुझे सब कुछ मालूम है। भला

में दृढ़वर्मा के विषय में कैसे उदासीन रह सकता हूं। मुझे सूचना मिली है कि मेरे सेनापति विजयसेन ने कलिंगराज की सेना को नष्ट कर दिया है। वह दुर्ग में जाकर छिप गया है। आशा करता हूं कि वह शीघ्र ही या तो बन्दी हो जायगा या युद्ध में मारा जायगा। काम पूरा नहीं हुआ था इसलिए मैंने अभी तुमसे कुछ नहीं कहा था।"

यह सुनकर महारानी वासवदत्ता को कुछ सन्तोष हुआ। सांकृत्यायिनी उनसे बोली, "महारानी, मैंने आपसे कहा था न! वत्सराज इस सम्बन्ध में चुप नहीं बैठे रह सकते थे।"

उसी समय सेनापति विजयसेन और कंचुकी विनयवसु के आने का समाचार मिला। महाराज ने तुरन्त उन्हें बुला भेजा। विनयवसु ने बताया, "महाराज, आपकी आज्ञा से विजयसेन ने कलिंगराज को मार डाला और महाराज दृढ़वर्मा को फिर से सिंहासन पर बिठा दिया है।"

महाराज ने विजयसेन की प्रशंसा करते हुए महारानी को बधाई दी। वसन्तक इस अवसर पर कब चूकनेवाला था। महारानी से बोला, "अपार आनन्द के इस अवसर पर आपने तीन

काम करने चाहिए। पहला काम यह है कि आप (महाराज की ओर इशारा करते हुए) अपने वीणाचार्य की पूजा करें। दूसरा (अपनी ओर इशारा करते हुए) ब्राह्मणों का सत्कार करें और तीसरा—सब बन्दियों को छोड़ दें।"

महारानी सबकुछ समझ गईं। लेकिन वह प्रसन्न थीं। उन्होंने सांकृत्यायिनी से कहा, "आरण्यका को मुक्त कर दो।"

कंचुकी विनयवसु ने फिर कहा, "राजा दृढ़वर्मा आपकी इस कृपा के लिए बहुत ही आभारी हैं। उन्होंने कहलवाया है कि उनका जीवन आपके अधीन है। उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री प्रियदर्शिका का विवाह आपके साथ करने का निश्चय किया था लेकिन वह कहीं खो गई है। अपना वचन पूरा न करने के कारण महाराज दृढ़वर्मा बहुत दुखी हैं।"

यह समाचार सुनकर महारानी वासवदत्ता की आंखों में आंसू भर आए बोली, "क्यों आर्य, मेरी बहन कैसे खो गई?"

विनयवसु बोला, "कलिंग के राजा ने जब आक्रमण किया तब राजधानी में बड़ा भयंकर उपद्रव मच उठा था। उस समय मैं राजकुमारी को लेकर

इधर ही चल पड़ा; लेकिन मार्ग में इन्हें विन्ध्यकेतु के यहां छोड़कर मैं अगस्त्य तीर्थ में स्नान करने चला गया। लौटने पर देखा--वहां सबकुछ नष्ट हो गया है और राजकुमारी का कहीं पता नहीं है।"

कंचुकी यह सब बता ही रहा था कि एकाएक मनोरमा ने कहा, "उस बेचारी का जीवन संकट में पड़ गया।" महारानी वासवदत्ता को ऐसा लगा कि मनोरमा राजकुमारी प्रियदर्शिका के बारे में कुछ कह रही है। बोलीं, "क्यों, प्रियदर्शिका को क्या हुआ?"

मनोरमा ने उत्तर दिया, "मैं प्रियदर्शिका के बारे में कुछ नहीं जानती। बेचारी आरण्यिका ने विष-पान कर लिया है। किसी प्रकार उसे बचाइए।"

यह कहकर वह महारानी के चरणों में गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी। महारानी यह सुनकर प्रियदर्शिका के दुःख को भूल गईं और घबरा उठीं। उन्होंने मनोरमा से कहा, "आरण्यिका को तुरन्त यहां ले आओ। महाराज विष उतारना जानते हैं।"

कुछ ही क्षण में मनोरमा आरण्यिका को वहां ले आई। उसकी अवस्था सचमुच बहुत बुरी थी। उसकी आंखों के सामने अन्धेरा छाया हुआ था।

धीरे-धीरे उसकी चेतना खोती जा रही थी। यह देखकर महारानी वासवदत्ता ने हाथ पकड़कर महाराज को उठाया और प्रार्थना की कि वह आरण्यका के प्राणों की रक्षा करें।

कंचुकी ने जैसे ही आरण्यिका को देखा तो वह चौंक पड़ा। उसने वासवदत्ता से पूछा, "यह कौन है, कहां से आई है ?"

वासवदत्ता बोली, "यह विन्ध्यकेतु की कन्या है। विजयसेन इसे यहां लाया था।"

कंचुकी ने माथा ठोक लिया। कहा, "यह विन्ध्यकेतु की कन्या नहीं है। यह तो तुम्हारी बहन प्रियदर्शिका है।"

अब तो महारानी का दुःख दूना हो गया। वह रोते हुए महाराज से बोली, "आर्यपुत्र, शीघ्रता कीजिए, मेरी बहन मर रही है। इसे बचाइए।"

राजा स्वयं बहुत दुखी थे। आगे बढ़कर उन्होंने अपना हाथ प्रियदर्शिका के ऊपर रखा और मंत्र पढ़ने लगे। जैसे-जैसे वह हाथ फेरते गए और मंत्र पढ़ते गए वैसे-वैसे राजकुमारी के प्राण लौटते गए। थोड़ी देर में वह धीरे-धीरे उठकर बैठ गई। अंगड़ाई लेती हुई बहुत थके और अस्पष्ट स्वर में बोली, "महारानी, मैं

बहुत [illegible]रतक सोती रही।" लेकिन जब उसने पूरी तरह आंखें खोलीं और म[illegible]राज को अपने सामने खड़ा देखा तो वह लजा गई। विनयव[illegible] उसके चरणों में गिर पड़ा। बोला, "राजकुमारी, मैं आपके पिता का सेवक हूं।"

उसे वहां देखकर प्रियदर्शिका को बहुत अचरज हुआ और वह अपने माता-पिता को याद कर रोने लगी। विनयव[illegible] ने कहा, "राजकुमारी रोओ मत। तुम्हारे माता-पिता सकुशल हैं। वत्सराज की कृपा से उन्हें अपना राज्य प्राप्त हो गया है।"

वासव[illegible]त्ता ने प्रसन्न होकर रोती हुई राजकुमा[illegible] को गले से लगा लिया। बोलीं, "अरी, अब तो बहन का स्नेह निभा ले।"

वसन्तक अब भी नहीं चूका। कहने लगा, "महारानी आप तो अपनी बहन को गले लगाकर स[illegible]ुष्ट हो गई हैं लेकिन वैद्यराज के पारितोषिक का भी कुछ ध्यान है।"

म[illegible]रानी ने उत्तर दिया, "मुझे ध्यान है।"

दूसरा विदूषक राजा से बोला, "हे वैद्यराज, अब हाथ फैला[illegible]।"

राजा ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया और रानी ने [illegible]यदर्शिका का हाथ उनके हाथ में रख दिया। किन्तु

राजा ने अपना हाथ तुरन्त खींच लिया। कहा, "नहीं-नहीं, मुझे इनसे क्या काम। बड़ी मुश्किल से तो मैंने तुम्हें मनाया है।"

वासवदत्ता बोली, "इसे अ[illegible] करने का अब आपको कोई अधिकार नहीं है। मौसाजी पहले ही इसे आपको दे चुके हैं।" और महारानी ने राजा के हाथ में प्रियदर्शिका का हाथ थमा दिया। राजा मुस्कराने लगे।

इसके बाद महारानी वासवदत्ता ने महाराज से पूछा, "आर्य[illegible]त्र, अब आपका और क्या काम है?"

राजा बोले, '"देवी! इससे अधिक मेरा और क्या काम हो सकता है। महाराज दृढ़वर्मा को उनका राज्य फिर से मिल गया है। तुम मुझसे प्रसन्न हो गई हो। फिर भी इतना और हो जाय, इन्द्र समय पर वर्षा करें। भूमि में खूब अन्न उत्पन्न हो। ब्राह्मण लोग विधि[illegible]वंक यज्ञ करके देवताओं को प्रसन्न करें। सज्जनों की मित्रता युग-युग तक बनी रहे और दुर्जनों के कठोर वचन पूरी तरह से समाप्त हो जायं।"

●

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

२६

सुबन्धु-कृत

वासवदत्ता

श्री नारायणदत्त पाण्डे
द्वारा
कथासार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१ ९ ५ ६

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५६
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान् सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। फलत: अबतक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

यद्यपि संस्कृत गद्य में कथा और आख्यायिका लिखने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से ही रही है, तथापि आज इस प्रकार के साहित्य की गिनी-गिनी पुस्तकें ही मिलती हैं। कण्ठस्थ करने के लिए गद्य-काव्य पद्य की भांति सुगम नहीं होता इसी कारण संस्कृत गद्य के अनेक ग्रन्थों का लोप हो गया। आज केवल उनके लेखकों के नाम का उल्लेख ही हमें दूसरे ग्रंथों में मिलता है। काल के इस विनाशक प्रभाव से बचकर संस्कृत गद्य साहित्य के जिन यशस्वी लेखकों की कृतियां आज हम तक पहुंच पाई हैं, उनमें सुबन्धु, बाण और दण्डी—ये तीन प्रधान हैं।

सुबन्धु की कीर्ति बाण ने अपने 'हर्षचरित' की भूमिका में, और वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत काव्य 'गौडवहो' में गाई है। इससे यह मालूम होता है कि यह बाण से कुछ पहले अथवा उनके समकालीन रहे होंगे। इसके साथ ही स्वयं सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' में नैय्यायिक उद्योतकर का उल्लेख किया है। इसका अर्थ हुआ है कि वह उद्योतकर के समकालीन अथवा उनके बाद में हुए थे। इस प्रकार सुबन्धु का जीवन-काल ईसा की छठी शताब्दी का अन्तिम तथा सातवीं का प्रारम्भिक भाग माना जा सकता है।

वासवदत्ता की कथा एक साधारण प्रेम-कथा है। कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीय' का इसपर स्पष्ट प्रभाव है। फिर भी संस्कृत साहित्य के विद्वानों में आरम्भ से ही 'वासवदत्ता' का बड़ा भारी सम्मान रहा है। इसके कथानक में 'कादम्बरी' के कथानक की भांति कल्पना का कुछ भी चमत्कार नहीं जान पड़ता, लेकिन इसकी भाषा बहुत ही आलंकारिक तथा काव्यमयी है। इसी कारण यह इतना लोकप्रिय हुआ और इसी कारण तथा श्लेष के बहुत प्रयोग के कारण कठिन भी हो गया है।

—सम्पादक

वासव त्ता

प्राचीन काल में एक बहुत बड़ा दानी, देवताओं का भक्त और कवियों का आदर करनेवाला राजा हुआ है। उसका नाम चिन्तामणि था। उसके राज्य में प्रजा बड़ी सुखी थी। धर्म के रास्ते पर चलती थी। उसके राज्य में कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता था और वह विद्वानों का बड़ा आदर करता था। सब प्रकार के कलाकार उसके राज्य में आश्रय पाते थे। वह सबको प्रसन्न करनेवाला था।

उसका एक पुत्र था। वह बहुत ही सुन्दर और गुणवान था। सारी कलाएँ उसे सिद्ध थीं और शत्रु उसके नाम से भय खाते थे। वह बड़ा ही प्रतापी, सच्चा मित्र और सज्जन था। उसका नाम कंदर्पकेतु था। एक वार सवेरे के समय उसने एक स्वप्न देखा। उस स्वप्न में उसने देखा कि उसके सामने एक कन्या है जो अपूर्व सुन्दरी है और युवती है। राजकुमार बहुत देर तक उस कन्या को देखता रहा। लेकिन अचानक उसकी नींद खुल गई और उसने पाया कि

वह अकेला अपनी शैय्या पर पड़ा हुआ है। जागने पर भी उसके मन से उस कन्या को देखने की इच्छा दूर नहीं हुई। यहां तक कि उस दिन वह शैय्या से उठा भी नहीं। उसने अपने कमरे के किवाड़ बन्द कर लिये और किसीको अपने पास न आने दिया। दूसरी रात आ गई लेकिन वह स्वप्न फिर नहीं आया। वह बहुत व्याकुल हो उठा। उसकी ऐसी दशा देखकर उसके प्यारे मित्र मकरन्द ने उसे बहुत समझाया। कहा, "यह किस बुरे काम में तुम पड़ गए हो। तुम्हारा यह आचरण ठीक नहीं है। यह तो बुरे लोगों का काम है।"

अपने प्यारे मित्र की ऐसी बातें सुनकर राजकुमार ने बड़े दुःख के साथ कहा, "मित्र, यह उपदेश देने का अवसर नहीं है। मेरा सारा शरीर जल रहा है। क्या ठीक है और क्या गलत है यह सब मैं भूल गया हूं। तुम तो मेरे बचपन के साथी हो। मुझे उपदेश मत दो। मेरे साथ चलो।"

यह कहकर राजकुमार अपने मित्र को लेकर और परिजनों की आंख बचाकर वहां से चल पड़े। बहुत दूर जाने पर उन्हें विन्ध्याचल दिखाई दिया। उसकी कन्दराओं में विद्याधर गीत गा रहे थे। उन

गीतों को सुनते हुए मृग इतने तन्मय हो उठे थे कि उनका शिकार करने के लिए शेर वहां आनन्द से घूम रहे थे। हाथियों ने चन्दन के जो पेड़ तोड़ डाले थे उनके कारण वायु चारों ओर सुगन्धि बिखेर रही थी। बन्दर ऊँचे ताल के वृक्षों से गिरे हुए फलों के रस को चाट-चाटकर खा रहे थे। भालू, नीलगाय, शरभ-मृग, शेर, हाथी, साँप और अनेक प्रकार के जन्तुओं से वह पर्वत भरा हुआ था। अनेक प्रकार के पेड़ और लताएँ उसकी शोभा बढ़ा रहीं थीं। जगह-जगह बूढ़े अजगरों के शरीर पड़े हुए थे। वे ऐसे लगते थे जैसे इन्द्र के वज्र की चोट से पर्वत की आँतें बाहर निकल आई हों।

पास ही सिप्रा नाम की नदी बह रही थी। उसके किनारे पर कलहंस और सारस गुंजार कर रहे थे। वह नदी कमल के फूलों से भरी हुई थी। केतकी के फूलों से जो पराग बिखर रहा था उससे उस नदी का तट श्वेत रंग का हो गया था। इस प्रकार विन्ध्याचल की शोभा को देखते हुए सन्ध्या आ पहुँची। सूरज बनैले भैंसे की आँख के समान लाल हो गया। तब दोनों मित्र जामन के पेड़ के नीचे आराम करने के लिए ठहर गये।

जब एक पहर रात बीत गई तो उन्होंने सुना उस वृक्ष के ऊपर शुक और सारिका बातें कर रहे हैं। सुग्गा देर से आया था और सारिका उसे डांट रही थी। सुग्गे ने कहा, "क्रोध मत करो। मैंने आज एक बड़ी अनोखी क..नी सुनी है। उसे देखा भी है। इसी कारण आने में देर हो गई।" सारिका को यह सुनकर बड़ा कौतुहल हुआ और वह कथा सुनने के लिए आग्रह करने लगी। सुग्गा कहने लगा, "कुसुमपुर नाम का एक नगर है। उसमें बड़े ऊँचे-ऊँचे महल हैं। वहां के रहनेवाले बड़े ही ज्ञानी, अनेक प्रकार की विद्याओं में निपुण और धर्म के मार्ग पर चलनेवाले हैं। उस नगर में स्वयं भगवती दुर्गा चण्डिका के नाम से रहती हैं। देवता और दानव सब उनकी पूजा करते हैं। उसी नगर के समीप भगव..ा भागीरथी बहती हैं। उसमें अनेक प्रकार के कमल और फूल खिले हुए हैं। उस नगर के राजा का नाम शृंगार-शेखर है। वह बहुत ही गुणवान, उदार, पराक्रमी और सज्जनों को आश्रय देनेवाला है। उसकी प्रजा सब तरह से खुश..ल और धर्म के मार्ग का अनुकरण .रनेवाला है। राजा के समान ही गुणव..। उसकी रानी अनंगव.. बहुत सुन्दर. है और सु..मारी है।

उनके एक पुत्री है जिसका रूप तीनों लोकों को लजाने-वाला है। उसका नाम वासवदत्ता है। समय आने पर वह युवती हुई। लेकिन उसने विवाह करने की इच्छा नहीं प्रगट की।

"एक बार जब बसन्त ऋतु अपने पूरे यौवन पर थी; आम की मंजरियाँ खिल रही थीं; भौंरे गूंज रहे थे; कोयलों के कण्ठ से निकले हुए मधुर स्वर सारे वातावरण में निनादित हो रहे थे; सरोवरों में कमल खिल रहे थे; राजहंसों का शब्द चारों ओर फैल रहा था तब वासवदत्ता के मन में विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसकी सखियों के द्वारा यह बात जानकर राजा ने स्वयंवर का प्रबन्ध किया। सारी पृथ्वी के राजा वहां आ पहुँचे। स्वयंवर सभा में परम सुन्दरी राजकुमारी पालकी में बैठकर पहुँची। उसकी सखियों और दासियों की हँसी से वातावरण गूंज उठा था। उसपर फूलों और खीलों की वर्षा हो रही थी। सभा में राजपुत्र नाना प्रकार के वस्त्र, आभूषणों से सजे हुए इस बात की कामना कर रहे थे कि राजकुमारी उनके गले में वरमाला पहनाए। लेकिन राजकुमारी किसी को भी पसन्द न कर सकी। उसी रात राजकुमारी ने स्वप्न में एक सुन्दर युवक

को देखा। वह मीठा बोलने वाला और उदार स्वभाव का था। वह सुशील भी था और चतुर भी था। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की उसपर कृपा थी। तीनों लोकों में वह हर प्रकार से बेजोड़ था। स्वप्न में ही राजकुमारी यह भी जान गई कि यह युवक राजा चिन्तामणि का पुत्र है और इसका नाम कन्दर्पकेतु है। वह सोचने लगी—ब्रह्मा ने अपनी कला को एक ही स्थान पर देखने की इच्छा से इस युवक को बनाया है। और उसके मन में राजकुमार से मिलने की इच्छा जाग्रत हो आई। अब तो वह व्याकुल हो उठी। उसे ऐसा लगा जैसे वह राजकुमार उसकी अन्तरात्मा में विराजमान है। वह उसके विरह में जलने लगी। उसकी सखियों ने उसका वह ताप दूर करने के लिए अनेक उपचार किए, लेकिन वह शान्त नहीं हुई। वह मूर्च्छित हो गई। सखियाँ कभी फूलों के रस का, कभी चन्दन के रस का उपचार करतीं, कभी उसको कमलों से भरे हुए सरोवर के तट पर चन्दन के वृक्ष की छाया में बिठातीं, कभी कदली बन में ले जातीं; कभी फूलों और किसलयों की कोमल शैय्या पर सुलातीं परन्तु राजकुमारी झुलसकर दुबली ही होती चली गई। उसका समस्त ध्यान कन्दर्पकेतु में

केन्द्रित हो गया। राजकुमारी की ऐसी अवस्था देखकर उसकी प्यारी सखियों ने तमालिका नाम की एक सारिका राजकुमार कन्दर्पकेतु के पास भेजी है। वह राजकुमार की इच्छा जानना चाहती है। वह मेरे साथ आई है और इस पेड़ के नीचे की शाखा पर बैठी है।" इतना कहकर वह सुग्गा चुप हो गया।

यह कहानी सुनकर मकरन्द बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तमालिका को बुलाया और राजकुमार की जो हालत थी वह सब उसे समझा दी। तमालिका ने उसे वह पत्रिका दी जो वह राजकुमारी की सखियों के पास से लाई थी। उसमें राजकुमारी के स्वप्न की सारी बातें लिखी हुई थीं। राजकुमार ने उस पत्रिका को पढ़ा और वह आनन्द से भर उठा। उसे ऐसा लगा जैसे वह अमृत के समुद्र में डूबता चला जा रहा है। वह तमालिका को अपने पास बिठाकर पूछने लगा "वासवदत्ता क्या करती है? क्या कहती है? कैसे बैठती है?" यह पूछते-पूछते सन्ध्या काल आ पहुँचा। वे वहां से चल पड़े। उस समय अस्ताचल की ओर जाता हुआ सूर्य ऐसा लग रहा था मानो सन्ध्या के माथे पर किसी ने लाल तिलक लगा दिया हो। अथवा अस्ताचल रूपी पारिजात वृक्ष का फलों का गुच्छा हो। उन्होंने देखा कि

पक्षी अपने-अपने नीड़ों में प्रवेश करते हुए कलरव कर रहे हैं। घरों में चारों ओर अगरू की धूप की सुगन्ध फैल रही है। नदियों के तटों पर सुन्दर दूब के ऊपर बैठे हुए पण्डित लोग कथा सुना रहे हैं। कथा सुनने को उतावले वृद्ध लोग बच्चों को शोर करने से रोक रहे हैं। घरों के भीतर बूढ़ी स्त्रियाँ सुलाने के लिए बच्चों को थपथपाती हुई लोरियाँ सुना रही हैं। सज्जन लोग सन्ध्या-वन्दन करने के लिए बैठने लगे हैं। वनों में जहां गाय बैठती हैं वहां अब मृगों के झुण्ड जुगाली कर रहे हैं। पश्चिम दिशा में सन्ध्या की लाली ऐसे शोभा दे रही है मानो वरुण देवता ने भगवान् भास्कर के जाने के लिए मार्ग में सब कहीं लाल रेशम के पाँवड़े बिछा दिए हैं।

थोड़ी देर में चारों ओर अन्धकार छा गया। रतौंधी के रोगियों के समान भौंरे कमल-वनों में इधर-उधर भटकने लगे। अन्धकार और बढ़ गया और आकाश में तारे चमक आए। वे ऐसे लग रहे थे मानो ताण्डव नृत्य करते हुए भगवान शंकर की जटा से छिटक कर गंगा-जल की बूंदें आकाश पर इधर-उधर बिखर गई हैं, या आकाश रूपी सरोवर में कुमुद के फूल खिल रहे हों या अन्धकार रूपी धुएं के बीच

सांझ की लाली रूपी अग्नि से तपी हुई आकाश रूपी भाड़ में खीलें तैयार हो रही हों।

कुछ ही देर में उदयाचल की चोटी पर आकाश-रूपी महल के मंगल कलश के समान चन्द्रमा का उदय हुआ। उस समय उसका रंग लाल था। किन्तु धीरे-धीरे वह लाली मन्द पड़ गई मानों चकोरियों ने उसे अपने नेत्रों से पी लिया हो। उस समय वह ऐसा शोभा देने लगा जैसे रात्रि-रूपी व्रज-वनिता द्वारा निकाला गया श्वेत मक्खन का गोला शोभायमान होता है। उसी सुहावने समय में जब चारों ओर का वातावरण कुमुद की सुगंध से भरा हुआ था, सन्ध्या की शीतल वायु बराबर बह रही थी, राजकुमार कंदर्पकेतु ने अपने मित्र मकरन्द और तमालिका के साथ वासव-दत्ता के नगर की ओर प्रस्थान किया।

कुछ समय के बाद वे उस नगर में पहुँच गए जहां वासवदत्ता रहती थी। राजकुमार ने वहां पहुँचकर वासवदत्ता का महल देखा जिसका शिखर आकाश को छू रहा था। उसके चारों ओर एक परकोटा था जिसमें रत्न जड़े हुए थे। उस महल के ऊपर ऊँची पताकाएँ ऐसे शोभा दे रही थीं जैसे वायु से हिलते हुए आकाश रूपी वृक्ष की टहनियां। उसका आंगन सोने की शिलाओं

से पटा हुआ था और वहां नहरें प्रवा।,त हो रही थीं। उनमें से कपूर, केसर, चन्दन, लायचा और लौंग की महक आ रही थी। उन नहरों के किनारों पर स्फटिक की जो ।शल।ं विछी हुई थीं उनपर सफेद कबूत सुखपूर्वक सोए हुए थे। लेकिन रंग की समानता के कारण वे दिखाई नहीं दे रहे थे। किनारे पर उगे हुए फूलों से बराबर महक आ रही थी। वह महल कौतुहल-पूर्ण और विलास की सामग्रियों से भरा हुआ था। वहां वासवदत्ता की सखियां और दासियां अनेक प्रकार से बातें कर रही थीं। उनकी बातें मन को लुभानेवाली थीं। उन्हींको सुनते हुए कन्दर्पकेतु ने मकरन्द के साथ उस महल में प्रवेश किया।

इस अद्भुत सान्दर्य को देखते हुए जब वे भीतर पहुंचे तो उसने वादवदत्ता को देखा। उसके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। एकटक वह उसको देखता ही रहा और फिर मूर्च्छित हो गया। उसकी यह दशा देखकर ।।:।ल्ना भी मूर्च्छित हो गई। बाद में मकर- और सखियों के प्रयत्नों से उन दोनों को होश आया। ।।:वदत्ता की प्रिय सखी कलावती ने कन्दर्पकेतु से कहा, "यह समय बात करने का नहीं है। मैं आप । सारी क।ना सुनाती हूं। राज ।मारा ने आपके लिए

जो कष्ट सहे हैं उसका कुछ अंश यदि आकाश का कागज बनाया जाय, समुद्र की दवात बने, शेषनाग बोलनेवाले हों और ब्रह्मा लिखनेवाले तो शायद हजारों युगों में कठिनाई के साथ लिखा या कहा जा सके। आपने भी तो अपना राज्य छोड़कर इनके लिए अपने को संकट में डाल दिया है। युवती हो जाने पर भी राजकुमारी ने विवाह नहीं किया। इस बात को इनके पिताजी ने दोष माना है और हठ करके कल सवेरे ही विद्याधरों के सम्राट विजयकेतु के पुत्र पुष्पकेतु के साथ इनका विवाह करने का निश्चय किया है। इधर हम लोगों के साथ सलाह करके राजकुमारी ने यह निश्चय किया कि यदि तमालिका आपको लेकर आज नहीं लौट आई तो यह आग में प्रवेश कर जायंगी। भाग्य की कृपा है कि आप आ गए। अब आप जैसा ठीक समझें करें।" इतना कहकर राजकुमारी की वह सखी चुप हो गई।

राजकुमार कन्दर्पकेतु ने देर नहीं की। उन्होंने समाचार जानने के लिए मकरन्द को वहां छोड़ दिया और स्वयं मनोजव नाम के बहुत ही तेज चलनेवाले घोड़े पर सवार होकर वासवदत्ता के साथ नगर से निकल गया। लगभग दो कोस चलने के बाद वे एक

[illegible]शान भूमि में पहुंचे। वहां पर मनुष्य के मांस के लोभी अनेकों पशु-पक्षी और [illegible] निडर होकर घूम रहे थे। बड़ा भयंकर दृश्य था। कहीं पर अ[illegible]जली चिता में रखे हुए शरीर को बेताल खा जाना चाहते थे। कहीं पर सूली पर चढ़ाए गए चोर के शरीर से बहते हुए रुधिर को देखकर राक्षस खप्पर बजा-बजाकर नाच रहे थे। कहीं पर आग में जलती हुई किसी लाश की [illegible]पड़ी चटक रही थी, उससे निकलता हुआ चट-चट का शब्द बड़ा भयंकर लग रहा था। कहीं पर बांट-बखेरा करने के लिए डाकिनियां भीषण काला[illegible]ल कर रही थीं। कहीं पर रक्त से सनी हुई [illegible] के मंगल सूत्र बना कर पिशाच युवक युवतियां विवाह की इच्छा से अग्नि के चारों ओर फेरे ले रहे थे।

इस प्रकार श्मशान के उन भयानक दृश्यों को देखते हुए वे कई योजन का वह रास्ता पार करके विन्ध्यारण्य में पहुंचे। वह विशाल बन विल्व, अर्जुन, सिन्धुवार, श्रीपर्ण, अशोक, सरस, पातद[illegible]रु, नाग केसर, [illegible]रीतकी और पिपली आदि अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित था। नाना प्रकार की लताएं उसमें चारों ओर फैल रही थीं। कहीं पर बांसों के झुरमुट थे तो कहीं पर सुन्दर पलाश के बृक्ष खड़े हुए थे। निर्मल जल से

भरी हुई बहुत-सी नदियां वहां बह रही थीं। तरह-तरह के ,जारां पशु-पक्षी उसमें घूम रहे थे।

कन्दर्पकेतु बिना कहीं विश्राम और भोजन किए निरन्तर चलत ही रहा। उसने बहुत-सा मार्ग पार कर लिया लेकिन थकान के कारण वह निढाल-सा हो गया। सुकुमारी वासवदत्ता की भी ऐसी ही दशा हो रही थी। इसलिए वे दोनों मन्द-मन्द वायु से हिलते हुए, फूलों की महक से भरे हुए तथा भौरों की गुनगुन से गुंजायमान एक सुन्दर लताकुंज में सो गए। इसी समय काल रूपी धीवर आकाश रूपी विशाल सरोवर से रात रूपी जाल द्वारा मछलियों के समूह के समान तारागणों का अपहरण कर रहा था। कमल खिलने लगे थे और चारों ओर मदमस्त भौंरों का गुंजार आरम्भ हो गया था। लाल मुख का दिन रूपी बन्दर, आकाश रूपी पेड़ पर चढ़ ़र, दिशा रूपी [illegible] को [illegible]लाकर फूलों के समान तारा-गणों और फल के समान चन्द्रमा को गिरा रहा था। अरुण किरण रूपी कलगी लगाए दिन रूपी मुर्गा आ ाश के आंगन में उतरकर चा ल के कणों के समान तारागणों को चुग रहा था। यह चन्द्रमा रूपी ब्रा ण मेरे संसर्ग से उन्नति को प्राप्त होकर वा णी (पश्चिम दिशा अथवा मदिरा) के सम्पर्क से नीचे गिर रहा है,

ऐसा सोचकर पूर्व दिशा उत्सव उपहास-सा कर रही थी। उदयाचल के शिखर से उदय होते हुए भगवान सूर्य का बिम्ब आकाश रूपी पूर्व द्वार पर स्थापित सुनहरे मंगल कलश के समान मालूम हो रहा था।

कुछ समय बाद अब सूरज भगवान सारी दिशाओं को चमकाकर ठीक आकाश के बीच में पहुंच रहे थे तब कंदर्पकेतु की नींद खुली। जागने पर उसने देखा कि वासवदत्ता उसके पास नहीं है। उठकर उसने इधर-उधर ढूंढा। लेकिन राजकुमारी कहीं भी दिखाई नहीं दी। कभी वह पेड़ों की ओर जाता कभी लताओं की ओर। एक क्षण नीचे गड्ढों में देखता दूसरे क्षण पेड़ों की चोटियों पर। उसने उसको पत्तों के ढेरों में टटोला, आकाश में खोजा लेकिन राजकुमारी कहीं भी नहीं दिखाई दी। उसका हृदय हाहाकार कर उठा। वह विलाप करने लगा; "वासवदत्ते! तुम कहां हो? कहां जाकर छिप गई हो? क्या तुम हँसी कर रही हो? नहीं यह समय हँसी करने का नहीं है। तुम्हारे लिए मैंने कितने दुःख उठाए हैं। यह तुम भी जानती हो। तुम जहां हो वहां से आकर मुझे दर्शन दो। हा! प्यारे मित्र मकरन्द मेरा दुर्भाग्य तो देखो। न जाने पिछले जन्म में मैंने कैसे-कैसे काम किए थे। यह भाग्य

की गति कैसी है ? ग्रह मुझ पर कैसे कठोर हो गए हैं ? गुरुजनों का आशीर्वाद कैसा उल्टा फल दे रहा है ? क्या मैंने नियम के अनुसार विद्याएँ नहीं पढ़ी हैं ? क्या मैंने यथोचित रीति से गुरुजनों का सम्मान नही किया है ? क्या मैंने कभी अग्नि की पूजा नहीं की थी ? क्या गायों की प्रदक्षिणा नहीं की थी ? क्या शरण में आए हुए की रक्षा नहीं की थी ? क्या मैंने ब्राह्मणों का अपमान किया था ?" इसी प्रकार वह अपने मन में तर्क-वितर्क करता हुआ अनेक प्रकार से विलाप करने लगा। और वहां से दक्षिण की ओर चल पड़ा।

वन का वह भाग नरकुल, उशीर, बेत, अशोक, बकुल, करंज आदि अनेक तरह के पेड़ों और लताओं से भरा हुआ था। कहीं नारिकेल के पेड़ों के हरे-भरे वन थे। कहीं पर उलझी हुई झाड़ियाँ छा रही थीं। कहीं पेड़ों पर कोयलें बैठी हुई थीं। कहीं वन कुक्कुट घूम रहे थे। कहीं फूलों की मंजरियों पर मंडराते हुए भौंरे गुंजार कर रहे थे। कहीं पर मृग निश्चिंत बैठे हुए जुगाली कर रहे थे। कहीं नींद के आनंद से अलसाए हुए हाथी अपने कानों को फड़फड़ा रहे थे और कहीं मदमस्त हाथियों के घायल शरीर

के रक्त में सनी हुई सिंहों की अयालें चमक रहीं थीं।

कन्दर्पक इस वन में चारों ओर घूमने लगा। फिर वहां से निकलकर वह समुद्र के किनारे पर जा पहुंचा। समुद्र की तरंगें बार-बार तट से टकरा रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो भगवान् शंकर ताण्डव नृत्य के समय अपनी भुजाओं को चारों ओर पटक रहे हैं। वह तट वरुणदेव की विजय पताकाओं के बड़े-बड़े सांपों की केंचुलियों और जलदेवियों के समान चन्दन के लेप के समान फेन समूह से शोभायमान हो रहा था। सगर पुत्रों[1] के द्वारा खोदा गया वह समुद्र इन्द्र के भय से छिपे हुए पंखों वाले पर्वतों से युक्त और अनेक मणिमुक्ताओं और रत्नों से भरा हुआ था। उसमें हाथियों के समान बड़े-बड़े मगरमच्छ घूम रहे

---

१. पुराणों में कथा आती है कि सूर्यवंशी महाराज सगर ने चक्रवर्ती होने के लिए जब अश्वमेध यज्ञ किया था तब उस यज्ञ के घोड़े की रक्षा के लिए सगर के ६०००० बेटे साथ-साथ चले थे। इस भय से कि यज्ञ के पूर्ण होने पर राजा सगर स्वर्ग के अधिकारी हो जायंगे, इन्द्र ने यज्ञ का वह घोड़ा चुरा लिया था। उसको तलाश करते हुए सगर के पुत्र जब पाताल की ओर चले तो उन्होंने धरती को खोद डाला था। कहते हैं उसी स्थान पर पानी भर जाने से समुद्र बन गया है।

थे। छोटी-बड़ी मछलियाँ भरी पड़ी थीं। जगह-जगह शंख और प्रवाल शोभा दे रहे थे। उसमें चक्कर काटती हुई बड़ी भारी भँवरों से ऐसा मालूम होता था मानो मन्दराचल[1] द्वारा उसके मथे जाने का प्रभाव आज भी बना हुआ है।

मृगी के रोगी के समान वह बराबर फेन उगल रहा था। किनारों पर खिले हुए बकुल के फूलों से उसमें मदिरा की-सी सुगन्ध आ रही थी। लहरों के गर्जन से ऐसा लगता था जैसे वे क्रोध में भरी हुई हैं। बड़े-बड़े साँप जब निःश्वास लेते थे तब उनसे उनकी खिन्नता प्रगट होती थी। कुटिल तरंगों के कारण ऐसा लगता था मानो वे भौंहें तरेर रही हैं। पत्नियों के समान अनेक नदियाँ उसमें प्रवेश कर रहीं थीं।

वासवदत्ता के विरह के दुःख से दुखी कन्दर्पकेतु अपने जीवन को समाप्त करने के लिए समुद्र को देखकर सोचने लगा, भाग्य ने मेरे साथ अपकार करके मुझे इस समुद्र तट पर लाकर मेरे साथ उपकार भी

१. देवासुर संग्राम के समय एक बार देवों और दानवों में सुलह हो गई और भगवान् विष्णु के कहन पर दोनों न समुद्र का मंथन स्वीकार कर लिया। उस समय मन्दराचल को रेही और वासुकी नाग को रस्सी बनाया गया था। तभी समुद्र से नवरत्न निकले थे।

किया है। अपना शरीर इसके हवाले करके मैं अपनी विरह की आग को शान्त करूंगा। यद्यपि स्वस्थ मनुष्य के लिए आत्म ,त्या करना पाप है ; शास्त्र के विरुद्ध है, लेकिन मुझे तो ऐसा करना ही पड़ेगा। सब लोग शास्त्रों के अनुस र कहां चलते हैं? इस असार संसार में कौन क्या नहीं करता? चन्द्रमा ने गु ानी को चुराया था। ब्राह्मण के धन की इच्छा करने से पुरुरवा का नाश हो गया था। दूसरे की स्त्री पर दृष्टि डालने के कारण राजा नहुष को सर्प बनना पड़ा था। राजा ययाति का पतन इसी कारण हुआ कि उसने ब्राह्मण-कन्या से विवाह किया था। मुद्युम्न स्त्री बन गया था। अपने पुत्र जन्तु को मार डालनेवाले सोमक की निर्दयता के बारे में कौन नहीं जानता। कुवलयाश्व ने नागकन्या का हरण किया। पुरुकुत्स तो कुत्सित ही हो गया। राजा नृग गिरगिट की योनि को प्राप्त हुआ। कलि के प्रभाव के कारण राजा नल की निन्दा हुई। संवरण सूर्य की बेटी तपती के लिए धीरज खो बैठा। राजा दशरथ अपनी प्रिय पत्नी के कारण पागल होकर मर गए। सहस्रबाहु ब्राह्मण को कष्ट देने के कारण नष्ट हुआ। शान्तनु बहुत व्यसनी था इसलिए उसे ।-लाप करना पड़ा। युधिष्ठिर ने युद्ध भूमि में झूठ

बोला। यह सब देखते हुए इस संसार में कोई भी निर्दोष नहीं कहा जा सकता। मैं भी शरीर का त्याग करूंगा। यह सोचकर वह समुद्र तट पर पहुँचा। उस समय वह तट-प्रदेश मछलियों को खानेवाले तरह-तरह के पशु पक्षियों से भरा हुआ था। बनैले भैंसों ने उसे खोदकर ऊँचा-नीचा कर दिया था। तेज वायु के कारण बड़ी-बड़ी लहरें उससे टकरा रही थीं। अनेक प्रकार के शंख, सुक्तियां और मोती वहां शोभा दे रहे थे।

धीरे-धीरे कन्दर्पकेतु अपना शरीर त्यागने के लिए समुद्र में उतरने लगा। मगरमच्छों, मछलियों और कछुओं आदि समुद्र के जीवों ने उसको देखा और उनका मन दया से भर उठा। उन्होंने हिंसा भाव त्याग दिया। वह और आगे बढ़ा। वह डूबने ही वाला था कि उसके कानों में आकाशवाणी का यह स्वर सुनाई दिया—आर्य कन्दर्पकेतु तुम अपने शरीर का त्याग न करो, वहुत जल्द ही राजकुमारी तुम्हें मिल जायगी।

कन्दर्पकेतु को यह सुनकर बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने मरने का विचार त्याग दिया। इसके बाद भोजन की इच्छा से वह समुद्र तट के पास वाले वन

में पहुंचा। वहां पर वह इधर-उधर घूमने लगा और कन्दमूल खाकर उसने बहुत-सा समय बिता दिया।

धीरे-धीरे वर्षा काल आ पहुँचा। चारों ओर नदी नाले जल से भर गए। मोर नाचने लगे। धूल बैठ गई। ऊँचे-ऊँचे सरकंडों से वन भरने लगा। मृग, चातक आनन्द से भर उठे। श्याम वर्ण के मेघों से भरा हुआ आकाश में इन्द्रधनुष शोभा देने लगा। बादलों के नीचे उड़ती हुई बगुलों की पंक्तियाँ ऐसी मालूम होती थीं मानों गर्मी की ऋतु में प्यास के कारण जल पीते समय बादल समुद्र के जल के साथ शंखों को भी पी गए थे और अब उन्हें बाहर निकाल रहे हैं। आकाश में चमचमाती हुई बिजली की रेखा ऐसे मालूम होती थी मानों वर्षा ऋतु रूपी सुनार मेघ रूपी कसौटी पर सोने की रेखा खींच रहा हो। वायु के वेग से उठते हुए जलकण ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों विद्युल्लता रूपी चमचमाते हुए आरे से चीरे जाते हुए मेघ पटल का बुरादा बिखर रहा हो। वीर-बहूटियों से भरे हुए दूब के मैदान ऐसे मालूम होते थे मानों पृथ्वी ने अपनी लाल बूंदोंवाला हरा दुपट्टा ओढ़ रखा है। इस प्रकार जब वर्षा रूपी दासी वसुन्धरा देवी को [illegible] से स्नान कराकर चली गई

तो स्वच्छ आकाश रूपी साड़ी को लेकर शरद् ऋतु के रूप में दूसरी दासी उसके समीप आई।

शरद् काल के आरम्भ होने पर आकाश स्वच्छ और नीला हो गया। क्रौंच और खंजन पक्षी मुक्त होकर विहार करने लगे। राजहंस अपने पहले के जलाशयों में लौट आए। सारसों के कोलाहल से सरोवर गूंजने लगे। धानों के खेत तोतों के शब्दों से भर गए। [illegible] की महक से महकती हुई समीर बहने लगी। ऐसे सुहावने समय में इधर-उधर घूमते हुए एक बार कन्दर्प-केतु ने एक पत्थर की मूर्ति में राजकुमारी की समानता देखी और अपने हाथ से उसे छुआ। छूते ही पत्थर की वह मूर्ति जीती-जागती वासवदत्ता के रूप में बदल गई। यह देखकर राजकुमार के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसने राजकुमारी को गले लगा लिया। पूछने लगा, "यह क्या बात थी ? तुम कहां चली गईं थीं ? इस पत्थर की मूर्ति से कैसे प्रगट हुईं !"

एक लम्बी सांस खींचकर वासवदत्ता ने उत्तर दिया, "आर्यपुत्र ! मुझ अभागिन के कारण आपने कितना कष्ट सहा। राज्य छोड़ा। जब आप इस वन में भटकते हुए दुःख भोग रहे थे और एक दिन थकान और भूख प्यास से दुखी होकर लता-मंडप में सो रहे थे

तब मैं आपसे पहले जाग गई थी। उस समय मैंने सोचा कि क्यों न आपके जागने से पहले आपके लिए कन्द-मूल ले आऊँ। इसी विचार से मैं उस वन में थोड़ी दूर आगे बढ़ गई। क्या देखती हूँ कि वृक्षों और झाड़ियों की ओट में बहुत-से सैनिक खड़े हैं। मेरे मन में विचार उठा कि क्या ये मुझे पकड़ने के लिए आए हुए [illegible] के सैनिक हैं। या आर्यपुत्र की सेना है। मैं यह सोच ही रही थी कि एक किरात सेनापति मेरी ओर लपका। उससे बच निकलने के लिए मैं दूसरी ओर मुड़ी तो क्या देखती हूँ कि उधर से एक दूसरा किरात सेनापनि मेरी ओर दौड़ रहा है। फिर तो एक ही मांस के टुकड़े के लिए [illegible] हुए गिद्धों के समान वे दोनों [illegible] आपस में लड़ने लगे। यही नहीं उन दोनों की सेनाओं में भी बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। दोनों ओर से घनघोर बाण वर्षा होने लगी। वीरों के शरीर कट-कटकर गिरने लगे। थोड़ी ही देर में वह सारा वन-प्रदेश रुण्ड-मुण्डों से पट गया और देखते-देखते वे दोनों सेनाएँ आपस में लड़कर नष्ट हो गईं। एक भी व्यक्ति उनमें जीवित नहीं बचा। मैं बुरी तरह घबरा रही थी लेकिन जब युद्ध का वह बवंड शान्त हुआ तो एक मुनि वहां पर प्रगट हुए। क्रोध में भरे

हुए तीव्र स्वर में उन्होंने मुझसे कहा, "ओ दुष्टा ! तेरे ही कारण मेरा यह आश्रम नष्ट-भ्रष्ट हुआ है। मैं तुझे शाप देता हूं कि तू पत्थर की मूर्ति बन जा।"

उनके ये शब्द सुनकर मैं और भी डर गई और हाथ जोड़कर अनेक प्रकार से अनुनय विनय करने लगी। मैंने उनको अपनी सारी कहानी सुनाई। जब उन्हें दुःखपूर्ण परिस्थिति का पता चला तो उनका हृदय दया से भर उठा। उन्होंने कहा, "मेरा यह शाप टल नहीं सकता। तुमको पत्थर की मूर्ति बनना ही पड़ेगा। लेकिन जब तुम्हारे पति तुमको छुएंगे तो तुम शाप से मुक्त हो जाओगी। आज आपने मुझे छुआ। हमारा सौभाग्य उदय हुआ। हम फिर एक दूसरे से मिल गए।"

यह कथा सुनकर कन्दर्पकेतु बहुत प्रसन्न हुआ और वासवदत्ता को लेकर अपने नगर की ओर चल पड़ा। उधर मकरन्द भी कुसुमपुर से लौट रहा था। मार्ग में दोनों मिल गए। इसके बाद अपनी राजधानी में पहुँचकर राजकुमार कन्दर्पकेतु अपनी प्रिय पत्नी वासवदत्ता और प्रिय मित्र मकरन्द के साथ बहुत समय तक सुख पाता रहा।

●

परिशिष्ट

[पृष्ठ २२-२३ पर जिन घटनाओं की चर्चा आई है, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है। इनमें से कुछ कथाएँ कथा न होकर केवल अलंकार हैं जैसे चन्द्र और तारा की कथा। इसका सम्बन्ध नक्षत्रों की चाल से है।]

१. **चन्द्रमा**—पौराणिक राजाओं की एक प्रसिद्ध शाखा 'चन्द्रवंशी' राजाओं के चलाने वाले माने जाते हैं। वह देवता थे और देवताओं के गुरु थे बृहस्पति। बृहस्पति की पत्नी तारा बहुत सुन्दर थी। चन्द्रमा उसे चुरा लाये थे। इस पर देव-दानवों में भयंकर युद्ध हुआ। देवता बृहस्पति की ओर थे और दानव चन्द्रमा की ओर। अन्त में ब्रह्मा ने बीच-बचाव कराकर तारा को बृहस्पति को वापिस करवा दिया।

२. **पुरुरवा**—चन्द्र वंश के पहले राजा माने जाते हैं। बुध चन्द्रमा और तारा के पुत्र थे। बुध के पुत्र थे पुरुरवा। वह बड़े प्रतापी थे और इन्होंने देव-वारांगना उर्वशी से विवाह किया था। इनके जेठे पुत्र का नाम आयु था। ब्राह्मण के दान की कथा क्या थी, इसका कुछ पता नहीं लगता।

३. **नहुष**—चन्द्रवंश के प्रतापी राजा पुरुरवा के पोते और आयु के बेटे थे। यह इतने प्रतापी थे कि अपने जीते जी इन्द्र बन गए थे। देवलोक के महाराज इन्द्र किसी पाप के कारण स्वर्ग से निकाल दिये गए थे तभी देवताओं ने धरती से बुलाकर इन्हें अपना राजा बनाया था। स्वर्ग का राजा बनकर इन्होंने चाहा कि इन्द्र की पत्नी शची भी इनकी पत्नी बने। यही नहीं उनसे विवाह करने के लिए यह ऐसी पालकी में बैठकर चले जिसे ऋषि लोगों ने उठा रखा था। बेचारे तपस्वी, वे धीरे-धीरे चल रहे थे और राजा थे उतावले। क्रोध में आकर उन्होंने एक ऋषि के लात मार दी। इसपर ऋषि क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने श्राप दिया, 'तुम साँप बनो' और वह साँप बनकर धरती पर गिर पड़े।

४. ययाति—नहुष के प्रतापी पुत्र थे। एक बार शिकार से लौटते हुए उन्होंने कुएं में पड़ी एक कन्या को निकाला। वह दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की बेटी देवयानी थी। वह बोली—'तुम ने मेरा हाथ पकड़ कर निकाला है। तुम्हीं मुझसे विवाह करो।' देवयानी का दैत्यों के राजा की बेटी शर्मिष्ठा से झगड़ा हो गया था इसी कारण जब देवयानी का विवाह ययाति से हुआ तो शर्मिष्ठा दासी के रूप में उसके साथ गई। बाद में ययाति ने गुप्त रूप से शर्मिष्ठा से भी विवाह कर लिया था। इसी बात को लेकर देवयानी क्रुद्ध हो गई थी और उसके पिता शुक्राचार्य ने ययाति को बूढ़ा हो जाने का शाप दिया था। ययाति के पांच पुत्र थे। जेठे यदु के कुल में श्रीकृष्ण हुए और कनिष्ठ पुरु के कुल में कौरव-पाण्डव।

५. सुद्युम्न—पुराण प्रसिद्ध श्राद्धदेव मनु के पुत्र थे। वास्तव में जन्म के समय सुद्युम्न कन्या थे। महामुनि वशिष्ठ ने अपने तपोबल से कन्या को पुत्र बना दिया था। बाद में युवा होकर जब वह सुमेरु पर्वत की तलहटी में शिकार खेलने गये तो फिर नारी बन गए। उस बन में शिव पार्वती रहते थे। उन्होंने कह रखा था कि जो इस वन में आयगा वह नारी बन जायगा। नारी बनकर उसने चन्द्रमा के पुत्र बुध से विवाह किया। पुरुरवा इन्हींके पुत्र थे। बाद में वह ६ महीने पुरुष और ६ महीने स्त्री रहते थे।

६. सोमक—यह भी चन्द्रवंशी राजा थे। द्रौपदी के पिता द्रुपद इन्हींके पड़पोते थे। सोमक के पुत्र जन्तु, जन्तु के पृषत, पृषत के द्रुपद। पुत्र हत्या की कथा हमें मालूम नहीं हो सकी।

७. कुवलयाश्व—अयोध्या के इक्ष्वाकु-वंशी राजाओं में एक प्रतापी राजा हुआ है। इसने उतंक ऋषि की रक्षा के लिए धुन्धु नामक राक्षस को मार गिराया था। इसीलिए इसे धुन्धुमार भी कहते थे। शायद इसने नाग राजाओं की किसी कन्या का हरण किया होगा।

८. पुरुकुत्स—सूर्यवंश के प्रबल प्रतापी चक्रवर्ती नरेश मान्धाता के पुत्र तथा पुराण प्रसिद्ध अम्बरीष और मुचुकुन्द के बड़े भाई थे। इनका

विवाह सर्पो (शायद नागवं ि नरेश) की बहन नर्मदा से हुआ था। पाताल में आकर इन्होंने गन्धर्वों को मारा था। ।रश्चन्द्र इन्हींके वंशज थे। यह कुत्सित क्यों हुए कुछ पता नहीं।

९. नृग—सूर्यवंश के पहले नरेश इक्ष्वाकु के पुत्र थे। वह प्रसिद्ध दानी थे। एक बार पहले दान की गई एक गाय नई गायों में आ मिली और फिर से दान कर दी गई। इस गाय के दोनों मालिकों में झगड़ा हुआ और उन्होंने राजा का दान स्वीकार नहीं किया। कहते हैं कि इसी पाप के कारण राजा नृग को कुछ दिन गिरगिट की योनि में रहना पड़ा था।

१०. राजा नल की कथा सभी जानते हैं। कलि के प्रभाव के कारण उनकी मति भ्रष्ट हो गई थी। उन्होंने जुए में राजपाट खोकर वनों की खाक छानी, दमयन्ती को छोड़ा, सारथी बने। अन्त में जब कलि का प्रभाव नष्ट हो गया तब इनके भी सब दुःख दूर हो गये।

११. संवरण हस्तिनापुर के भरतवंशी राजा थे। एक बार उत्तर-पंचाल के राजा सुदास ने इन्हें मार भगाया था। बाद में यह फिर लौट आये और इन्होंने अपना राज्य ही नहीं जीता बल्कि उत्तरपंचाल पर भी आध ार कर लिया। इनका विवाह वैवस्वत मनु की बेटी तपती से हुआ था। वैवस्वत् आदित्य कहलाते थे। इसीलिए इन्हें सूर्य भी कहा है। तपती और संवरण के पुत्र सुप्रसिद्ध प्रतापी नरेश कुरु थे। इन्हींके वंशज कौरव प्रसिद्ध हुए। और सरस्वती के पास का प्रदेश कुरु क ़लाया।

१२. राजा दशरथ की मृत्यु का कारण कैकेयी थी। उसे वह बहुत प्यार करते थे और उसीके दो वरों के कारण वह राम को वन भेजने पर विवश हुए थे; यह कथा कौन नहीं जानता।

१३. सहस्त्रबा हैहयवंश के प्रबल प्रतापी नरेश थे। इन्होंने कामधेनु गाय न देने के कारण परशुराम के पिता जमदग्नि की हत्या कर डाली थी। उसीका बदला लेने के लिए परशुराम ने न केवल सहस्त्रबाहु का नाश किया बल्कि सारे देश के क्षत्रिय राजाओं को मार डाला था।

१४. शान्तनु कुरुवंश के प्रसिद्ध नरेश और भीष्म पितामह के

पिता थे। बुढ़ापे में उन्होंने केवट की कन्या सत्यवती से विवाह किया था। इसी विवाह के कारण भीष्म को राज्य छोड़ना पड़ा था और उन्होंने आजन्म विवाह न करने की प्रतिज्ञा भी की थी। यह कथा सभी जानते हैं।

१५. युधिष्ठिर के झूठ बोलने की कथा बहुत प्रसिद्ध है। द्रोणाचार्य की मृत्यु तभी हो सकती थी जब वह हथियार छोड़ दें। हथियार तभी छूट सकते थे जब वह पुत्र की मृत्यु का समाचार सुन लें। पुत्र अमर था। भीम ने अश्वत्थामा हाथी को मारकर बड़ा शोर मचाया कि अश्वत्थामा मर गया पर जबतक सत्यवादी युधिष्ठिर न कह दें तबतक द्रोण विश्वास कैसे करें? तब कृष्ण के कहने पर युधिष्ठिर ने कहा था "अश्वत्थामा मर गया मनुष्य या हाथी।" 'मनुष्य या हाथी' शब्द उन्होंने बहुत धीरे से कहे थे। द्रोणाचार्य उन्हें न सुन सके और उन्होंने हथियार डाल दिये। तब द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न ने उन्हें मार डाला।

'मंडल' की दूसरी लोकप्रिय पुस्तक-माला

समाज-विकास-माला

इस माला में बालकों और नवसाक्षर प्रौढ़ों के लिए मोटे अक्षरों तथा सरल और रोचक भाषा में छोटी-छोटी सचित्र पुस्तकें निकाली जा रही हैं। हमारे देश की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, इतिहास और प्रकृति की सुन्दर झांकी इन पुस्तकों में मिलेगी। निम्न पुस्तकें तैयार हैं:

१. बदरीनाथ, २. जंगल की सैर, ३, भीष्मपितामह, ४. शिवि और दधीचि, ५. विनोबा और भूदान, ६. कबीर के बोल, ७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन, ८. गौतम बुद्ध, ९. गंगाजी, १०. निषाद और शबरी, ११. गांव सुखी, हम सुखी, १२. कितनी जमीन ?, १३. ऐसे थे सरदार, १४. चैतन्य महाप्रभु, १५. कहावतों की कहानियां, १६. सरल व्यायाम. १७. द्वारका, १८. बापू की बातें, १९. बाहुबली और नेमिनाथ, २०. तन्दुरुस्ती हजार नियामत, २१. बीमारी कैसे दूर करें ?, २२. माटी की मूरत जागी, २३. गिरिधर की कुंडलियां, २४. रहीम के दोहे, २५. गीता-प्रवेशिका, २६, तुलसी-मानस मोती, २७. दादू की वाणी, २८. नजीर की नज्में, २९. संत तुकाराम, ३०. हजरत उमर ३१. बाजीप्रभु देशपांडे, ३२. तिरुवल्लुवर, ३३. कस्तूरबा गांधी, ३४. शहद की खेती, ३५. कावेरी, ३६. तीर्थराज प्रयाग, ३७. तेल की कहानी, ३८. हम सुखी कैसे रहें ?, ३९. गो-सेवा क्यों ?, ४०. कैलास-मानस [illegible], ४१. अच्छा किया या बुरा ?, ४२. नरसी महेता, ४३. पंढरपुर, ४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती, ४५. संत ज्ञानेश्वर, ४६. धरती की कहानी, ४७. राजा भोज, ४८. ईश्वर का मंदिर, ४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश, ५०. ये थे नेताजी, ५१. रामेश्वर, ५२. कबों का विलाप, ५३. रामकृष्ण परमहंस, ५४. समर्थ रामदास, ५५. मीरा के पद, ५६. मिलजुल कर काम करो, ५७. [illegible]।

मूल्य प्रत्येक का छः आना

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली।

सं त-सा त्य-सौरभ

२७

भट्टि-कृत

राव ा-वध

श्री वा देवशरण वाल

द्वारा

[illegible]

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

१९५६

सत्सा त्य-प्रका न

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९५६
मूल्य
छः आना

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान् सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। फलतः अब तक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़ कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

भूमिका

महाकवि भट्टि का लिखा हुआ रामचरित काव्य संस्कृत-साहित्य में प्रसिद्ध है। 'रामचरित' में रामायण की कथा राम-जन्म से लेकर राम के अभिषेक तक कही गई है। भट्टि के विषय में बहुत कम ज्ञात है। काव्य के अन्त में उन्होंने यह स्वयं सूचना दी है कि यह ग्रंथ सौराष्ट्र की राजधानी वलभी में लिखा गया था। उस समय श्रीधरसेन वहां के राजा थे। वे कवि के आश्रयदाता थे। वलभी में श्रीधरसेन नाम के कई राजा हुए हैं, जिनमें से अन्तिम सातवीं शती के पूर्वार्द्ध में थे। उनकी मृत्यु ६४१ ई. में हुई। संभवतः वे ही भट्टि के समकालीन थे।

भट्टि काव्य संस्कृत के और सब काव्यों से एक बात में विलक्षण है। भट्टि ने काव्य की पुष्पिका में अपने-आपको महावैयाकरण लिखा है। उनका यह उद्देश्य था कि पाणिनीय व्याकरण के सूत्रों के उदाहरणों को काव्य के श्लोकों में इस तरह भर दिया जाय कि काव्य के पढ़ने के साथ-साथ व्याकरण का भी अच्छा ज्ञान पाठक को हो सके। उन्होंने अपने काव्य के अन्त में लिखा है—"जिनकी दृष्टि व्याकरण के सूत्रों पर है उनके लिए यह काव्य दीपक का काम करेगा। पर व्याकरण के बिना यह ऐसा लगेगा जैसा अन्धे के हाथ में दर्पण।"

कवि ने जान-बूझकर अपने ऊपर बहुत बड़ा अंकुश लगा लिया था, फिर भी व्याकरण के प्रयोगों की अटूट झड़ी के साथ वे कथा के प्रवाह को लेकर बढ़ते चले आते हैं। इसमें सब जगह काव्य के गुण खोजना व्यर्थ है, पर रावण की मृत्यु पर विभीषण का विलाप अपने ढंग का अनूठा है, जैसा और जगह नहीं मिलता।

राव ।।-वध

: १ :

दशरथ नाम का एक राजा था। यह देवताओं का मित्र और विद्वान था। उसके गुणों से प्रसन्न होकर सनातन भगव न विष्णु ने उसे अपना पिता बनाय। वह राजा व पाठी, देवताओं के लिए यज्ञ करने वाला और बन्धुओं का सम्मान करने वाला था। वह मेघों की तरह धन बांटता था और इन्द्र के साथ एक आसन पर बैठता था। अमरावती के समान अयोध्या उ का राजधानी थी। वह मानों ब्रह्मा की निर्माण-चा र। की सीमा थी। उस राजा के तीन रानियां थीं। किन्तु पुत्र नहीं था। पुत्र की इच्छा से राजा ने पुत्रेष्टि यज्ञ के जानने वाले ऋष्य ंग को अपने यहां बुलवाया। यज्ञ पूरा होने पर रानियों ने यज्ञ का बचा हुआ पुरोड़ाश खाया। फलस्वरूप क ल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। समय पर गुरु व ेष्ट ने राज मारों का उ नयन किया और वेद तथा शस्त्रों की शिक्षा दी।

एक बार राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने की इच्छा से विश्वामित्र मुनि राम को मांगने के लिए राजा के पास आए। राजा ने उनकी बड़ी आवभगत की।

मुनि ने कहा, "वन में राक्षस हमारी समाधि और यज्ञों में विघ्न डालते हैं। लक्ष्मण के साथ राम उन शत्रुओं का नाश करें।"

यह सुनकर राजा मूर्च्छित हो गए।

तब मनस्वी विश्वामित्र ने कहा, "धर्म की रक्षा के लिए मैंने आपकी शरण ली है। क्षात्र धर्म और ब्राह्मण धर्म परस्पर सहायता की अपेक्षा रखते हैं। हे राजन्, शंका मत करो और पुत्रों को मेरे साथ भेज दो। इन छोटे-मोटे राक्षसों की तो बात ही क्या है, राम तो इनसे भी भयंकर शत्रुओं का नाश करेंगे। हे राजन्, मुझे निराश मत करो।"

राजा ने यह सोच कर कि ब्राह्मण के शाप से पुत्र का वियोग सह लेना अच्छा है, राम को जाने की आज्ञा दे दी।

नगर के बाहर निकल कर राम ने देखा—शरद् ऋतु की शोभा चारों ओर फैली हुई है—लाल कमल खिल रहे थे, प्रातःकाल की वायु से कांपती हुई कमलिनी रात में कुमुदिनी का रस-पान करने वाले भौरों

को मानो रोक रही थी, भौरों की गुंजार और हंसों के ़लरव से भूला हुआ बहेलिया हिरन पर निशान लगाना भूल गया था, जल भरे हुए कुंज में अपनी ही प्रतिध्वनि से चकित सिंह उछल कर झपटना चाहता था। राम ने जल में खिले हुए ़मलों को देखा, भौरों की गुंजार सुनी, पवन की सुगन्धि से चित्त को प्रसन्न किया, लताओं से गिरे हुए फूलों को चुनकर वे मुस्कराते हुए शिला पर बैठ गए और जल पर चमचमाती हुई प्रात: ़ाल सूर्य-किरणों की शोभा देखते रहे। खेतों में हरे धान की सीधी लम्बी पंक्तियां देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए। वे पंक्तियां मानों उनके प्रति स्नेह प्रकट कर रही थीं। उन्होंने उन सुखी ग्वालों को भी देखा जो ब़ ़ट से दूर रहते थे और जिनकी गोपियां सदा उनके पास रहती थीं। वे गोपियों के सीधे-सादे स्वभाव और लजीली दृष्टि को ़ ़ प्रसन्न हो उठे। आपस में किलोल करते हुए मृगों को ़ ़ राम को विशेष कुतूहल हुआ। यज्ञ करनेवाले ़ ़स्वी हाथ में शान्ति-जल के घट और पुष्प लेकर राम की पूजा के लिए आए।

वि़ ़ामित्र ने वन में उन्हें जया-विजया नाम की विद्याएं सिखाईं और राक्षसों को मारने के लिए

आवश्यक अस्त्र दिए। ऋषियों को देखते ही मार डालने वाली ताड़का नामक राक्षसी ने जब राम पर भी घात किया तो उन्होंने उसे तुरन्त ठिकाने लगा दिया और घूम-घूम कर तपोवन की शोभा देखने लगे। यज्ञ का धुआं वृक्षों की शाखाओं को धूमिल कर रहा था। वेदपाठ की ध्वनि पक्षियों के कलरव को दबा रही थी। तपोवन के प्रभाव से सिंह हिरनों को नहीं छेड़ते थे। लताएं फल देने के लिए झुकी हुई थीं। ऐसे तपोवन में वनवासियों ने दोनों राजकुमारों का विधि के अनुसार स्वागत किया और कहा, "आपने इस भूमि को राक्षसों से मुक्त करने का बहुत बड़ा भार अपने ऊपर उठाया है।"

राम बोले, "आप जैसे तपस्वियों की तप-रूपी वायु मेरे बाणों को अग्नि के समान तेज करके शत्रु-रूपी ईंधन को भस्म करती है।"

यह सुनकर मुनि लोग अपने यज्ञ-कर्म में लग गए और राक्षस लोग वर्षा के काले बादलों की तरह चारों ओर से आकाश में घिर आये। तब लक्ष्मण ने धनुष चढ़ा कर उनको मार डाला। मारीच को रण में डटे हुए देखकर राम ने ललकारा, "अरे दुष्ट, तू फलाहारी मुनियों के मांस से अपना पेट भरता है! तुझे दया नहीं आती।"

मारीच ने उत्तर दिया, "हे राघव, द्विजों को खाना हमारा धर्म है। ब्राह्मणों की तरह वेदाचार में हमारा अधिकार नहीं है।"

राम बोले, "अरे दुष्ट, यदि तेरा यह धर्म है तो तेरे जैसे ब्रह्मद्वेषियों को मारना हमारा भी धर्म है।"

यह कह कर राम ने अपने बाण से उस राक्षस को तिनके के समान दूर फेंक दिया। इससे वहां के सब मुनि प्रसन्न हुए और राम की बड़ाई करने लगे। इसके बाद मुनि विश्वामित्र राम को जनक की यज्ञ-भूमि में ले गए। जनक ने राम के बल की परीक्षा के लिए उन्हें शिव का धनुष दिया। राम ने बड़ी सरलता से उसे तोड़ डाला। इस पर जनक ने अपने दूतों को अयोध्या भेजा। सब हाल सुनकर राजा दशरथ मिथिला आये। वहां जनक ने उनकी बड़ी आवभगत की और अपनी पुत्री सीता का विवाह राम से कर दिया। सीता क्या थी, मानों चलती-फिरती सुनहरी लता थी या आकाश से नीचे उतरी हुई चंचल विद्युल्लता थी या चन्द्रमा की अधिष्ठात्री देवी साक्षात् प्रकट हो गई थी। विवाह के अगले दिन दशरथ की सारी सेना अयोध्या के लिए चल पड़ी। लेकिन मार्ग में धनुर्धर परशुराम आते हुए दिखाई दिए। उन्होंने कड़क कर राम से कहा,

"इस धनुष पर बाण चढ़ा··।" दशर· उनके प··क्रम को जानते थे। बोले, "हे मुनि, क्रोध शान्त कीजिए। बालक राम आपके सामने क्या है!" लेकिन जब परशु·ाम ने दशरथ की बात पर ध्यान नहीं दिया तो राम ने धनुष खींच कर उस पर बाण चढ़ा दिया। फिर सेना अयोध्या की ओर चल पड़ी।

: २ :

·क्षसों के वध और परशु·ाम के पराभव से राम की कीर्ति शीघ्र फैल गई। तब राजा ने घोषणा की कि राम का राज्याभिषेक किया जायगा। उसके लिए तैयारियां होने लगीं। लेकिन कैकेयी ने इस कार्य में विघ्न डाला और राम के बन जाने का वर मांग लिया। राजा ने बदले में धन और देश देना चाहा, पर उसने कुछ भी स्वीकार न किया। उलटे, भरत के लिए राज-गद्दी मांग ली। राजा को उसकी बात स्वीकार करनी पड़ी। किसी ने राजा की निन्दा की, किसी ने भरत की और किसी ने कैकेयी को दोष दिया। शोक में भरी हुई जनता राम के साथ जाने को तैयार हो गई। राम ने लोगों को बहुत समझा·ा। बड़ी कठिनता से वे लौटे। गंगा-तट पर पहुंच कर उ··ने सुमंत्र को भी लौटा दिया। राम के बिना सुमंत्र को ···· दशरथ बहुत

दुखी हुए और उन्होंने प्राण त्याग दिये। रानियां विलाप करने लगीं। समाचार पाकर भरत तुरन्त अयोध्या लौटे और वहां की दशा देखकर शोक में डूब गए। जब उन्हें सब बातों का पता लगा तो उन्होंने कैकेयी को बहुत धिक्कारा।

राजा की अन्त्येष्टि करने के बाद भरत ने गद्दी पर बैठना स्वीकार नहीं किया, बल्कि राम को वापस लाने के लिए वह बन की ओर चले। मार्ग में ऋषि-मुनियों से मिलते हुए वह चित्रकूट पहुंच गए। नंगे पैर आगे बढ़ उन्होंने राम के चरण छुए और पिता की मृत्यु का समाचार सुनाया। राम व्याकुल हो उठे। बोले, "भाई, पिता ने मुझे सुखसाध्य बनवास देकर देश-रक्षा का कठिन काम तुम्हें सौंपा है। उनका सम्मान करने के लिए तुम पृथिवी का शासन करो।"

भरत ने कहा, "बड़े भाई के होते हुए मैं इस भार को कैसे स्वीकार कर सकता हूं? हे राम, कुल की कीर्ति का लोप करनेवाले इस काम में मुझे मत लगाओ। हां, यदि आप राजा हों तो आपकी आज्ञा से मैं राज का प्रबन्ध स्वीकार कर सकता हूं।" राम ने इस बात को स्वीकार किया और उनकी चरण-पादुका लेकर भरत वापस लौट गये। उनके लौट जाने पर राम दण्डकवन

की ओर चले गए। उस वन में उ- ,ांने ।वर ध नामक राक्षस को मारा और वहां से वे शरभंग ऋषि के आश्रम में आए। उनके सामने ही शरभंग ऋषि नें अपना शरीर आग में भस्म कर दिया। तब वे सुतीक्षण मुनि के आश्रम में गए और पर्णशाला में रहने लगे। यहां पर शूर्पणखा से उनकी भेंट हुई । उसने बारबार उन दोनों भाइयों को लुभाने की बड़ी चेष्टा की। अन्त में लक्ष्मण ने तलवार से उसकी नाक काट ली। इस पर वह क्रुद्ध हो उठी और खर-दूषण नामक अपने भाईयों को युद्ध के लिए ले आई। चौदह हजार वीरों को लेकर उन्होंने राम से भयंकर युद्ध किया। लेकिन राम-लक्ष्मण ने उन ।क्षसां को अपने बाणों से इस प्रकार मार ।ग ।या, जैसे शिका । मृगों को और गरुड़ सर्पों को मारता है। उन्होंनें खर-दूषण को भी यमलोक पहुंचा दिया। तब श पंणखा लंका में रावण के पास गई और सब समा।चा उसको सुनाए। उसने सीता की ुन्दरता का बखान करके रावण को भड़काया। रावण तुरन्त ।रा।च के पास पहुंचा और उससे सब हाल कहा। ।रा।च बोला, "हे रावण, तुम राम की शक्ति नहीं जानते। मैं जानता हूं। तुम लंका में मौज करते रहो। बलवा- से लड़ाई मोल मत लो।"

लेकिन रावण नहीं माना और मारीच को मार डालने की धमकी देने लगा। मारीच डर गया और उसके साथ जाने को तैयार हो गया। बोला, "मैं सोने का हिरन बन राम-लक्ष्मण को लुभा कर दूर ले जाऊंगा, तब तुम अपना मन-चाहा करना।" उसने ऐसा ही किया। वह राम को बहका कर दूर ले गया और जब राम ने उसे बाण से बींध डाला तो मरते समय उसने लक्ष्मण को पुकारा। वह पुकार सुनकर सीता डर गई और लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिए भेजा। लक्ष्मण ने बहुत समझाया, पर वह न मानी। उल्टे, उन्हें दोष देने लगी। तब वह चले गये। उनके जाने के बाद परिव्राजक का वेष बनाकर रावण वहां आया और छल से बलपूर्वक सीता को उठा ले गया। मार्ग में जटायु ने उसे रोका, लेकिन रावण ने उसके पंख काट डाले और सीता को लेकर वह लंका में चला आया।

: ३ :

रावण सीता को ले तो आया, लेकिन उसके तेज को देखकर वह बल प्रयोग न कर सका। उधर मारीच को मारकर लौटते हुए राम ने लक्ष्मण को देखा और सब समाचार जाना। वे शंकित हो उठे और दौड़क

कुटिया पर लौटे, लेकिन सीता वहाँ नहीं थी। राम विलाप करने लगे। रोते-रोते वह मूर्च्छित हो गए। होश आने पर फिर पागलों की तरह वह मृग पक्षियों से सीता के विषय में पूछने लगे। अन्त में धनुष लेकर गरजते हुए उन्होंने कहा, "अभी मैं सूर्य के मार्ग को रोक लेता हूं, पहाड़ों को विदीर्ण कर देता हूं, समुद्र को सुखा देता हूं और यम को भी काल के मुख में पहुंचा देता हूं। क्या संसार ने मुझे बलहीन समझ रखा है?" यह कहकर जैसे ही उन्होंने धनुष पर बाण रखा तैसे ही लक्ष्मण ने उन्हें रोका। कहा, "भाई, क्रोध न करो। आपसे कौन युद्ध कर सकता है? पर इस समय जो उचित हो वही उपाय करना चाहिए।" तभी उन्होंने जटायू को देखा और उससे उन्होंने रावण का समाचार पाया। यह समाचार देकर जटायू ने प्राण छोड़ दिये। कुछ दूर आगे चलने पर उनकी भेंट लम्बी भुजाओं वाले कबन्ध राक्षस से हुई। राम ने उसकी भुजाएं काट डालीं तो भी उसने मित्रता दिखाते हुए कहा, "रावण सीता को लंका ले गया है। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव रहता है। उसके भाई बाली ने उसकी स्त्री छीन ली है। हे राम, तुम उसके साथ मित्रता करो, उससे रावण का वध करना आसान होगा।" आगे बढ़ने पर राम

शबरी के आश्रम में पहुंचे। उसने उनकी भक्ति-भाव से पूजा की और कहा, "हनुमानजी द्वारा तुम्हारा सुग्रीव से मित्रता होगी और तुम शीघ्र सीताजी को पाओगे।" अन्त में राम ऋष्यमूक पर्वत पर आए। उन्हें देख कर सुग्रीव ने हनुमान को उनके पास भेजा। सब समाचार जान कर हनुमान उन्हें सुग्रीव के पास ले गए और अग्नि को साक्षी करके दोनों की मित्रता करा दी। इसके बाद राम की प्रेरणा से सुग्रीव बाली से युद्ध करने गया। इस युद्ध में छल से राम ने बाली को मार डाला। बाली ने राम को उपालम्भ देते हुए कहा, "हे राघव, आपने मुझे व्याध की तरह क्यों मारा ?"

राम बोले, "हे बाली, तुमने छोटे भाई की स्त्री को छीन लिया है, इसलिए मैंने तुमको मारा।"

बाली कुछ उत्तर न दे सका और अपने पुत्र अंगद को राम के हाथ सौंप कर मर गया। उसके बाद वर्षा-ऋतु आ गई। सीता के वियोग में राम व्याकुल हो उठे। धीरे-धीरे शरद आई और दल-के-दल क्रौंच पक्षी आकाश में दिखाई देने लगे। राम लक्ष्मण से बोले, "आज भी सीता को ढूंढ़ने के लिए सुग्रीव कुछ नहीं कर रहा है। वर्षा बीत गई है, पर अब भी वह प्रमाद।

घर में पड़ा हुआ है। अवश्य ही वह बाली के मार्ग पर जाना चाहता है। तुम जाकर उस दुष्ट को समझाओ।" लक्ष्मण तुरन्त किष्किन्धा आए। सुग्रीव ने नम्रता से उनसे कहा, "आपकी कृपा से मैं राम के दिये हुए भोगों को भोगता हुआ आराम करने लगा था, पर अब मैं तुरन्त ही बानरों को भेजता हूं।" और वह सेना को लेकर राम के पास पहुँचा। राम को सन्तोष हुआ। सुग्रीव ने बानरों को चारों दिशाओं में जाने का आदेश दिया। हनुमान को उन्होंने विशेष रूप से दक्षिण दिशा में भेजा। राम ने उन्हें अपनी मुद्रिका दी। उसे लेकर हनुमान वहां से चल पड़े। मार्ग में एक गुफा में उनकी स्वयंप्रभा नामक स्त्री से भेंट हुई। उसने उन्हें आंख मींच लेने को कहा। तब उसके प्रभाव से वे उस खड्ड से निकल कर एक ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां जटायू का भाई सम्पाति रहता था। उसने उन्हें लंका का मार्ग बताया। वहां से वे लोग समुद्र तट पर आए। उस अगाध समुद्र को देखकर सबने हनुमान से ही पार जाने की प्रार्थना की।

हनुमान आकाश-मार्ग से समुद्र पार चले। मार्ग में उन्होंने एक राक्षसी को मारा और वह शीघ्र ही लंका पहुंच गए। वहां उन्होंने राक्षस और पिशाच

से भरी हुई लंका को देखा। वह छिपकर सीता को ढूंढने लगे। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते रावण के महल में पहुंचे, लेकिन सीता वहां नहीं थी। फिर वे अशोक वाटिका में आए। वहां घने वृक्षों के बीच उन्होंने सीता को देखा। वह अत्यन्त मलिन वेष में थी और किसी प्रकार अपने आपको राक्षसियों से बचा रही थी। उसी समय रावण वहां आया और अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करने लगा, लेकिन उत्तर में सीता ने यही कहा, "हे दुष्ट, राम शीघ्र ही यहां आयंगे, तू उनके बाण से बच कर कहां जायगा? वे तेरा नाम भी शेष नहीं रखेंगे।" इस पर रावण क्रुद्ध हो उठा। बोला, "यदि एक मास के भीतर तुम मेरे पास नहीं आओगी तो मैं तुम्हें मार डालूंगा।" और भयंकर राक्षसियों को वहां छोड़ कर वह चला गया। वे राक्षसी सीता को डराने लगीं तो त्रिजटा ने उन्हें डांट कर वहां से हटा दिया। इसी समय हनुमान उनके सामने प्रकट हुए। अपना परिचय देते हुए उन्होंने सब समाचार सुनाए। उन्होंने राम की मुद्रिका भी सीताजी को दी। सीता ने उनके लंका प्रवेश पर आश्चर्य प्रकट करते हुए राम के विषय में बहुत-कुछ पूछा और अपनी चूड़ामणि देकर उनको विदा किया। तब हनुमान दूत के रूप में

कुछ पराक्रम दिखाने की इच्छा से अशोक वन को भंग करने लगे।

राक्षसों ने यह समाचार रावण को सुनाया। उसने अस्सी हजार राक्षसों को भेजा। हनुमान ने उन सबको मार डाला। यहां तक कि रावण के बेटे अक्षयकुमार को भी मार डाला। तब रावण ने मेघनाद को भेजा, मेघनाद और हनुमान में भयंकर युद्ध हुआ, लेकिन अन्त में मेघनाद ने ब्रह्मपाश चला कर हनुमान को बांध लिया और रावण के पास ले आया। रावण उन्हें मार डालना चाहता था, लेकिन विभीषण के यह कहने पर कि दूत अबध्य होता है, वह कुछ न कर सका। उसको क्रोध करते हुए देखकर हनुमान ने कहा, "हे रावण, तुम्हारे जैसे त्रिलोकपति को इस प्रकार एक दूत पर कुपित होना उचित नहीं। तुम राम और सुग्रीव के साथ सन्धि कर लो और सीता को लौटा दो।"

रावण और क्रुद्ध हुआ, बोला, "राक्षसों को मारना और उद्यान का नाश करना क्या यह दूत का काम है? स्त्री ताड़का को मारने वाला राम यदि तपस्वी है तो पापी कौन है? जिसने सुग्रीव के साथ युद्ध में लिपटे हुए बाली को मारा वह राम क्या बड़ाई के योग्य है?"

इस प्रकार बात बढ़ती चली गई और अन्त में रावण ने आज्ञा दी, "इस बन्दर को जला डालो।" जैसे ही हनुमानजी की पूंछ में आग लगाई गई वे आकाश में उड़ गए और उन्होंने रावण की नगरी में आग लगाना शुरू कर दिया। देखते-देखते चारों ओर कोहराम मच गया। शीघ्र ही आग फैलने लगी और उसने चारों ओर से तोरण-सहित नगर को घेर लिया। नगर को जला कर हनुमान फिर सीता के पास गये और उनसे आज्ञा मांग कर समुद्र के इस पार आए।

उन्हें देखकर सब बानर बड़े प्रसन्न हुए और राम के समीप पहुंचे। हनुमान ने प्रणाम करके सीता की चूड़ामणि सामने रखी। राम पुलकित हो उठे। हनुमान ने कहा, "हे प्रभो, आपके प्रताप को न जानकर मूर्ख रावण सीता-रूपी अग्नि कण को लिये हुए लंका-रूपी वन में बैठा है। अवश्य ही उसका नाश होगा।" इस प्रकार सब समाचार जानकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव सेना सहित महेन्द्र पर्वत पर आए और दक्षिण में समुद्र के दर्शन किए।

: ४ :

उधर सवेरा होने पर लंका में विभीषण सोकर उठा तो उसकी माता नैकषी ने उससे कहा, "हे तात,

तुम अपने स ादर को शीघ्र समझाओ कि वह सीता को वापस कर दे।"

तब विभीषण रावण के पास पहुंचा और प्रणाम करके कहने लगा, "हे तात, तुमने न्द्रादि देवों को वश में किया है। शिव के साथ कैलास को भी उठा लिया है। तुम्हारा प्रताप सब जानते हैं, लेकिन राम ने अकेले ही बाली को मार कर सुग्रीव को राजा बना दिया है। उन्होंने खर-दूषण को मार दिया है। उनके दूत ने लंका को जलाकर हमें बहुत दुःख पहुंचाया है। ऐसे राम के साथ यद्ध करना ठीक नहीं। तुम सीता को लौटा कर सन्धि कर लो।" रावण के नाना बूढ़े माल्यवान ने भी इस बात का समर्थन किया, लेकिन रावण अ यन्त क्रुद्ध हो उठा और कहने लगा, "तू हमारे कुल में कलंक मत लगा। यदि जल में शिला तैर सकेगी, यदि सूर्य अन्धकार की वृष्टि करेगा तभी मेरी हार सम्भव है।" यह कहकर उसने विभीषण को उठा दिया और सिर पर एक लात मारी। उस पर भी विभीषण शान्त रहा और चार मन्त्रियों के साथ वहां से चला गया। वह राम के पास पहुंचा। सब समा ार जानने के पश्चात् राम ने वहीं उसे लंका का राजा बनाकर अभिषेक कर दिया।

इसके बाद समुद्र को वश में करने के लिए राम ने एक महाबाण छोड़ा। उससे समुद्र की मर्यादा भंग हो उठी। भय से व्याकुल होकर समुद्र ने राम से कहा, "हे भगवन्, अपने बाण को रोकिए और मेरे ऊपर सेतु बनाकर बानर सेना को पार कराइए।"

राम ने ऐसा ही किया। सारी सेना समुद्र को पार करके लंका में सुवेल पर्वत पर जा उतरी और रावण के सैन्य बल की थाह लेने के लिए बानर इधर-उधर अट्टों पर चढ़ गए।

दूतों से राम की सेना का समाचार पाकर रावण व्याकुल हो गया। उसने माया से राम का मस्तक बना कर सीता के पास भेजा। उसे देख कर वह मूर्च्छित हो गई। इधर उसने अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। बड़े-बड़े योद्धा फाटकों पर जम गए। उधर राम ने भी देवों को प्रणाम किया और अपनी सेना को आदेश दिया। दोनों ओर से घोर संग्राम होने लगा। कोटि-कोटि बानरों ने एक-एक द्वार घेर लिया। मेघनाद और राम का भयंकर युद्ध हुआ। उसने नागपाश फेंक कर राम-लक्ष्मण को बांध लिया और रावण की आज्ञा से सीता को पुष्पक विमान पर ले जाकर राम को वैसी अवस्था में दिखाया।

सीता विलाप करने लगी, लेकिन त्रिजटा ने उसे धीरज बंधाया। इधर विभीषण ने कहा, "ये बाण नहीं हैं। नागपाश हैं। गरुड़ से ही इनकी शान्ति हो सकती है।" यह सुन कर राम ने गरुड़ का ध्यान किया और उसे देखते ही नाग डर के मारे समुद्र में भाग गए। सब लोग बड़े प्रसन्न हुए।

युद्ध फिर होने लगा। धूम्राक्ष, अकम्पन, प्रहस्त आदि रावण के योद्धा रण में काम आए। यह देखकर रावण ने सोते हुए कुम्भकर्ण को जगाया। उसने कहा, "माल्यवान और विभीषण ने तुम्हें ठीक ही कहा था। तुम अपने दोषों को नहीं देखते।" यह सुनकर रावण अत्यन्त कुपित हुआ। कहने लगा, "तुम भी मेरी निन्दा करते हो। मेरे सामने नीति मत बघारो। युद्ध में कुछ करके दिखाओ।" कुम्भकर्ण सब-कुछ समझ गया और अकेले ही युद्ध के लिए चल पड़ा। उसे देखकर वानरों की सेना में हलचल मच गई। उसके सामने कोई नहीं ठहर सका। तब राम स्वयं युद्ध करने लगे। सुग्रीव, हनुमान, लक्ष्मण सब उनकी सहायता कर रहे थे। राम ने पहले कुम्भकर्ण की दोनों भुजाएं काट डालीं और फिर हृदय में ऐन्द्र बाण मार कर उसका अन्त कर दिया। रावण ने यह

समाचार पाकर न ान्तक आदि अपने अनेक पुत्रों को युद्ध के लिए भेजा, परन्तु वे सब भी खेत रहे। घोर युद्ध के बाद लक्ष्मण ने अतिकाय को भी मार डाला। पुत्र के मरने का समाचार सुनकर रावण बहुत विलाप करने लगा, किन्तु मेघनाद ने उसे धीरज बंधाया और स्वयं युद्ध के लिए चल पड़ा। उसने अनेक कोटि बानरों को मार कर राम-लक्ष्मण को मूच्छित कर दिया। सेना में कोहराम मच गया। विभीषण के कहने पर हनुमान आकाश-मार्ग से औषधि लेने के लिए हिमालय पर गए, लेकिन जब पहचान न सके तब वे सारा पर्वत ही उखाड़ लाये। उस औषधि के प्रभाव से सब लोग स्वस्थ हो गए।

उधर अपनी सेना की बुरी दशा देखकर रावण विलाप करने लगा, "अतिकाय जैसा वीर मारा गया तब मैं राज्य और सीता को लेकर क्या करूंगा। जब मेरे पुत्र ही नहीं रहे तब मैं जीवित रह कर क्या करूंगा। किसने सोचा था कि कुम्भकर्ण मनुष्य से मारा जायगा और बानर लंका पर चढ़ाई करेंगे? मेघनाद ने उनको फिर समझाया और कहा, "आज मैं सब शत्रुओं को समझ लूंगा। आप क्यों भूल जाते हैं कि इन्द्र के स्वर्ग को जीतने के लिए हम दोनों ही

काफी हैं।" इसके बाद मेघनाद के अनेक विघ्नों की शान्ति के लिए मांगलिक कार्य करने लगे। ब्राह्मणों द्वारा उन्होंने ब्रह्मा की पूजा की। फिर मेघनाद ने कवच और शस्त्र पहन कर और रथ पर चढ़ कर युद्ध-भूमि की ओर प्रस्थान किया। उसने बानर सेना को मथ डाला और आकाश में उड़ कर माया की सीता को तलवार से काट कर सबके सामने फेंक दिया। यह देख कर राम मूर्च्छित हो गए लेकिन विभीषण ने समझाया, "हे राम, वह दुष्ट हम सबको मोह में डाल कर निकुम्भिला देवी के चैत्य में हवन करने गया है। वह अग्नि में आहुति दे, इससे पहले ही उसका वध कर देना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा का ऐसा ही वचन है।" यह बात सुनकर राम ने लक्ष्मण को तुरन्त वहां जाने की आज्ञा दी। विभीषण के साथ वे सब लोग वहां पहुंचे और उन्होंने मन्त्रों के साथ उसे अग्नि में हवन करते देखा। इन्द्रजीत ने उनकी ओर न देखकर समाधि लगा ली, लेकिन वे उसे अनेक प्रकार से ललकारने लगे और मारने लगे। विभीषण ने आगे बढ़कर उसे बहुत बुरा-भला कहा और लक्ष्मण ने उसके रथ, सारथि और घोड़ों पर प्रहार किया। अब तो भयंकर युद्ध छिड़ गया। मेघनाद ने आसुरास्त्र

छोड़ा और लक्ष्मण ने मा[illegible]श्वरास्त्र । अन्त में लक्ष्मण ने [illegible]द्रास्त्र के साथ ही मा[illegible]न्द्रास्त्र को याद किया और उनसे उसका सिर काट डाला। उस[illegible] मृत्यु से देवता बहुत प्रसन्न हुए और रावण को इतना शोक हुआ कि वह अपनी ही सेना को मारने को उद्यत हो गया। इसके बाद दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ । राम क्रुद्ध हो उठे। आधे पहर में ही उन्होंने रावण की सेना में प्रलय मचा दी । राक्षसियां विलाप करके कहने लगीं, "रावण ने ब्रह्मा से वर मांगते हुए देवताओं से तो अभय मांग ली थी, पर [illegible] से अभय नहीं मांगी थी, इसी का यह फल है।" तभी भयंकर रथ पर चढ़कर रावण रणभूमि में आया। उसने बाण-वर्षा कर लक्ष्मण को ढक दिया और राम से युद्ध करने लगा। दोनों वीर नाना प्रकार के अस्त्र छोड़ने और काटने लगे। लक्ष्मण ने रावण की भुजा काट दी और विभीषण ने उसके घोड़ों को मार गिराया। रावण ने विभीषण पर एक भारी शक्ति चलाई, लेकिन लक्ष्मण ने उसे मार्ग में ही काट डाला, जिससे भारी क्रोध में भरकर रावण ने अष्टघण्टा नामक महाशक्ति लक्ष्मण पर छोड़ी। लक्ष्मण नि[illegible] की तरह भूमि पर गिर पड़े। [illegible]नुमान की लाई हुई औषधियां अभी रखी थीं।

उनके प्रयोग से लक्ष्मण फिर उठ बैठे।

रावण दूसरे रथ पर चढ़कर आया। तब इन्द्र की आज्ञा से मातलि राम के लिए भी रथ ले आया। राम उस पर बैठ गए। रावण ने उनपर पाशुपात-अस्त्र चलाया, जिसे राम ने इन्द्रास्त्र से काट डाला। रावण ने ब्रह्मा का दिया हुआ त्रिशूल फेंका, राम ने इन्द्र की दी हुई शक्ति चलाई और अनेक बाणों से रावण को बींध दिया। रावण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। तब सारथी रथ को दूर हटा ले गया। लेकिन जागते ही वह उस पर क्रुद्ध हुआ और फिर युद्ध करने के लिए आ गया। अब उसने माया से बहुत सिर बना लिये, जिन्हें राम अपने बाणों से काटने लगे। युद्ध की भयंकरता से पर्वत और समुद्र भी कांपने लगे। इस समय मातलि ने राम को उस अस्त्र की याद दिलाई, जिसे ब्रह्मा ने रावण को मारने के लिए बनाया था। राम ने उस ब्रह्मास्त्र से रावण की नाभि को बींध डाला और रावण पृथ्वी पर गिर कर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

: ५ :

रावण को मरा हुआ देखकर विभीषण विलाप करने लगा, "हा ! आज दशानन पृथ्वी पर सो रहा है। मैंने पहले ही इस फल का अनुमान कर लिया

था। जो अपने घमंड में उचित बात पर ध्यान नहीं देते हैं उन्हें इसी प्रकार विपत्ति सहनी पड़ती है। मैं किस प्रकार धीरज रखूं! तीनों लोकों के स्वामी मेरे भाई धरती पर सो रहे हैं। राहु सूर्य का ग्रास करके उसे फिर से उगल देता है पर राम से ग्रस्त होकर कोई फिर नहीं पनपता। हे भाई, तुमने मेरी बात नहीं सुनी। अपने बल का घमण्ड करते रहे। तुमने सीता को नहीं लौटाया। विषयों को अपने वश में नहीं कर सके। आज इन्द्र निडर होकर हवि खायगा। वायु स्वेच्छा से बहेगी। सूर्य बिना बाधा के उदय होगा। लक्ष्मी लंका को छोड़कर विष्णु के पास चली गई। देवता क्रोध से अपने हथियार राक्षसों की ओर उछालते हुए लंका में घुस रहे हैं। हे महाराज, तुम क्यों नहीं उठते? तुम्हारे बिना मेरा चित्त शोक से डूबा जा रहा है। तुमसे रहित होकर मैं अनाथ हो गया हूं। तुम्हारे बिना यदि मैं राज करूंगा और जीवित रहूंगा तो मेरी तृष्णा को धिक्कार है। यदि तुम उत्तर नहीं दोगे तो मैं अपनी देह को नष्ट कर डालूंगा। तुम्हारे गुणों को याद करके मेरा शोक बढ़ रहा है। कौन अपनी माला उतार कर मेरे गले में डालेगा? कौन मुझे मीठा बोल कर आसन देगा?

मेरा क्षणभर भी जीवित रहना कठिन है । जबतक जीऊंगा, लंका में नहीं जाऊंगा। हे भाई, अब जब कभी मेरे साथ मन्त्रणा करोगे तो मैं प्रिय बातें कहूंगा, अप्रिय नहीं ।"

रनवास की स्त्रियां और पुरवासी भी रावण के लिए अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। यह देख कर राम ने विभीषण से कहा, "रावण दानी, शत्रुओं के मस्तक पर बैठने वाला, यज्ञ द्वारा देवताओं को और श्राद्ध द्वारा पितरों को तृप्त करने वाला था । उसने संग्राम में देवताओं को भी जीता था । उसके लिए शोक करना उचित नहीं । तुम्हारे जैसों को दुख से अभिभूत होना भी ठीक नहीं । अपने स्वजनों को सहारा दो । तुम्हीं तो यह राज्यभार सम्भालने वाले हो ।"

राम की यह बात सुनकर विभीषण ने कहा,— "अपना सगा भाई कैसा भी हो, उसकी मृत्यु से दुख होता ही है । ऐसे भाई के वियोग में वही जीवित रह सकता है, जिसके आप जैसा मित्र हो । आप न होते तो मैं पल-भर भी जीता न रहता ।" इसके बाद विभीषण ने मन्त्रियों से परामर्श किया और राज-महल में जाकर अन्तिम संस्कार के लिए सब सामान लाने की आज्ञा देते हुए कहा—"उत्तम वस्त्र, चन्दन, आकाश-धूप,

मालाएं, कपूर, केसर, काष्ठ, यज्ञ-पात्र, सामग्री, कुशाएं सब ऋत्विजों से लिवा कर लाओ। रावण के शरीर को स्नान करा कर ऋत्विज लोग उसे माला पहनाएं, अग्नि में हवन करें और सामवेदी सामगान करे।"

मन्त्रियों ने ऐसा ही किया और विभीषण को भी अनेक प्रकार से राज-कार्य का उपदेश दिया। रावण की अग्नि-क्रिया और जल-क्रिया हो जाने के बाद राम ने स्वर्ण कलश से विभीषण के मस्तक पर तिलक करते हुए कहा—"आज से तुम राक्षसों के राजा हो। मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम इन्द्र के समान सुखी हो। अपनी जाति के बीच में रहते हुए सब प्रकार से आनन्द करो और गुणियों से आदर प्राप्त करो। देवों की बन्दना करते हुए तुम सोम-रस का पान करना और हिंसा का परित्याग करना। निवासियों के सब कार्य धैर्यपूर्वक करना।"

इसके बाद हनुमान सीता के पास पहुंचे। कहा, "हे वैदेहि, तुम्हारे भाग्य की वृद्धि हो। त्रिलोकी का कंटक रावण मारा गया। आज्ञा दो कि तुम्हें सताने वाली इन पापिष्टा राक्षसियों को मार डालूं। हे देवी, मैं अन्तिम सेवा करना चाहता हूं।" सीता ने करुणा भरे स्वर में कहा, "हे कपि, इनका क्या

दोष ! ये बेचारी तो अपनी जीविका से अपने आप ।
उ... ण कर रही थीं। मैं इनका नाश नहीं होने दूंगी।
यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो राम से जाकर
कहो, 'हे राम, देवी उत्सुक हैं, उन्हें बुलवाइ ' ।"

तब राम ने गहरी सांस लेकर आकाश की ओर
देखा। विभीषण से बोले, "अलं...त करके सीता को
लाओ।" विभीषण सीता के पास जाकर मधुर वचनों
से विनती करते हुए कहने लगे, "हे वैदेहि, शोक छोड़
कर प्रसन्न होओ। यहां से चलो। स्नान आदि से शुद्ध
होकर सोने की पालकी में बैठो। वियोग से उत्पन्न
शोक को दूर करके राम अश्वमे यज्ञ में ुम्हार साथ
दीक्षित हों। तुम्हारे पति राम की यह आज्ञा है। तुम
शीघ्र उनके पास चलो।"

सीता ने वैसा ही किया। पति के समीप पहुंच
कर वह अत्यन्त शोकाकुल होकर रोने लगी।

तब राम ने उसके चरित्र के प्रति सन्देह प्रकट
करते हुए कहा, "मेरी यह इच्छा है कि तुम्हें स्वीका
न करूं। तुम यहां से जाओ। कहां यह रघु का प्रसिद्ध
वंश और कहां ुम्हारा पराए घर में रहना !"

यह वचन ुनकर सीता ने राम से कहा, "साधा-
रण स्त्रियों के समान मेरे ऊपर जो ुम्हारा शक है

उसे छोड़ो। मुझे शत्रु हर ले गए थे। मैं परा ान थी। मेरे ऊपर मिथ्या कोप न करो। दैव का भय करो। मेरा शरीर राक्षस से हरा गया था, किन्तु चित्त की वृत्ति तुममें ही लगी रही थी। महाभूत इसके साक्षी हैं। हे लक्ष्मण, इस घोर दुख का अन्त चिता है। मुझ पापिनी को अग्नि भस्म कर दे और राम उससे प्रसन्न हों।"

राम की अनुमति से लक्ष्मण ने चिता तैयार की और उसकी प्रदक्षिणा करके सीता ने कहा, "हे राम, तुम और तुम्हारी सारी सेना सुने। तुमने मुझपर शंका की है, इसलिए मैं अपने शरीर को अग्नि में जला रही हूं। हे अग्नि, यदि मैं दुष्ट हूं तो मेरी देह को भस्म करदो। यदि मैं विशुद्ध हूं तो मित्र की भांति मेरी रक्षा करो।"

तब सीता को हाथों में उठा कर अग्नि ने राम से कहा, "हे राम, साध्वी पत्नी पर तुमने शंका क्यों की? मैं इसको नहीं जला सका, इसलिए यह शुद्ध है। मैं केवल धर्म का साक्षी हूं। सीता रावण के यहां ्कदम शुद्ध संकल्प से रही। क्या इतने दिन साथ र ,कर भी तुमने उसके शील को नहीं जाना? यदि सीता में कोई दोष होता तो सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़ता। यदि तुम

अपने मन के इस अन्धका[illegible] को नहीं तोड़ो[illegible] तो जन्म-भर दुख पाओगे।"

इस अग्नि-परीक्षा के समय ब्रह्मा और शिव आदि देवतागण भी वहां आ पहुंचे। उन्होंने भी राम को सीता की विशुद्धि के विषय में साक्षी दी। इस प्रकार सीता-[illegible] के बाद इन्द्र ने अमृत-वर्षा करके मरी हुई वानर सेना को जीवित कर दिया। तब राम ने [illegible]नुमान से कहा, "हे कपि, तुम आकाश-मार्ग से अयोध्या में जाओ, माता[illegible] और भरत से कहो कि रावण मारा गया। विभीषण का अभिषेक हो गया। सब लोग शीघ्र ही आने वाले हैं।"

हनुमान के चले जाने पर राम ने सुग्रीव और वि[illegible]षण से कहा—"तुम भी कल मेरे साथ अयाध्य[illegible] चलो और माता[illegible]ों के दर्शन करो।"

जैसे ही [illegible]नुमान से भरत ने राम के आने का समाचार सुना, वे प्रजा के साथ नगर के बाहर आए और राम को बड़े आदर और हर्ष के साथ अयाध्य[illegible] में लिवा ले गए। अब राम ने भरत को अपना युवरा[illegible] बनाया और अनेक प्रकार की साम[illegible] का संग्रह करके [illegible]श्वमेध यज्ञ करना आरम्भ किया।

संः त-सा त्य-सौरभ

२८

अश्वघोष-कृत

सौन्दरन

श्री वा देवशरण अग्रवाल

द्वारा

कथा

विष्णु प्रभाकर

द्वारा

संपादित

१९५६

सत्सा त्य-प्रका न

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो, जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान् सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के प्रमुख कवियों, नाटककारों आदि की विशिष्ट रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत करें। फलतः अब तक कई पुस्तकें निकाल दी गई हैं।

इस पुस्तक-माला से हिन्दी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत साहित्य की महान् रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रन्थ पढ़ कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

—मंत्री

ं मिका

म ाकवि अश्वघोष प्रथम शती ईस्वी में हुए। वे सम्राट् कनिष्क के समकालीन कहे जाते हैं। वे साकेत के रहने वाले थे। उनका जन्म ब्राह्मण-कुल में हुआ था और उन्होंने अनेक दार्शनिक और [illegible] का गम्भीर अध्ययन किया था। अनन्तर वह बौद्ध-धर्म की ओर आकृष्ट हुए और संघ में दीक्षित होकर भिक्षु बन गए। उन्होंने 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' नामक दो म ाकाव्यों की रचना की। इसके अतिरिक्त कुछ नाटक भी लिखे थे जिनमें से 'शारिद्वत ्त्र प्र ्रणम्' नामक नाटक की एक खण्डित प्रति मध्य-एशिया से मिली थी। मूल 'बुद्धचरित' के अट्ठाइस सर्गों में से केवल चौदह ही मिले हैं। शेष का चीनी और तिब्बती में अनुवाद प्राप्त हुआ है। सौभाग्य से '[illegible]' सम्पूर्ण मिला है। 'स न्दरनन्द' की दो प्राचीन ्स्तलिखित प्रतियां नेपाल-महाराज के दरबार पुस्तकालय में सुरक्षित हैं।

'सान्द नन्द' काव्य में १८ सर्ग हैं। इसमें बुद्ध के भाई नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी की कथा है। नन्द अपनी पत्नी से बहुत अधिक प्रेम करता था। किन्तु बुद्ध ने उसके ाध्यात्मिक कल्याण की इच्छा से उसे भिक्षु-धर्म में दीक्षित कर लिया। उसी की कथा इस काव्य में है। काव्य की दृष्टि से तो यह ग्रंथ अत्यन्त उत्कृष्ट है ही, इसमें कवि ने बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत और साधना-पथ का जैसा विशद और सरस वर्णन किया है वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। संस्कृत-भाषा और साहित्य के विकास की दृष्टि से भी इस काव्य का विशेष महत्व है। शुष्क दा ंनिक सिद्धांतों को सरस बनाकर किस प्रकार लोक-धरातल पर लाया जा सकता है, 'स न्दरनन्द' काव्य इसका अच्छा उदाहरण है।

—सम्पा क

सौन्दरनन्द

: १ :

कपिल गौतम एक बहुत ही बड़े धार्मिक मुनि हुए हैं। तप करने के लिए उन्होंने हिमालय के अंचल में अपना आश्रम बनाया था। उस तपोवन में यज्ञ की अग्नि से उठा हुआ धुआं बादल के समान छाया रहता था। वहां के सरोवर सूर्य की धूप में हँसते हुए कमलों से भरे हुए थे और वह वन अनेक सुन्दर लताओं और वृक्षों से परिपूर्ण था। तपस्वी लोग जंगली चावल और फल खाकर सन्तुष्ट रहते थे और मन लगाकर तपस्या करते थे।

ऐसे सुन्दर स्थान में रहने के लिए इक्ष्वाकु वंश के कुछ राजकुमार वहां आए। उन राजकुमारों में जो सबसे छोटा था, उसकी माता ने विवाह-शुल्क के रूप में अपने पुत्र के लिए राज्य प्राप्त कर लिया था। इसी कारण सब बड़े भाई वन में चले आए थे। कपिल मुनि ने इनका स्वागत किया और उनके उपाध्याय बने। उनके गोत्र के अनुसार ही राजकुमारों का गोत्र भी गौतम कहलाया। आश्रम के जिस भाग में वे रहते थे वह शाक (साखू) के पेड़ों से भरा हुआ था। इसलिए वे राजकुमार लोक में शाक्य के नाम

से प्रसिद्ध हुए। एक दिन उनके अभ्युदय की इच्छा से मुनि ने हाथ में जल का कलश लेकर उनसे कहा, "इस कलश से जो धारा धरती पर गिरे उसके पीछे-पीछे तुम लोग आओ।" राजकुमारों ने रथों पर चढ़कर गुरु का अनुसरण किया। मुनि ने आश्रम की भूमि के चारों ओर आकाश-मार्ग से इस जलधारा का सिंचन किया और राजपुत्रों से कहा, "जल की धारा से घिरी हुई इस भूमि पर तुम लोग मेरे मरने के बाद एक नगर का निर्माण करना।"

मुनि के स्वर्गवासी होने के बाद राजकुमारों ने ऐसा ही किया। जो नगर वहां बसाया गया उसका नाम कपिल ऋषि के नाम पर कपिलवस्तु पड़ा। आयु और गुणों में जो उनमें सबसे बड़ा था उसको उन्होंने विधिपूर्वक अपना राजा चुना। आगे चलकर इसी वंश में शुद्धोधन नाम का एक राजा हुआ। वह बहुत ही धर्मात्मा था और उसका यश चारों ओर फैला हुआ था। उसी समय स्वर्ग के देवता यह देखने के लिए पृथ्वी पर उतरे कि धर्म का आचरण कहां पर अधिक होता है। उसके राज्य की अवस्था देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उनके साथ बोधिसत्व भी थे। उन्होंने राजा के कुल में जन्म लेने का निश्चय किया। राजा के माया नाम की एक रानी थी, जो स्वर्ग की देवी के समान शुद्ध और तेजस्विनी थी। उस रानी ने स्वप्न में छः दांतों

वाले एक सफेद हाथी को देखा। इसका फल बताते हुए ज्योतिषियों ने कहा, "रानी की कोख से एक ऐसा राज-कुमार जन्म लेगा, जो धन, धर्म और यश से सम्पन्न होगा।"

समय आने पर यह बात ठीक निकली। उस राज-कुमार का नाम सर्वार्थसिद्ध रखा गया। राजा की छोटी रानी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया, जो नन्द नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह बहुत ही सुन्दर था। इस कारण लोग उसे सुन्दर कहते थे। राजा ने दोनों राजकुमारों को बड़े चाव से पाला-पोसा। धीरे-धीरे दोनों बड़े हुए। दोनों ने सब विद्याएं प्राप्त कीं। नन्द का मन विषयों में अधिक लगा रहता था, लेकिन सर्वार्थसिद्ध या सिद्धार्थ को विषय अपनी ओर नहीं खींच पाते थे। बूढ़े, रोगी और मरे हुए व्यक्ति को देखकर उसे संसार से ही अरुचि हो गई। जन्म-मरण के भय को मिटा डालने के लिए उसने मोक्ष-मार्ग में अपना मन लगाया। एक दिन रात के समय सोते हुए अपनी स्त्री को छोड़कर वह वन में चला गया।

वन में उसने कठोर तपस्या करनेवाले मुनियों को देखा। लेकिन उनके मन में विषय-तृष्णा अभी बनी हुई थी। वह वहां से आगे बढ़ गया। मोक्षवादी अराड और शान्तिवादी आचार्य उद्रक के पास भी उसे सच्चे मार्ग का

पता न लगा। तब उसने स्वयं ही कठोर तप करना शुरू किया, पर यहां भी उसे सत्य के दर्शन नहीं हुए। उसने तपस्या छोड़ दी और जीवित रहने के लिए आहार ग्रहण किया। वह एक पीपल के पेड़ के नीचे दृढ़ आसन लगाकर बैठ गया। वहां उसने मार की सेना पर विजय प्राप्त की और अविनाशी अमृत पद का ज्ञान पाया।

वहां से बुद्ध वाराणसी नगर में आए और उन्होंने धर्म के चक्र का प्रवर्तन किया। उन्होंने सत्य के चार विभाग करके अपने धर्म की व्याख्या की और कौंडिन्य को अपना पहला शिष्य बनाया। फिर वह काशी गये। वहां से राजगृह होते हुए वे कपिलवस्तु भी आए। उन्होंने अपने पिता को धर्म का उपदेश दिया। और भी अनेक शाक्य पुत्रों ने उनके धर्म का उपदेश सुना और जन्म-मरण के दुःख से छूटने के लिए वे सब बुद्ध-धर्म में दीक्षित हो गए।

: २ :

यद्यपि बुद्ध कपिलवस्तु में रहकर धर्म का उपदेश कर रहे थे और दूसरे शाक्य पुत्र उसमें रुचि ले रहे थे, फिर भी नन्द महल में रहकर अपनी पत्नी के साथ विहार कर रहा था। उसकी पत्नी अपने रूप के कारण सुन्दरी, हठ और गर्व के कारण मानिनी तथा क्रोधी होने के कारण भामिनी कहलाती थी। एक बार नन्द प्रेम में मग्न होकर

अपनी पत्नी का श्रृंगार करने में लगा हुआ था। उसी समय तथागत बुद्ध ने भिक्षा के लिए उसके घर में प्रवेश किया, पर किसी ने भी उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। बुद्ध भाई के घर से भिक्षा पाये बिना ही लौट गए। लौटते समय एक स्त्री ने उनको देखा और अपने [illegible] की [illegible] का [illegible] करके उसने तुरन्त नन्द को इस बात की सूचना दी। उसने कहा, "[illegible]गवान अनुग्रह करके हमारे घर पधारे थे, पर भिक्षा पाये बिना ही यहां से लौटे जा रहे हैं।"

यह सुनकर नन्द कांपने लगा। हाथ जोड़ कर उसने अपनी पत्नी से प्रार्थना की, "गुरु को प्रणाम करने के लिए मैं अवश्य जाऊंगा।" उसकी स्त्री ने बहुत ही [illegible] होकर कहा, "गुरु के दर्शन करने के लिए आप जाना चाहते हैं। मैं आपके धर्म में बाधा नहीं [illegible]। ले[illegible]न जबतक मेरे शरीर का यह गीला आलेपन सूखे, इससे पहले ही आप लौट आवें।"

इस प्रकार पत्नी से विदा लेकर नन्द बुद्ध के पास चला, ले[illegible]न पत्नी का प्रेम उसे अब भी पीछे ही खींच रहा था। गुरु दूर न चले जायं, ऐसा [illegible]र वह लम्बे पग रखता हुआ आगे बढ़ा। और तब उसने मार्ग में ठहर [illegible]हर कर जाते हुए बुद्ध को देखा। राजमार्ग पर जनता की भीड़

को चीरते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। एक ांकान्त स्थान पर नन्द ने उन्हें प्रणाम किया और गद्गद् स्वर में कहा, "जब मैं अपने महल में ऊपर बैठा था तब मैंने सुना कि ंगवान मेरे ऊपर ्पाकर वहां पधारे। सुनते ही मैं शीघ्र आपके पास आया हूं। हे भिक्षुश्रेष्ठ, आपका भिक्षा-काल आज मेरे घर पर ही बीते।"

उसके ऐसे स्नेह से भरे वचन सुनकर सुगत ने ऐसा संकेत किया, जिससे उसने समझा कि उन्हें भोजन नहीं करना है। तब उसने प्रणाम करके घर लौट जाने का ा- चार किया। ठीक उसी क्षण बुद्ध ने अपना भिक्षा-पात्र उसके सामने बढ़ा दिया। नन्द ने संयत भय से उसे अपने हाथों में ले लिया, लेकिन उसका मन अब भी अपनी पत्नी में लगा हुआ था। वह पीछे की ओर हटने लगा। पर तथाग त ने तभी अपनी शक्ति से उस गली का ।प ्ला मार्ग बंद कर दिया। ल चार होकर वह धीरे-धीरे बुद्ध के पीछे चलने लगा और ।व ।र में पहुंच गया। वहां पर उसे दुखी देख-कर बुद्ध ने उसके सिर पर हाथ रखा और उसे स-झाना शुरू किया। उ- ।ने कहा, "इस संसार में भोग भोगने से कभी तृप्ति नहीं होती। बु ।पा, रोग और मौत के समान कोई भय नहीं है। राग की अग्नि सबसे अधिक जलाती है। इसाल ' तुम प्रज्ञा-रूपी कवच पहन लो। जब योगी को

तत्व का ज्ञान हो जाता है तो मृत्यु के सामने भी वह दुखी नहीं होता।" बुद्ध की बात सुन ार नन्द ने हृदय में दुःख रहते हुए भी कहा, "अच्छा।" तब तुरन्त ही बुद्ध ने [illegible] उद्धार करने की इच्छा से आनन्द को आदेश दिया, "आनन्द, शान्ति प्राप्त कराने के लिए नन्द को प्रव्रजित करो।"

नन्द का मन भीतर से रो रहा था। उसने ऐसा करने से मना कर दिया। तब बुद्ध ने कुछ कठोर भाषा में कहा, "मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। मैंने प्रव्रज्या ले ली। और भी भाइयों ने ऐसा ही किया है। लेकिन तुम्हारे मन में ज्ञान का उदय नहीं होता। प्रमाद करने वाले [illegible] के लिए शोक है। मैं तुम्हें मंगलमय पवित्र मार्ग में ले रहा हूँ। जिस प्रकार बालक के मिट्टी खा लेने पर उसकी धाय मुख में जबर्दस्ती उंगली डालकर उसको निकाल लेती है, वैसे ही तुम्हारे चित्त में गड़ी हुई गांठ को निकालने के लिए मैं कठोर वचन कह रहा हूँ।"

बुद्ध के ऐसा कहने पर नन्द बेबस हो गया। उसने कहा, "जैसी आपकी आज्ञा है, मैं वैसा ही करूंगा।"

जैसे ही नन्द ने यह कहा, आनन्द तुरन्त उसे अलग ले गया। वह छटपटा रहा था लेकिन उसका मुण्डन कर दिया गया। भिक्षु के काषाय वस्त्र पहन कर वह नये पकड़े

गए हाथी के समान चिन्ता में डूब गया।

: ३ :

जब नन्द को बुद्ध इस प्रकार बल.पूर्वक अपने साथ ले गए तब महल में सुन्दरी की दशा बहुत ही शोचनीय हो गई। वह बार-बार झरोखों में आकर देखने लगी। उसे शंका होने लगी कि उसके पति को किसी ने रोक लिया है। देर तक खड़ी रहने से वह बहुत थक गई थी, इस कारण वह पलंग पर गिर पड़ी। अत्यन्त दुखी होकर वह तरह-तरह की चिन्ताएं करने लगी। स्वामी मुझसे कह गए थे कि तुम्हारा अ[illegible]न सूखने से पहले ही मैं आ जाऊंगा, लेकिन वे आए क्यों नहीं ? क्या सचमुच उन्हें वैराग्य हो गया है ? या मेरे ही दोष से उनका मन कहीं और जा लगा है ?

इसी समय उसकी एक सखी ने उसे रोते हुए यह समाचार दिया कि तथागत ने उनके बहुत रोने पर भी नन्द को प्रव्राजित कर दिया।

यह समाचार सुनकर वह घायल हथिनी के समान विलाप करने लगी। उसने सब शृंगार उतार डाले, वस्त्र फाड़ दिए। अपने मुख को नोच लिया और धरती पर गिर पड़ी। उसकी यह अवस्था देखकर महल की दूसरी स्त्रियां बहुत दुखी हुईं। एक वृद्ध स्त्री ने उसे समझाने का

प्रयत्न किया, "तुम राजर्षि शुद्धोदन की पुत्र-वधू हो। तुम्हारे पति ने धर्म का मार्ग ग्रहण किया है। तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिए। इक्ष्वाकु वंश के राजा तो ऐसा किया ही करते हैं।"

लेकिन सुन्दरी पर कोई असर नहीं हुआ। तब दूसरी स्त्री ने बड़े प्रेम से कहा, "मैं सच कहती हूँ कि बहुत जल्दी ही तुम उन्हें देखोगी। वे तुम्हारे बिना नहीं रह सकते। तुम रोना बन्द करो। उन्होंने अपनी इच्छा से काषाय वस्त्र नहीं पहने हैं। इसलिए यदि वे उसे छोड़ देंगे तो इसमें कोई दोष नहीं होगा।"

इस सखी के ऐसे वचन सुनकर वह अपने आवास में चली गई, पर उसका मन अपने पति में ही लगा हुआ था।

: ४ :

नन्द ने अपने शरीर पर भिक्षु का वेष धारण कर लिया था, लेकिन उसका मन अभी तक पत्नी में ही डूबा हुआ था। विहार में रहते हुए भी उसे शान्ति नहीं मिली। धैर्य छोड़कर वह विलाप करने लगा, "अपनी रोती हुई पत्नी को छोड़कर भी जो तप कर सकता है, वह कठोर है। संसार में स्नेह का बन्धन तोड़ना कठिन है। न मुझमें ज्ञान है, न मैं सबकुछ भूल सकता हूँ। मैं तो एक ओर

काम और दूसरी ओर बुद्ध इन दो पाटों के बीच में पिसा जा रहा हूं। चलते समय आंखों में आंसू भरकर मेरी पत्नी ने कहा था, 'आलेपन सूखने से पहले ही आ जाना।' ये कोमल वचन मुझे आज भी नहीं भूलते। ये जो चट्टान पर आसन जमाए हुए भिक्षु ध्यान में बैठे हैं, क्या इनके मन में काम नहीं है? क्या कोयल और बसन्त इनके मन को नहीं खींचते? देवता और ऋषि सब लोग काम के बाण से घायल हुए हैं। फिर मैं तो साधारण मनुष्य हूं। मैं घर लौट जाऊंगा। जिसका मन चंचल है, वह सिद्ध कैसे बन सकता है? उसमें ज्योति कहां है? वह तो चित्र में लिखा हुआ दीपक है। ऐसे भी राजा हुए हैं जो राजपाट छोड़कर फिर घरों को लौट गए। तब मेरे लिए घर लौट जाना क्या बुरा होगा? जैसे ही मेरे गुरु यहां से भिक्षा के लिए निकलेंगे वैसे ही मैं घर चला जाऊंगा।"

इस प्रकार सोचते हुए नन्द घर जाने की चिन्ता में व्याकुल हो रहा था। तब एक भिक्षु ने उसकी ओर देखते हुए स्नेहपूर्वक कहा, "तुम्हारा इस प्रकार रोना यह बताता है कि तुम्हारे हृदय में संघर्ष है। धीरज धारण करो। शान्ति और आंसू एक साथ नहीं रहा करते। जिस प्रकार वैद्य शरीर की पीड़ा को दूर कर देता है ऐसे ही

आध्यात्मिक गुरु या ज्ञानी मन के रोग को दूर कर देता है। हे मित्र, यदि मुझप EEEIG करते हो तो अपने मन का हाल मुझसे कहो।"

इस प्रकार प्रेरणा पाकर नन्द उस भिक्षु को एकांत में ले गया और अपने मन की सब बातें उसे बताने लगा। भिक्षु ने मन में सोचा—आह, यह बेचारा उस हिरन के समान है जो व्याध के महाभय से एक बार निकल आया है, लेकिन गाने के लोभ से फिर बन्धन में फंसना चा ता है। जंगल की आग से बचा हुआ पक्षी फिर जलने के लिए ोंसले में जाना चाहता है।

प्रकट में उसने कहा, "हे मित्र, तुम्हें अभी ज्ञान नहीं मिला है। म्हारे मन में शांति नहीं है। इसाल तुम्हें धर्म में आनन्द नहीं जान पड़ता। लाल । मनुष्य धन में और मूर्ख काम में सुख मानता है, पर सज्जन अपनी विद्या से भोगों को जीत कर शान्ति में मन लगाते हैं। तुम यशस्वी हो, बु मान हो, तुम्हें घर लौटने का विचार शोभा नहीं देता। क्या पर्वत कभी वायु के सामने झु ता है? जैसे नंगी तलव र को पकड़ना वि ात्त में पड़ना है, वैसे ही स्त्रियों का संसर्ग है। जलती हुई आग को, क्रोधी सांप को, पकड़ना आसान है, पर स्त्री का मन वश में नहीं होता। स्त्री का शरीर खाल से ढका हुआ

कंकाल है। यह सब जानते हुए भी तुम उसकी ओर क्यों खिंच रहे हो? अपने चंचल मन को रोको। यह वेश धारण करके काम की इच्छा करना हास्यास्पद है। अपने शरीर को कच्चे बर्तन के समान क्षणभंगुर जानकर अपनी बुद्धि को मोक्ष में लगाओ। तुम्हें घर जाने की उत्कण्ठा नहीं करनी चा॥ ़ए।"

: ५ :

यद्यपि भिक्षु ने नन्द को इस प्रकार बहुत समझाया, पर उसको शान्ति नहीं मिली। भिक्षु ने फिर कहा, "यह शरीर रोगों का घर है। बुढ़ापा इसे घेर लेता है। नदी-।कना॑ के पेड़ के समान इसे सदा नाश का डर लगा रहता है। यह सब जान ॱर बल का अभिमान कैसा? मिट्टी के कच्चे घड़े का सहारा लेकर जैसे कोई व्या॓क्त ्फाना॑ समुद्र को पार करना चाहे, वैसे ही इस नाशवान शरीर के बल पर विष॰। को भोगने की इच्छा है। यह शरीर तो मिट्टी के कच्चे घड़े से भी गया बीता है। रोगों का घर है। उसमें बल का क्या भरोसा। सांप मन्त्रों से शांत हो जाता है। परन्तु पृथ्वी, जल, वायु आदि शरीर की धातुओं को किसी भी मन्त्र से वश में नहीं किया जा सकता। यह जगत असार, अनिश्चित और अशुभ परिणाम-वाला है। इस जगत में बल भी

अस्थिर है। सहस्र भुजाओं वाले कार्तवीर्य अर्जुन का बल परशुराम के सामने कहां चला गया? कंस और असुरराज केसी का नाश करनेवाले कृष्ण का बल भी जरा नामक व्याध के सामने समाप्त हो गया था। यदि तुम अपने बल को उनसे बड़ा समझते हो तो इन्द्रियों के साथ लड़ाई करके देखो। यदि तुम्हारी जय हुई तो सचमुच तुम्हारा बल ठीक है, हार गए तो तुम्हारा अभिमान व्यर्थ है। जो इन्द्रियों को जीत लेता है वह सच्चा वीर होता है। 'मैं सुंदर हूं,' तुम्हारा यह समझना ठीक नहीं है। कभी फिर कर न आने वाला तुम्हारा यौवन वेग से जा रहा है। गई ऋतु फिर लौट आती है, क्षीण हुआ चन्द्रमा फिर पूरा हो जाता है, लेकिन मनुष्य का यौवन जाकर फिर नहीं लौटता। जैसे रस निचोड़ने पर ईख जलाने के लिए फेंक दी जाती है, वैसे ही बुढ़ापा इस शरीर के रस को सोख कर उसे मौत को सौंप देता है। मैं, मेरा समझने का भाव, जब तुम छोड़ोगे तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी। घास के समान दुःख बिना बुलाए आ जाता है, पर धान के समान सुख बड़ी मेहनत करने पर प्राप्त होता है, नहीं भी प्राप्त होता। विषय केवल अनर्थ के मूल हैं। शत्रु के समान उन्हें छोड़ देना चाहिए। शत्रु तो एक बार मित्र भी हो जाता है, पर विषय इस लोक में या परलोक में

कभी किसी के सगे नहीं होते। इसलिए शुद्ध मन से अपने हित को पहचानो और मेरे मत का पालन करो, वरना जो तुम्हारे मन में हो, उसे साफ-साफ कहो।"

महा विद्वान् भिक्षु के उस उपदेश को सुनकर भी जब नन्द को शान्ति नहीं मिली, तब उस भिक्षु ने तथागत के पास जाकर सब बातें कहीं। कहा, "नन्द अपने व्रत को तोड़ना चाहता है। वह पत्नी से मिलने के लिए घर जाना चाहता है। उसके मन का धैर्य चला गया है।"

यह सुनकर बुद्ध ने नन्द को अपने पास बुलाया। उससे सब बातें पूछीं। फिर उसको स्त्री-रूपी अन्धकार में भटकता हुआ जानकर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसके चित्त को शुद्ध करने की इच्छा से आकाश में उड़ गए और तुरन्त हिमालय पर जा पहुंचे। वहां एक लाल मुंह की कानी बंदरिया को देखकर बुद्ध ने नन्द से पूछा, "हे नन्द, इस बंदरिया और अपनी पत्नी में तुम किसे अधिक सुन्दर समझते हो?"

नन्द ने हंसकर कहा, "कहां वह आपकी रूपवती वधू और कहा यह बंदरिया!"

तब बुद्ध नन्द को लेकर देवराज इन्द्र के नन्दन वन में पहुंचे। तत्काल अनेक सुन्दर अप्सराएं नन्द के चारों ओर आ गईं। उन्हें देखकर उसका शरीर राग से कांपने

लगा। उसके मन में वासना पैदा हुई। उन्हें पाने के लिए वह व्याकुल हो उठा। बुद्ध समझ गए कि अपनी स्त्री की ओर से नन्द का मन हट गया है। बोले, "इन अप्सराओं को देखो और अब अपनी पत्नी के रूप के बारे में अपनी सम्मति बताओ।"

नन्द ने कहा, "एक आंख वाली वह बंदरिया। आपकी वधू से रूप में जितनी दूर है उतनी ही दूर आपकी वह बंदरिया। वधू इन सुन्दरी अप्सराओं से है। इससे पहले अपनी पत्नी को पाकर मेरा मन किसी और स्त्री की ओर नहीं गया। वैसे ही आज इन अप्सराओं को देखकर मुझे अपनी पत्नी की कोई चाह नहीं रही। मैं राग की आग में जल रहा हूँ। मुझे अपनी वाणी के जल से शान्त कीजिये। मेरी रक्षा कीजिए। हे मुनि, काम-रूपी सर्प मुझे डसे जा रहे हैं। हे महाभिषग, मेरा उद्धार कीजिए।"

तब उपयुक्त समय जानकर महर्षियों में श्रेष्ठ गौतम ने कहा, "हे सौम्य, धैर्य धारण करके विकार को दूर करना होगा। यदि तुम इन अप्सराओं को चाहते हो तो तप करके इनकी प्राप्ति का मूल्य चुकाओ। इन्हें पाने के लिए प्रमाद-रहित होकर नियम का पालन करो। व्रत पूरा होने पर अवश्य तुम इन्हें पाओगे।"

'अच्छा' कहकर नन्द ने बुद्ध की बात पर भरोसा

किया और तब मुनि उसे लेकर पृथ्वी पर लौट आए।
उन अप्सराओं को देखकर नन्द ने अपने चंचल चित्त को
नियम-रूपी खम्भे में बांधा। वैराग्य उसे अच्छा नहीं
लगता था, लेकिन उनको पाने की इच्छा से उसने अपना
मन धर्म में लगाया। उसने ब्रह्मचर्य का पालन शुरू
किया। वह स्वभाव से ही सुन्दर था, पर अप्सराओं की
चिन्ता और शारीरिक संयम ने उसका रूप बदल डाला।
वह अपनी पत्नी को चाहता था, पर अब उसकी चर्चा
चलने पर उसे न हर्ष होता, न दुःख। यह देखकर आनन्द
ने कहा, "नन्द, मालूम होता है इन्द्रियों पर संयम
करने से तुम्हारा मन स्वस्थ हुआ है। तुम सचमुच बड़े
धैर्यवान हो। कामी के लिए ब्रह्मचर्य बड़ा कठिन है।
नियम पालन में जो तुम्हारी निष्ठा है उसमें मुझे एक
सन्देह है। यदि तुम आज्ञा दो तो कहूं। क्या तुम अप्सराओं
को पाने के लिए धर्म का आचरण कर रहे हो? यदि
यह बात सच है तो मैं इसका उपाय बताऊंगा।"

आनन्द के ऐसे वचन सुनकर नन्द ने लम्बी सांस
ली और मुंह नीचा कर लिया। उसके मन के भाव जान-
कर आनन्द ने कहा, "तुम्हें देख कर मैंने सब कुछ जान
लिया था। मुझे तुम पर हँसी और दया आती है। काम
का उपभोग करने के लिए तुम ब्रह्मचर्य रख रहे हो,

लेकिन इससे तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी। तुम्हारा मन जल रहा है। केवल शरीर से व्रत का बोझा ढो रहे हो। ऐसा ब्रह्मचर्य कबतक चलेगा ? इस संसार में रहते हुए क्या सैंकड़ों बार तुमने अप्सराओं को पाया और खोया नहीं है ? फिर क्यों तुम्हें उनकी अभिलाषा होती है ? यदि तुम आनन्द चाहते हो तो मन को अध्यात्म में लगाओ। जबतक तृष्णा है तबतक दुःख है। विषयों की तृष्णा रखने वाले को कभी शान्ति नहीं मिलती। मनुष्य कठोर कर्म करके स्वर्ग पाता है, पर फिर स्वर्ग से धरती पर लौट आता है। शिवि, मान्धाता, नहुष, ययाति आदि राजाओं के साथ ऐसा ही हुआ, लेकिन एक बार स्वर्ग में रहकर वहां से लौट आने पर दुःख और भी बढ़ जाता है। इसलिए स्वर्ग अच्छा नहीं है। उसे नाशवान जानकर मोक्ष में अपना मन लगाओ। जन्म, मरण, शोक, भय से रहित जो पद है और जो कल्याणकारी अमृत है, उसके लिए ब्रह्मचर्य का आचरण करो। चलायमान स्वर्ग की इच्छाओं को छोड़ो।"

: ६ :

"अप्सराओं को पाने के लिए धर्म कर रहे हो।" आनन्द की यह बात नन्द को चुभ गई। वह बहुत लज्जित हुआ। पहले उसने स्वर्ग के भोगों को अटल समझ लिया

था, पर अब आनन्द से उसकी अनित्यता के बारे में सुनकर उसे वैराग्य हो गया। बड़ों-बड़ों को भी यहां फिर लौटना पड़ा है—इस डर से उसका मन [illegible] जैसा हो गया। वह बुद्ध के पास पहुंचा और आंखों में आंसू भर कर बोला, "भगवन्, मुझे अब अप्सराओं से कोई काम नहीं है। क्षणभंगुर स्वर्ग को मैं प्रणाम करता हूं। वहां से भी अतृप्त होकर लोग पृथ्वी पर लौटते हैं, इसलिए मैं सब दुःखों का अन्त करनेवाले आपके धर्म की शरण में आता हूं। कृपया उस धर्म को मुझे समझाइए।"

तथागत ने कहा, "अहो, तुम्हारा यह विवेक आने वाले सौभाग्य का सूचक है। आज तुम्हारा जन्म सफल है, क्योंकि तुम्हारा कामी मन वैराग्य में लग गया है। दुःख का अत्यन्त निरोध ही सुख है। तुम धर्म की ओर चल पड़े हो। तुम्हारी यह बुद्धि जो अभी विकसित हो रही है, तुम्हारे हृदय का अंधकार दूर कर देगी। धरती से अनाज के उत्पन्न होने की श्रद्धा। किसान के मन में न हो तो वह बीज नहीं बोएगा। अपने मन की श्रद्धा से मनुष्य सब वस्तुओं को पकड़ता है। श्रद्धा ही प्रधान इन्द्रिय बल और धन है। श्रद्धा पाप को धो डालने वाला तीर्थ है। वह धर्म की उत्पत्ति का उत्तम कारण है, इसलिए तुम श्रद्धा के अंकुर को बढ़ाओ।"

बुद्ध से श्रद्धा की प्रशंसा सुनकर नन्द को ऐसा सुख मिला जैसे उसे किसी ने अमृत से सींच दिया हो। बुद्ध ने कहा, "हे सौम्य, अब से तुम श्रद्धा-रूपी साधन से सज्जित होकर शील की रक्षा करो। ऐसा करो, जिससे तुम्हारे सारे कर्म सबके लिए खुले हुए और निर्दोष बन जायं। कपट आदि दोषों को छोड़ दो। भिक्षु-व्रत के निश्चित नियमों का पालन करके आजीविका को शुद्ध करो। चारित्रवान बनकर ब्रह्मचर्य का पालन करो। शील के सहारे ही कल्याण की सब क्रियाएं पूरी होती हैं। हे सौम्य, मोक्ष का रहस्य वैराग्य है। वैराग्य का रहस्य आत्मा की निजी प्रेरणा है। आत्म-प्रेरणा का रहस्य ज्ञान का दर्शन है। ज्ञान का रहस्य समाधि है। समाधि का फल शारीरिक और मानसिक सुख है। उसी से परम शान्ति मिलती है। शान्ति से ही सब प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त होती है। यह स्थिति शील से ही मिला करती है। इसलिए शील ही प्रधान है। बार-बार के अभ्यास का नाम शील है। मोक्ष के लिए प्रयत्न करने-वाले योगियों को शील ही एकमात्र सहारा है। स्मृति को स्थिर करके तुम्हें चपल इन्द्रियों को विषय से हटाना चाहिए। इस विषय में तुम क्षण-भर भी प्रमाद न करो।"

उ· ,ंने फिर कहा, "इसके लिए सबसे पहले अपने भोजन की मात्रा ·ानना चाहि·। अधिक भोजन प्राण और अपान के नियमित कार्य में बाधा पैदा करता है। उससे आलस्य और नींद बढ़ती है। जैसे अधिक भोजन से अनर्थ होता है वैसे ही बहुत कम भोजन से भी पूरी शक्ति नहीं मिल पाती। ·सलिए सदा अपनी शक्ति को देखते हुए भोजन करना चा·िए। केवल भूख मिटाने के लिए भोजन करना चाहि·। योग का अभ्यास करने वाले मनुष्य ऐसा ही करते हैं। मन को वश में करके दिन ·िताओ और नींद को वश में करके रात के अधिक भाग को योगाभ्यास में लगाओ। नींद को मानसिक अन्धकार समझकर उसके वश में न होओ। रात के पहले पहर को योगाभ्यास में बिताओ। दूसरे पहर में शैय्या पर विश्राम करो। तीसरे पहर में उठ बैठो और योग में लग जाओ। सब काम करते हुए अपनी स्मृति को सदा अपने ·नशा· पर साधे रहो। वह ·ारपाल के समान है। जिसने स्मृति का कवच पहना है, उसे दोषों के बाण अपना ·नशा·। नहीं बनाते। स्मृति के बिना आर्य सत्य नहीं मिलत और आर्य सत्य के बिना सतपथ नहीं मिलता। हे सौम्य, योगी के अनुकूल ·कान्त स्थान में अपनी शैय्या और आसन नियत करो। जो ·ाक्ति पवित्र हृदय से ·कान्त

में ।व ार करता है वह प्रज्ञा रस के अमृत का पान करके तृप्त हो जाता है।"

इसके पश्चात् ? गवान बुद्ध ने नन्द को बताया कि किस प्रकार समाधि लगाकर चंचल मन को वश में करना चा। ,ए। उ ,ांने कहा, "बुरे को छाड़क अच्छे का ही ध्यान करना चा। ,ए। बुरे विचार अपने ही मन की ।ग्यता का नाश कर डालते हैं। इसका भी अभ्यास करो कि तुम्हारे मानसिक कर्मों में विघ्न न पड़ सके। जीव-लोक के स्वभाव पर ।वच र करो। संसार में सब अपने-अपने कर्म से खिंचे जा रहे हैं। कौन । ःद ा अपना या पराया है? इसाल । स्वजना की चिन्ता से अपने मन की शान्ति भंग न करो। संसार में कहीं भी ।नराप-स्थान नहीं है। जहां यह शरीर जाता है वहीं दु:ख पीछा करता है। ऐसे दु:खमय संसार में अपने मन को आसक्त न बनाओ। जीवन का ।वश्व स नहीं। काल छिपे हुए बाघ के समान ।वश ाः। पर घात करता है। संसार में जन्म लेकर कोई भी मनुष्य न तो मृत्यु को जीत सका है और न जीत सकेगा। जैसे रोग को दूर करने के लिए औषधि का सेवन किया जाता है वैसे ही बुरे विचारों के नाश के लिए अच्छे भावों का चिन्तन करना चा। ,ए।"

फिर उत्तम वक्ता बुद्ध नन्द की बढ़ती हुई एका-

ग्रता को जान ...र उसके सामने आर्य सत्यों की व्याख्या करने लगे। किस प्रकार योगी बराबर म ... ...काग्रता को प्राप्त करता हुआ ध्यान की शक्ति को ब...ाता है और चार आर्यस...ों का ज्ञान प्राप्त करता है। यह बताते हुए ...ने कहा, "दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख का क्षय है और उस अवस्थ... को प्राप्त करने के लिए एक शान्ति का मार्ग है। बुढ़ाप... आदि वि...ियों का मूल जन्म-रूपी दुःख है। जन्म ही मृत्यु और रोग का कारण है। जन्म-...पी दुःख का कारण तृष्णा आदि दोष हैं। दोषों से ही संसार की उत्पत्ति होती है। ... से दोषों का जन्म नहीं होता। यदि दुःख से छुट...ारा चाहो तो दोषों को काटो। अमृत पद की खोज करो। जैसे बुझे हुए दीप का प्रकाश न धरती पर पड़ता है, न आकाश में, न किसी दिशा में, न विदिशा में—बस तेल समाप्त होने पर वह केवल बुझ जाता है—ऐसे ही निर्वाण को प्राप्त हुआ पवित्र पुरुष सब क्लेशों का नाश होने पर शान्त हो जाता है। इसकी प्राप्ति का उपाय वह मार्ग है, जिसके आठ अंग हैं। वाणी और शरीर का सम्यक् कर्म, शुद्ध आजीविका, इन तीनों का सम्बन्ध आचार से है। शील इनका आश्रय है। इनसे कर्मों का निग्रह होता है। सम्यक् दृष्टि, स...क् विचार और सम्यक् यत्न, इन तीनों का ...न्ध

ज्ञान से है। प्रज्ञा इनका आश्रय है। इनसे क्लेशों का क्षय होता है। सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि इन दो का सम्बन्ध योग से है। इनका आश्रय शान्ति है। इनसे चित्त का निग्रह होता है। शील दोषों को अंकुरित नहीं होने देता। समाधि उन्हें रोकती है और प्रज्ञा दोषों को उखाड़ फेंकती है। इसलिए शील, समाधि और प्रज्ञा वाले इस आर्य अष्टांगिक मार्ग पर मनुष्य को आरूढ़ होना चाहिए। जब चित्त उत्तेजित हो, उसे शान्त करो। जब आलस्य में डूब रहा हो, उसे प्रेरणा दो। जब द्वेष से क्षुब्ध हो तो मैत्री का सेवन करो। जब राग या काम-भय से उत्तेजित हो तब धैर्य-पूर्वक अशुभ परिणामों पर विचार करो। मनुष्य का यह बड़ा पुरुषार्थ है कि वह अशुभ विचारों को समूल नष्ट कर दे। वन में जाकर मनुष्य स्वस्थ चित्त हुआ तो क्या! दोषों से हृदय में पीड़ित होता हुआ जो क्षुब्ध नहीं होता, वही धीर है।"

: ७ :

जब नन्द ने इस प्रकार तथागत का उपदेश सुना तो उसे मोक्ष-मार्ग का ज्ञान हो गया। शास्ता को प्रणाम करके वह जंगल की ओर चला गया। एक नदी के किनारे वृक्षों के नीचे मोक्ष प्राप्ति का निश्चय करके वह पद्म-आसन में बैठ गया। वह पवित्र मन से योग में लग गया।

उसने अ सा क्ति से अपने को मुक्त कर लिया और उद्योग का स ा र। लेकर शक्ति का संग्रह किया। इसी कारण से वह शांत और स्वस्थ होकर विषयों से विरक्त हो गया। यद्यपि उसकी बुद्धि प्रखर थी और निश्चय दृढ़ था तो भी काम-वासन ने उसके मन को व्या ुल कर दिया, ले िन उसने तुरन्त मन की इस विप ीत दशा को पहचान लिया और काम-भावना को दूर हटा दिया। इतने पर भी बुरे ... ने उसके मन पर फिर आक्रमण किया। तब उनको नष्ट करने के लिए उसने योग के नुकूल अच्छे विचारों का सहारा लिया। जिस प्रकार एक राजा अपने नगर का दुर्ग-विधा करके उसकी रक्षा करता है, उसी प्रकार उसने अपने मन की रक्षा की। वह मोक्ष का पात्र बन चुका था। इसलि उसने आत्म-केंद्र में अपने मन का संचय कर लिया। उसने संसार को दुःखमय और शून्य समझ लिया। उसने दृढ़ता ूर्वक क्लेशों की सेना में प्रवेश किया और अनेक आध्या ... साधनों से धर्म की भूमियों को क्रमशः प्राप्त किया। योग द्वारा काम, राग और प्रतिहिंसा को शान्त किया। राग नामक महान् शत्रु को विदीर्ण कर डाला। फिर द्रोह, लोभ, मोह आदि शत्रुओं को परास्त किया। ... न की दाह से मुक्त हो जाने पर उसे

ध्यान का परमानन्द इस प्रकार मिलने लगा जिस प्रकार गर्मी से तपते हुए मनुष्य को जल में प्रवेश करने पर सुख होता है। क्रम-क्रम से उच्चतर ध्यान की भूमिकाओं को प्राप्त करते हुए उसने अर्हत पद प्राप्त करने का निश्चय किया और प्रज्ञा-रूपी तलवार से कल्याण के बाधक दस बन्धनों को काट डाला। तब वह विलक्षण-सा दिखाई देने लगा और उसने मन-ही-मन शास्ता को प्रणाम किया—राग-रूपी कांटे के निकल जाने से जब आज मैं ऐसे महान् सुख का अनुभव कर रहा हूं तब निर्वाण का तो न जाने कितना सुख होगा? जिस विनायक की कृपा से मुझे यह शान्ति मिली है उन तथागत को, उन महाभिषग् को, मैं बार-बार प्रणाम करता हूं।

इस प्रकार आनन्द से कृतार्थ होकर नन्द भगवान् बुद्ध के समीप गया। उसका मन उमंग से भरा हुआ था, उसने मस्तक झुकाकर गुरु को प्रणाम किया और निवेदन किया, "हे प्रभो, मेरे हृदय में मिथ्या दृष्टि-रूपी जो तेज कांटा गड़ा हुआ था उसे आपने उपदेश-रूपी संडासी से बाहर खींच लिया। मेरा संशय नष्ट हो गया। मैं सन्मार्ग पर आ गया। भव-चक्र से मुक्त हो गया। यद्यपि लोक में हूं तो भी लोक धर्म में फंसा हुआ नहीं हूं। वासनाओं में मेरी आसक्ति नहीं रही। शरीर और शरीर

के बाहरी पदार्थों को मैं समान जानता हूं। मुझमें अहम्-भाव नहीं रहा। देखने, सुनने आदि व्यवहार-धर्मों में मेरा चित्त समभाव को प्राप्त हो गया है। इसलिए मैं मुक्त हो गया हूं।" यह कहकर उसने बड़े आदर से एक बार फिर गुरु को दण्डवत् प्रणाम किया। उसके धर्माचरण और शुद्धाचरण को देखकर मुनि बोले, "हे धर्म का आचरण करने वाले, उठो। मुझे प्रणाम करना वैसा सम्मान नहीं है, जैसा इस धर्म का आचरण करना। तुम्हारा प्रव्रजित होना सफल हुआ। जिसने आत्मा को जीत लिया है उसीका संन्यास सफल है। तुम्हारे मन, वचन और शरीर आदि शुद्ध हैं। विषयों से विरक्त होकर मोक्ष प्राप्ति के उपाय में तुमने जो अपना मन लगाया है सो तुम्हारा शास्त्र-ज्ञान सार्थक है। मानवीय जीवन दुर्लभ है। मोह के वश में होकर तुमने उसे व्यर्थ नहीं गंवाया। मार को जीत कर आज तुम अग्रगामी वीर बन गए हो। इच्छा, तृष्णा का नाश हो जाने से तुम सचमुच सामर्थ्यशाली बन गए हो। आज तुम सच्चे गर्व से यह कह सकते हो कि राजा शुद्धोदन तुम्हारे पिता हैं, क्योंकि तुमने उस कुल के अनुरूप ही धर्म का पालन किया है। तुमने परम शान्ति प्राप्त कर ली है।"

तथागत के ये वचन सुनकर नन्द ने हाथ जोड़कर

उत्तर दिया, "हे भगवन्, यह सब आपकी ही कृपा है। मैं तो काम-पंक में डूबा हुआ था। आपने मुझे बचा लिया। माता, पिता, भ्राता, शास्ता, मेरे तो सब कुछ आप ही हैं। आप मुझे न बचाते तो मैं नष्ट हो गया होता। अब मुझे न सुन्दरी की इच्छा है, न अप्सराओं की। प्राणियों के प्रति तथागत का मन अत्यन्त मैत्रीपूर्ण है। ऐसे हितैषी और कारुणिक गुरुदेव का मैं क्या उपकार कर सकता हूं?"

बुद्ध बोले, "हे प्रज्ञावान्, ऐसी कृतज्ञता तुम्हारे ही अनुकूल है। अब जो मैं कहता हूं उसे ध्यानपूर्वक सुनो। हे सौम्य, तुम अपने लिए परम गति प्राप्त कर चुके हो। अब घोर अन्धकार में भटकते हुए दूसरे जीवों के लिए इस ज्ञान-दीप को प्रज्वलित करो। तुम विषयों की इच्छाओं से मुक्त हो चुके हो, यह सुनकर घर में तुम्हारी पत्नी भी तुम्हारे ही मार्ग पर चलेगी। और स्त्रियों के बीच वैराग्य की कथा कहेगी।"

इस प्रकार परम कारुणिक पूज्य शास्ता के वचन शिरोधार्य कर नन्द मद-युक्त हाथी के समान वहां से चला गया। समय पर उसने भिक्षा के लिए नगर में प्रवेश किया। पुरवासियों की दृष्टि बरबस उसकी ओर खिंच जाती थी। वह हानि-लाभ, सुख-दुःख में समान और इच्छा-रहित था। जिन लोगों ने चाहा, उनके लिए उसने

मोक्ष की कथा कही, ले[illegible] जो उल्टे मार्ग पर चलने वाले थे उनकी उसने निन्दा नहीं की और न अपनी श्रेष्ठता ही प्रकट की।